श्री जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा ग्रन्थाङ्क ६२-६३

॥ अर्हं नमः ॥

सकललब्धिसम्पन्नाय श्रीगौतमस्वामिने नमः ॥

—०×०—

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-शासनसम्राट्-सूरिचक्रचक्रवर्ति-जगद्-गुरु-प्रौढप्रताप-प्रभूततीर्थोद्धारक-तपागच्छाधिपति-भट्टारकश्रीविजयनेमिसूरीशभगवद्भ्यो नमः ॥

—०*०—

प्राच्य-नव्यन्याय-निष्णात-

पन्न्यास श्रीशिवानन्दविजयप्रणीतम्

श्रीसप्तभङ्गीमीमांसा प्रकरणम् निक्षेपमीमांसाप्रकरणञ्च

—०*०—

तच्चेदं अहम्मदावादस्य श्रीजैनग्रन्थप्रकाशकसभैककार्यवाहक श्रेष्ठि ईश्वरदास मूलचन्द्रेण अहम्मदावादस्य कृष्णाप्रीन्टींगमुद्रणालये मुद्रयित्वा मुद्रणं कृतम्

वीर सं. २४७६ ज्येष्ठ कृष्णा ११ विक्रम सं. २००७

मूल्यं रूप्यकं सार्द्धद्वयम्

प्राप्तिस्थान

१ शा. जसवंतलाल गीरधरलाल

१२३८, रुपासुरचंदनी पोळ, अमदावाद

२ सरस्वती पुस्तक भंडार

हाथीखाना, अमदावाद

३ जैन सस्तु साहित्य ग्रंथमाळा

हठीभाईनी वाडीना दरवाजे, अमदावाद

नि वे द न

पू. मुनिश्री **शिवानंदविजयजी** महाराजश्री तथा मुनिश्री **निरंजनविजयजीने** मरुधरना निवृत्तिमय प्रदेशमां चोमासा माटे प्रवेश कर्या पछी आ ग्रन्थ छपाववा माटे **जावालना** आगेवान श्रावकोने भावना थई अने अमुक रकम एकठी करवा लाग्या। ते बदल ते ते रकम आपनारा अने तेने माटे प्रेरणा करनार ते भाईओनो तथा आ ग्रन्थनी रचना करनार परमपूज्य पन्न्यासजी महाराजश्री **शिवानंदविजयजी** महाराजश्रीनो तेमज वारंवार ग्रन्थ जल्दी पुरो थाय तेमज श्रावकोने ग्रन्थ छपाववा प्रेरणा करनार मुनिश्री **निरंजन विजयजीनो** तथा आ पुस्तकनां प्रुफो वांचवामां मदद आपनार पू. पंन्यासजी महाराजश्री **धुरंधरविजयजी** महाराजनो तेम ज मुनिश्री **कुसुमचंद्रविजयजी** महाराजनो आभार मानवामां आवे छे।

संवत् २००७, ज्येष्ठ वदि ११
पांजरापोळ, **अमदावाद.**

निवेदयित्री
जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा.

विक्रम संवत २००३ **जावाल** (मारवाड) में श्री संघकी अत्याग्रह भरी विनति से चातुर्मासार्थे श्रीगुरु महाराजकी आज्ञासे **मुनिश्री शिवानंद विजयजी** और **मुनिश्री निरंजन विजयजी** पधारे तब मुनिश्री **निरंजन विजयजी**की और (जावाल)के श्री संघके आगेवान श्रेष्ठिवर्य श्रीमान् शेठ **ताराचंदजी मोतीजी** और **साकळचंदजी रासाजी** की प्रेरणासे इस ग्रन्थरत्नमें मददगार गृहस्थोंकी शुभ नामावली—

३०१) शा. ताराचंदजी मोतीजी
३०१) शा. कपूरचंदजी मोतीजी
२५०) शा. साकलचंदजी रासाजी
२०१) शा. मगनलाल कपूरचंदजी
२०१) शा. लखमीचंदजी पद्माजी
१०१) शा. साकळचंदजी मंछाजी
१०१) शा. मूळचंदजी जोराजी पाडीव
१०१) शा. हीराचंदजी कीसनाजी
ह. साकलचंदजी हांसाजी
१०१) शा. खीमाजी रीखवदास
५१) शा. भूरमलजी अमीचंदजी
५१) शा. साकळचंदजी हांसाजी
५१) शा. केसरीमलजी लखमीचंद
५१) बाई धनी खुशालजी ह. कपूरचंद हंसाजी
५१) शा. मनरूपजी गुलाबचंदजी
५१) झवेरचंदजी हीमाजी
५१) कपुरचंदजी भगवानजी
५१) नथमलजी नूतनचंदजी
५१) शा. ताराचंदजी चंद्रभाणजी
५१) शा. अकाजी मोतीलालजी
१०१) पांचोराना एक श्रावक ह. पूनमचंद मोतीजी

परमपूज्यपरमोपकारि–प्रत्यूषाभिस्मरणीय–शासनसम्राट्–सूरिचक्रचक्रवर्ति – सर्वतन्त्र–स्वतन्त्र – तीर्थोद्धारक–बालब्रह्मचारि–परमदयालु–पूज्यपाद –तपागच्छाधिपति–भट्टारकाचार्य-महाराजाधिराज श्री श्री श्री श्री श्री श्री १००८ श्री विजयनेमिसूरीश्वरमहाराज–परमगुरुभगवतां—

। स्तोत्रम् ।

(स्रग्धराछन्दोबद्धम्)

आजन्मब्रह्मचारिन् ! गुरुपरमगुरो ! नेमिसूरीश ! तेऽहं,
भक्त्या स्तोतुं प्रवृत्तोऽमलमतिविभवैर्नोपहास्यो गुणांशम् ॥
ज्ञात्वेदानीं समीपे त्वयि गुणनिचयं गीष्पतिः स्तोतुकामो,
मन्ये स्वाशक्तिभीत्या परिकरघटने व्यग्रचित्तो नितान्तम् ॥१॥
कान्तं व्याख्यानमेकं नहि तव सकलं कान्तमेव प्रचारं,
शिक्षाशिष्येष्वपूर्वा तव परचरणं तीर्थमाहात्म्यवृद्धिः ॥
कादम्बोद्धारवार्ता तव भुवि विदिता स्वत्प्रयत्नानुभावात् ,
तीर्थं सिद्धाचलादिप्रगुणितविभवं श्राद्धवर्यैस्सुरक्ष्यम् ॥२॥
साक्षाद्वाग्देवता ते मुखकमलगता सर्वशास्त्रानुगम्या,
सिद्धान्तोद्धाररम्या मितिनयभजनाकान्तनिक्षेपमन्या ॥
सन्मान्या धीधनानां परमतकुहनोन्मूलनानेकमाना,
भव्या भव्यैरुपास्या जयति जिनवरोद्धारजन्या सुधन्या ॥३॥

ग्रामे ग्रामे जिनानां विमलप्रतिकृतिस्थापनं तीर्थयात्रा—
सङ्घानेकप्रवृत्तिः सुमुनिगणपदारोपणादीष्टकार्यम् ॥
यत्ते लोके विशिष्टं जिनमतविधितोऽभीष्टकाले मुनीश,
तच्छ्रद्धां जैनधर्मे प्रगुणयति सतां मुक्तिमार्गप्रदात्रीम् ॥४॥
भूपालास्त्वत्पदाब्जे सुकृतिततिफलावाप्तये संलुठन्ते,
त्वत्तः प्राप्योपदेशं जिनमतविहिताराधनां कुर्वते च ॥
किं ब्रूमोऽन्येऽपि जैनाज्जिनमतनिरतास्त्वद्वचोऽवाप्ततत्त्वाः,
पूज्यस्त्वं जैनजैनेतरजननिकरैर्धर्ममार्गोपदेष्टा ॥५॥
अष्टावाचार्यवर्यास्तव चरणगताः प्राप्यविद्यामनन्यां,
त्वत्तः श्रीदर्शनाद्या * अपि बुधनिकरे पूजनीयत्वमाप्ताः ॥
त्वत्सेवालीढचित्ता *मनसुखप्रमुखाः श्राद्धवर्या धनानां,
जैनोन्नत्यादिकार्ये व्ययमतिशयितश्रद्धयाऽकार्षुरुच्चैः ॥६॥

* न्यायवाचस्पति–शास्त्रविशारद–आचार्यवर्य–श्रीमद्विजयदर्शन-सूरीश्वरः १, सिद्धान्तवाचस्पति–न्यायविशारद–आचार्यपुङ्गव–श्रीमद्वि-जयोदयसूरीश्वरः २, न्यायवाचस्पति–सिद्धान्तमार्तण्ड–कविरत्न–श्री-मद्विजयनन्दनसूरीश्वरः ३, गुरुभक्तिपरायण–आचार्यश्री–विजयविज्ञान-सूरीश्वरः ४, नानाशास्त्रविरचनप्रवीण–आचार्यरत्न–विजयपद्मसूरीश्वरः ५, शास्त्रविशारद–कविरत्न–आचार्यश्रीमद्विजयामृतसूरीश्वरः ६, समयवित्–शान्तमूर्त्ति–शास्त्रविशारद–कविकुलकिरीट–व्याकरणवाचस्पति –आचार्य श्रीमद्विजयलावण्यसूरीश्वरः ७, श्रीमद्विजयविज्ञानसूरीश्वराणां पट्टधर–शिष्यवर्यः प्राकृतविद्विशारदः–आचार्य–श्रीमद्विजयकस्तूरसूरीश्वरः ८ ॥

* श्रेष्ठिवर्य मनसुखभाई भगुभाई, श्रे. लालभाई दलपतभाई, श्रे. चीमनलाल लालभाई प्रभृतिः ।

या हैमव्याकृतौ ते कृतिरनुगमिता सिन्धुनाम्ना सद्वितीया,
या च न्यायप्रभाख्या नयमननकृतिः सप्तभङ्गी कृतिर्या ॥
न्यायालोकस्य वृत्तिः कृतिरतिविततता सम्मतिग्रन्थवृत्ति—
स्सैषा कीर्त्तिस्त्वदीया जयति भुवि सदा त्वं नमस्यो न केषाम्? ॥७॥
या तेऽनेकान्ततत्त्वानुगमनप्रवणा सूत्रतद्वृत्तिरूपा,
स्पृश्यास्पृश्यव्यवस्था कृतिरपि विमला मूर्त्तिमार्तण्डनाम्नी ॥
वादे तत्त्वव्यवस्था परवचनघटाप्यद्वितीयो प्रतापो—
विश्वव्यापी तवेदं गुणलवकथनं कः स्तुतौ ते प्रवीणः ॥८॥
एतद्गुर्वष्टकेन प्रतिदिनमुषसि स्तौति सायं च भक्त्या,
यः कश्चित्सूरिवर्यं सुरनगरगतं नेमिसूरिं गुणाढ्यम् ॥
स स्याद्विद्वत्प्रधानः प्रसरति कविता तन्मुखात्कल्पनाढ्या,
भूपव्रातानुगम्यो भवति च विजयी वादिनां सत्सभायाम् ॥९॥
श्रद्धा जैने च तीर्थे भवति हृदयगा मुक्तिमार्गप्रवृत्तिः,
व्याघातो नैव वादे नहि भवति कथा विघ्नलेशी सुधर्मे ॥
विज्ञानां पूज्यभावं कलयति सततं विश्वविख्यातकीर्त्ति—
र्लब्धा रत्नत्रयाणामविरतपठनादस्य यात्याशु मुक्तिम् ॥१०॥
यस्य श्रीनेमिसूरिर्गुरुपरमगुरुस्सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः,
सूरिर्विद्यैकमूर्त्तिर्गुरुगुरुरुदयो मुक्तिमार्गैकलीनः ॥
सूरिः श्रीनन्दनाख्यो गुरुरमितमतिः कल्पनाकल्पवृक्षः,
सन्दृब्धं स्तोत्रमेतद् गुरुरतगणिना पं—शिवानन्दनाम्ना ॥११॥

॥ ॐ ॥

卐 ॥ समर्पणम् ॥ 卐

★

आबालब्रह्मचारि-संस्मारितयुगप्रधानप्रवराणां नानातीर्थस्थापक–तीर्थरक्षणैकपरायण– सूरिचक्रचूडा– मणि– नानाशास्त्ररचयितृ – सरलस्वभावि– निर्ममत्वि– सर्वजीवसमानभावि – साहित्योद्धारक – कदम्बतीर्थो– द्धारक – आधुनिकसमयपरमप्रभावक – राज– राजेश्वर- प्रबोधक – भारतभूषणानां सूरिसम्राट्मालाग्रणि –शा- सनपति–श्रीमतामतुल्यप्रभावप्रवचनानां भट्टारकाचार्याणां काव्य–व्याकरण–आगम– वृत्त–षड्दर्शन–साहित्यादि- प्रबन्धसमूहे कुशलानां. स्वपरसमय–पारावारिणां विद्व- त्सभाशेखराणां, गीतार्थचूडामणीनां. सम्यग्दर्शनबोध- दानसदनानां भगवतां श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वराणां करकमले एतत्समर्पणं कृत्वा कथञ्चित् कृतकृत्यो भवामि ।

तत्र भवतां चरणसेवातो लब्धावबोधः

पन्न्यास–शिवानन्दविजयः—

❀ प्र❀स्ता❀व❀ना ❀

प्रायः प्रस्तावना का हेतु एसा है कि सशिखर देवायतन को ध्वजा—पताका चढ़ाना।

ग्रन्थकार स्वयं अपने ग्रन्थकी तारीफ किसी तरह भी नहीं कर सकते और करे तो अपनी तारीफ अपने मुखसे करना बराबर है और एसा करनेसे जगतमें, लोकमें और साहित्यकारोमें अवगणना पात्र दीखे इसलिये प्रायःकरके प्रस्तावना दूसरे साहित्यकारके हाथ से लिखाना उचित समझा जाता है। एक बात यह भी है कि प्रस्तावना-कार ग्रन्थकारकी और ग्रन्थकी प्रशंसा मुक्त दीलसे बतलावे इसमें ग्रन्थकार की महत्ता है एसा ख्याल करके मैं कुछ लिखता हूं। लेकिन मेरेमें यह योग्यता नहीं कि एसा विद्वत्तापूर्ण मौलिक ग्रन्थकी प्रस्तावना लिख शकूं, फीरभी गुरु कृपा से आशान्वित हूं कि निर्विघ्न-तया यह कार्य पूर्ण करूं!

एसे जड़वादके समयमें शास्त्राभ्यास ही कठीनतर वस्तु है और प्रायः करके जैन समाजमें देखनेमें आता है वहांतक शास्त्रा-

भ्यास, संस्कृत–प्राकृतादि कठीन भाषाओंका अभ्यास, व्याकरण–न्याय–नाटक–आदि कठीन विषयोंका अभ्यास अस्त हो गया है। जो कुछ भी देखनेमें आता है वह भी अमुकांशमें और अमुक समुदायमें। जब शास्त्राभ्यास की ही एसी दशा है तब शास्त्ररचना, ग्रंथरचना की आशा रखना ही व्यर्थ है।

फीर भी परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आबाल–ब्रह्मचारी जगत्पूज्य भट्टारकाचार्य स्वसमयकोविद सर्वतन्त्र–स्वतन्त्र **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी** महाराजश्री के समुदायमें अभ्यासप्रणालिका प्राचीन–पद्धति मुताबिक चालु है और उसी परम्पराके कारण प्राचीन ग्रन्थोंका और प्राचीन विषयोंका अभ्यास आज दीन तक चालु है।

प्रायः उपर्युक्त समुदायकी विशेष प्रवृत्ति प्राचीन ग्रंथ पठन–पाठन और ग्रन्थरचना की है। सूरिजी के समुदाय में जो प्रणालिका चालु है इस के लिये भूरीशः धन्यवाद दीया जाता है।

इतना प्रासंगिक लिखने के बाद अब ग्रन्थ के विषय में लिखना जरूरी है अतः–" जो विषय ग्रन्थमें लिया है वह विषय खास करके जैन समाजकी दार्शनिक रचना समजनेके लिये अतीव उपयोगी और परिपूर्ण है। "

यद्यपि यह ग्रन्थ का विषय कोई नूतन नहीं है क्यूं की इस विषय के बहुतसे ग्रन्थ प्राचीन कालसे उपलब्ध है और बहूतसे पूर्व विद्वान् महर्षिओंने इस विषय के अनूपम ग्रन्थ लिखे है।

प्रायः करके प्रत्येक भाषाके जैनदार्शनिक विषयक ग्रन्थोंमें इस विषयका उल्लेख मीलता है। यह बात खूद इस ग्रन्थ के लेखक महाशयने भी जगह २ और प्रसंग २ पर मौलिक विषयकी प्रमाणिकता बढाने के कारण प्रदर्शित की है।

इतना जरूर है कि समय २ पर कूछ अलग २ प्रकार लेखकों में आविष्कार होता है और वही बात नये तरीकेसे समजाने के लिये लेखक लोग कोशीश करते है और विद्वानोंको समजानेमें सहुलियत प्राप्त करते हैं यही कारण लेखक महाशयका हो सकता है जिससे साहित्यिक सेवामें सुयश प्राप्त हो।

सप्तभंगी का सरल अर्थ है 'सात भांगे' यह भांगे के अनुसार ही जैनदर्शनमें प्रमाण और नयका कथन किया जाता है। एक ही वस्तु होने पर भी उनके एक २ धर्मके विषयका प्रश्न करके निर्बाधित रूपसे विस्तारसे और संक्षेपसे, विधान और निषेधकी कल्पनासे 'स्यात्' शब्द युक्त सात प्रकारसे वर्णन करना उसका नाम है **'सप्तभंगी'**।

इसी तरह सत्त्व के संबंधमें, असत्त्व के संबंधमें, ज्ञेयत्व-विषयक, वाच्यत्व विषयक, सामान्य विषयक और विशेषवत्त्वक विषयक नाना धर्मोमें से प्रत्येक धर्मसंबंधके प्रश्नका अवलम्बन करके प्रत्यक्षादि प्रमाणोसे युक्तियुक्त एसे विधि–प्रतिषेधरूप भिन्न २ धर्म–विषयक ज्ञानको रचनेवाले विषयको '**सप्तभंगी**' कहेते है।

वैयाकरणकार शब्दकी सिद्धि करते है लेकिन वह अर्थका

बोध करानेके लिये । इस लिये शब्द रचना शब्द या वाक्यका बोध करानेवाली होती है । इसी तरह ' प्रमाण ' भी वस्तुका संपूर्ण प्रकारसे ज्ञान कराता हैं और ज्ञानको प्रकाशमें रखनेवाला जो वाक्य है उसको प्रमाणवाक्य कहेते हैं ।

वस्तुके एक अंशके ज्ञानको ' **नय** ' कहेते है जब अमुक अंशके ज्ञानको प्रकाशमें लानेवाले को ' **नयवाक्य** ' कहेते हैं ।

उपर्युक्त ' **प्रमाणवाक्य** ' और ' **नयवाक्य** ' सात भागमें बांटा जाता है, इसलिये उसको ' **सप्तभंगी** ' कहेते है ।

जैनशास्त्रमें वस्तुके प्रत्येक धर्मका कथन अस्तित्व और तदभाव-नास्तित्वस्वरूपसे कीया जाता हैं और उस बीनाको सात प्रकारकी शब्दरचनासे कही जाती हैं जैसे—

एक पदार्थ घडा है जिसके असंख्य धर्म हैं, जिसमेंसे एक अस्ति धर्मको लेते है ।

यह अस्ति धर्म निम्नलिखित शब्दरचना देखनेसे समजमें आ सकता हैं ।

स्यादस्ति एव घटः १, स्यान्नास्ति एव घटः २, स्यादस्ति एव स्यान्नास्ति एव घटः ३, स्यादवक्तव्य एव घटः ४, स्यादस्ति एव घटः स्यादवक्तव्य एव घटः ५, स्यान्नास्ति एव स्यादवक्तव्य एव घटः ६ स्यादस्ति एव स्यान्नास्ति एव स्यादवक्तव्य एव घटः ७ ॥

इसी तरह सप्त प्रकारसे घट पदार्थका अस्तित्वादि वर्णन किया जाता है। इसी तरह इतर पदार्थोंके धर्मों को भी समजना चाहिए।

विद्वान् लेखक महाशयने अपनी सरल गिर्वाणगिरामें यह सात भांगे समजाने के लिये प्रकरण, गुच्छ, उल्लास, परिच्छेद या उद्देशकी पद्धति अंगीकार नहीं करके नव्यनयकी प्रणालिकासे सभी विषयोंको एकी प्रकरणसे समजानेकी कोशीश की है।

जिसमें प्रारम्भमें मंगलाचरण, बादमें परम दादागुरु की स्तुति, परमगुरुकी स्तुति, स्वगुरुकी स्तुति, प्राचीन विद्वान् प्रमुखकी स्तुति, नयमुक्तिकारक श्रीमद्‌यशोविजयजी उपाध्यायजीकी स्तुति, ग्रन्थविषयक ग्रन्थनायक और उसके फलकी प्रार्थना करके सलंग सप्तभंगीका विषय नव्य न्याय की रचनासे स्वशास्त्र और परशास्त्रद्वारा समजाया है।

ग्रन्थरचनामें विषयका समर्थन करते प्राचीन विद्वानोंको प्रमाणिकतासे स्वीकारे हैं और उसके कथनका उल्लेख करके तद्‌विषयक विचार भी स्वतंत्रतासे प्रगट किये हैं। एसे पूर्व विद्वानोंकी नामावलि यहां उचित होनेसे की जाती है। यद्यपि यहाँ लंबाणका भय रहता है फीर भी ग्रन्थकी प्रमाणिकता बढाने के लिये और ग्रन्थ-निर्माता के प्रति लेखक महाशय का सद्‌भाव दिखलाने योग्य होनेसे पूर्व ग्रन्थकार महानुभावोंके नाम मात्र दिखलाये जाते है।

पूज्यपाद वादिमुख्य वादिदेवसूरि सूत्रसंवाद, मल्लवादि, पूज्य

श्रीरत्नप्रभसूरि वचनसंवाद, न्यायाचार्य श्रीमद् यशोविजयजी उपाध्याय आदि विद्वानोने अपने अपने ग्रन्थोमें जो सप्तभंगीके अलग २ भांगेको अनुसरके ख्याल प्रति विद्वद् समाजका ध्यान खींचा है वह भी यहँ अवतरणरूप लिया है।

अन्तमें निक्षेपमीमांसा भी नव्य न्यायकी सरल प्रणालिका से समजानेको लेखक महाशयने प्रायः नई रीति हि ग्रहण की है एसा ख्याल किया जाता है यह रीति प्रायः अलुप्तदशामेंसे जागृत होती हैं एसा मालुम होता है प्रायः करके यह विषय कम देखनेमें आता है। दर्शनशास्त्रके इतर ग्रन्थोमें तो यह विषय दृष्टिपात होना असंभवसा है। जैनदर्शनशास्त्रके आधुनिक ग्रन्थोमें तो यह बात प्रायः उपलब्ध नही होती है यह निर्विवादित बात है और प्राचीन ग्रन्थप्रणेताओने भी इस विषयका बहुत कम स्पर्श किया है या किया है तो केवल अंश मात्र ही।

प्रायः करके ग्रन्थकारने एक बातकी विशेषता बतलाई है और वह यह है कि जैन विद्वानो के बनाये हुए पृथग् २ ग्रन्थोमें 'सप्तभंगी' विषयक विवेचन है वह यहाँ एकत्र करके संकलित किया है जिससे विद्वानोको भिन्न २ ग्रन्थ देखनेका परिश्रम उठाना न पडे और एक ही ग्रन्थ देखनेसे सप्तभंगी का विषय संपूर्णतया अवगत हो।

मेरा अभिप्राय है कि लेखक महाशयने प्रायः सप्तभंगी विषयक चर्चा पूर्ण की है इसलिये इसके संबंधमें ज्यादा लिखना ' पिसेको पुनः पसना' बराबर ह। अनावश्यकीय बात लिखके विद्वानो को

परिश्रम देना अनुचित समजता हूं। इसलिये तद्विषयक ज्ञान मौजूदा ग्रन्थसे जाननेकी कोशीश करें।

यद्यपि इस विषयमें जीतना लिखना चाहे उतना लिख सकते है, पृष्ट के पृष्ठ लिख सकते है। लेकिन यह विषय इस ग्रन्थ से समजाने के लिये लेखक महाशयने प्रयत्न किया है वह तभी सफल हो सकता है जब की उसका संपूर्णतया प्रफुल्ल चित्तसे जनता उपयोग करें। मुझे आशा ही नहीं संपूर्ण विश्वास है कि लेखक महाशयका परिश्रम सफल होगा।

इस तरह '**सप्तभंगी–मीमांसा**' और '**निक्षेप–मीमांसा**' विषय समजाने में मेरी दृष्टिसे लेखक महाशयने सरलता पूर्वक अविरत प्रयत्न करके अपनी लेखिनीको विराम दीया है, फीर भी समझता हुं की मेरे अभिप्राय को इतर विद्वान् अपनाते है या नहीं यह बात अपनी २ मति पर अवलम्बित हैं। विद्वानो की दृष्टिसे कीसी भी प्रकारकी त्रुटी मालूम होवे तो लेखक महाशयको सूचित करे ताकी द्वितीयावृत्तिमें सुधार किया जाय और तद्विषयक त्रूटी पूर्ण हो।

अन्तमें शासन देवसे प्रार्थना है कि जिनशासन सदा जयवन्त रहो और ग्रन्थ के प्रति सभीका आदर सन्मान हो और जनता इसका सदुपयोग करो॥

हठीभाईकी वाडी;
अमदावाद, ज्येष्ठ कृष्णा
एकादशी, शुक्रवार, २००७

भवदीय,
अमृतलाल मोहनलाल संघवी
व्याकरण तीर्थ–वैयाकरण भूषण

॥ श्री जैनग्रन्थप्रकाशकसभाप्रकाशितग्रन्था: ॥

१ हारिभद्राष्टकवृत्ति ३२१ संवादपाठयुक्तवृत्ति ड्राइन्गपेपर		२-८
" " ...	ग्लेझपेपर	२-०
२ संबोध प्रकरण...	... ...	३-०
३ हरिभद्रसूरिग्रन्थसंग्रह	... ...	३-०
४ हारिभद्राष्टक प्रकरण (मूल)	... ...	०-४
५ स्याद्वादरहस्य पत्र सटीक...	... ...	०-१२
६ न्यायालोक सटीक	... ...	५-०
७ अष्टसहस्री तात्पर्यविवरण ...	... ...	१०-०
८ समुद्घाततत्त्व ...	... ...	०-६
९ जैनन्यायमुक्तावली सटीक ...	... ...	१-०
" " समु. मेगा	... ...	१-४
१० नवतत्त्व विस्तरार्थ	... ...	३-०
११ दंडक विस्तरार्थ	... ...	१-०
१० हैमधातुमाला ...	... ...	४-०
१३ जैनतत्त्व परीक्षा	... ...	०-४
१४ स्तोत्रभानु ...	... ...	०-४
२४-२५ योगदृष्टियोगबिन्दु सटीक	... ...	२-८
२६ १२५-१५०-३५० ना स्तवनो, सज्झाय, द्रव्यगुण-पर्यायरास-सम्यक्त्व-योगदृष्टि-संयमश्रेणिविचार-सज्झायादिसंग्रह	... ...	०-८
२७ पारमर्षस्वाध्यायग्रन्थसंग्रह ७ ग्रन्थो (बुक)	...	०-६
२८ पारमर्षस्वाध्यायग्रन्थसंग्रह ९ ग्रन्थो (पत्राकारे)...		०-८
२९ सम्मतितर्क प्रकरण सटीक प्रथम भाग	...	५-०
३० योगदृष्ट्यादि नव ग्रन्थपद्यानुक्रम	... ...	०-६
३१-३२-३३-३४ भाषारहस्य प्रकरण सटीक, योगविंशिका व्याख्या, तत्त्वविवेकविवरणसमेतकूपदृष्टान्तविशदीकरणप्रकरण, निशाभक्ते स्वरूपतो दूषितत्वविचार	... ...	२-०

प्राप्तिस्थानं-शेठ ईश्वरदास मूलचंद, कीकाभट्टनी पोल-अमदावाद.

सप्तभङ्गीमीमांसाप्रकरणस्य विषयानुक्रमणिका ॥

अङ्काः	विषयाः	पृष्ठे पंक्तिः
१	मङ्गलं श्रीवीरस्तुतिरूपम्	१—८
२	श्रीनेमिसूरीश्वरस्तुत्यात्मकं मङ्गलम्	१–१२
३	श्रीउदयसूरिस्तुत्यात्मकं मङ्गलम्	१–१६
४	स्वगुरोः श्रीनन्दनसूरेः प्रणतिलक्षणं मङ्गलम्	२—१
५	प्राचां श्रीहरिभद्रसूरिप्रमुखाणां स्तवनम्	२—५
६	नव्ययुक्तिसूत्रणसूत्रधारस्य श्रीयशोविजयोपाध्यायस्य स्मरणम्	२—९
७	ग्रन्थस्य विषयसम्वलितस्य ग्रन्थकर्तुश्च नामकीर्तनं ग्रन्थफलप्रार्थनञ्च	२–१३
८	एकान्तवादिमते सप्तभङ्ग्या असम्भवोपवर्णनपुरस्सरं तन्मीमांसायास्तान्प्रत्यकर्तव्यत्वमुपदर्शितमाक्षेपे	२–१७
९	जैनमते सप्तभङ्ग्याः सम्भवोपदर्शनपुरस्सरमनेकान्तवादिनस्तान् प्रति जिज्ञासितव्यत्वं प्रमाणवाक्यत्वमिति कर्तव्यत्वं तन्मीमांसाया इति वादकथोपयोगित्वमेवेत्याक्षेपः	३—९
१०	तत्प्रतिविधाने जल्पकथोपयोगित्वसमर्थनेन परवादिजयाभिलाषिणः प्रत्यपि तन्मीमांसायाः कर्त्तव्यत्वं, तत्र पूज्यरत्नप्रभसूरिवचनसंवादश्च	४—८

११ सांख्य–बौद्ध–नैयायिक–वैशेषिक–जैमिनीय-
–वेदान्तिनामपि सप्तभंग्युपक्रमस्सम्भवत्येवेति
तान्प्रत्यपि सप्तभङ्गीमीमांसा कर्तव्या ५—१

१२ अत्रैव मायायास्त्रैविध्यावेदकं तुच्छा
चेत्यादिपद्यम् ६—३

१३ जैनसिद्धान्तरहस्याभिज्ञान्प्रति निरुक्तमीमांसो-
पयोगप्रकारो दर्शितः ६—८

१४ सप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यमेव प्रमाणवाक्यमित्यु-
पपादनम् ६-१५

१५ नैयायिकाद्यभिमतमस्ति घट इति वाक्यं परमत-
घटास्तित्वसंशयनिवर्तकत्वात्प्रमाणवाक्यमिति
तदपाकृतं स्याद्वादिभिस्तस्य तत्त्वासम्भवो-
पदर्शनेन ७—१

१६ स्याद्वादिमते घटोऽस्ति न वेति संशयस्य घटः
कथञ्चिदस्ति न वेति स्वरूपपर्यवसितस्य संभवः
तन्निवर्तकनिर्णयफलकं स्यादस्त्येव घट इत्ये-
वोत्तरवाक्यमिति भावितम् ७-१५

१७ अत्र प्रसङ्गात् 'यथाविधेयमिति पद्यं दर्शितम् ७-२१

१८ वाक्येऽवधारणावश्यकत्वे वाक्येऽवधारणमिति
पद्यं दर्शितम् ८—५

१९ वाक्ये स्यात्पदस्यावश्यकत्वे सोऽप्रयुक्तोऽपीति
पद्यं दर्शितम् ९—३

२० स्यादस्त्येवेति वाक्ये तज्जन्यबोधस्य स्वरूपो-

प्रदर्शनपुरस्सरं निरुक्तसंशयनिवर्तकत्वमुपदर्श्य प्रमाणवाक्यत्वास्वीकरणम् ९—६
२१ स्यादस्त्येव घट इत्येकाङ्गात्मकवाक्यस्यापि कथं न प्रमाणवाक्यत्वमित्याशङ्काऽपाकृता ९—१२
२२ तत्रोत्थिताकांक्षा सद्भावमुपदर्श्य तन्निवृत्त्यर्थं तन्मूलसंशयनिवृत्त्यर्थं च स्यान्नास्त्येव घट इति द्वितीयभङ्गात्मकवाक्यस्य तज्जन्यबोधस्य चोपदर्शनम् ९—१८
२३ प्रथमभङ्गजन्यबोधनिवर्त्यसंशय–द्वितीयभङ्गजन्यबोधनिवर्त्यसंशययोर्भिन्नत्वोपपादनपुरस्सरं भिन्नसंशयनिवर्तकस्य द्वितीयभङ्गजन्यबोधस्य जनकत्वादुपादेयत्वं द्वितीयभङ्गस्येति प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां व्यवस्थापितम् १०—३
२४ कथञ्चिदस्तित्व–कथञ्चिन्नास्तित्वयोः परस्परनिषेधरूपत्वाभावेऽपि यथा तत्प्रतिपादकसप्तभङ्गात्मकवाक्यस्य विधिनिषेधकल्पनाप्रभवत्वं तथोपपादितम् ११—२
२५ प्रथमभङ्गेनास्तित्वं द्वितीयभङ्गेन नास्तित्वं चावच्छेदकभेदेन बोध्यते, तयोश्च विधिनिषेधरूपता स्पष्टैवेति मतान्तरं दर्शितम् ११—१४
२६ प्रथमभङ्गे स्वद्रव्यादिकमस्तित्वनिष्ठप्रकारताया अवच्छेदकतया द्वितीयभङ्गे परद्रव्यादिकं

त्वस्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताया अवच्छेदकतया च भासते इत्येवं भङ्गद्वयविषययोर्विधिनिषेधरूपतोपपादकं मतान्तरमुपवर्णितम् १२-१६
२७ स्वद्रव्यादीनामस्तित्वनिष्ठप्रकारताया अवच्छेदकत्वस्य परद्रव्यादीनां प्रतियोग्यवृत्तीनामपि प्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य चोपपादनम् अत्र शिरोमणिसंवादश्च १४—१
२८ व्यधिकरणधर्मस्यानुयोगितावच्छेदकत्वमुररीकृत्य द्वितीयभङ्गमुपपादयतां मतमुपदर्शितम् १४-१७
२९ प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति तृतीयभङ्गस्यावश्यप्रयोक्तव्यत्वं तन्मूलविवक्षासंशयवैलक्षण्यं तज्जन्यबोधवैलक्षण्यं चोपपादितम् १६—७
३० चतुष्कोटिकं संशयमुपगम्य प्रकृते तथाविधसंशयमुपदर्श्य तन्निवर्त्तकनिर्णयश्चोपदर्श्य तज्जनकस्य तृतीयभङ्गस्यावश्यप्रयोक्तव्यत्वमिति प्रकारान्तराविष्करणम् १७-१८
३१ प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां विवक्षाभेदसंशयाकाङ्क्षासंशयवैलक्षण्यतः स्यादवक्तव्य एव घट इति तुरीयभङ्गस्यावश्यप्रयोक्तव्यमावेदितम् तत्र तज्जन्यविलक्षणबोधतो विलक्षणसंशयनिवर्तनं दर्शितम् १८-२०
३२ उक्तदिशा स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति पञ्चमभङ्गस्यावश्यप्रयोक्तव्यत्वं व्यवस्थापितम् २०--४

३३ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति षष्ठभङ्गस्यावश्यमयोक्तव्यत्वमुपवर्णितम् तत्र विभिन्नौ संशयनिर्णयौ निवर्त्यनिवर्तकादर्शितौ २१—६
३४ उक्तदिशा स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति सप्तमभङ्गस्यावश्यमयोक्तव्यं, तत्र संशयनिर्णयौ व्याख्यातौ २२—४
३५ भङ्गानां प्रत्येकं न प्रमाणवाक्यत्वं, किन्तु सप्तभंग्या एव तदित्युपसंहृतम् २३—५
३६ सप्तभङ्गीजन्यसमुच्चयबोध उपवर्णितः २३–१३
३७ एकत्र द्वयमिति रीत्या तज्जन्यबोध आवेदितः २४–२०
३८ वक्तव्यत्वलक्षणधर्मान्तरस्यास्तित्वादिविशेषतवक्तव्यत्वादीनां च धर्मान्तराणां सम्भवे तत्प्रतिपादकानां भङ्गान्तराणामपि सम्भवात्सप्तभङ्गीवाक्यमेव प्रमाणमिति न सम्भवतीति पूर्वपक्षः २६—४
३९ निरुक्तपूर्वपक्षप्रतिविधानं २६–२०
४० स्वातन्त्र्येण वक्तव्यत्वपर्यायस्य विधिनिषेधकल्पनया सप्तभंग्यपरा सम्भवतीति दर्शितम् २७—९
४१ अस्तित्वविशिष्टनास्तित्व—नास्तित्वविशिष्टास्तित्वयोरैक्यात्तत्प्रतिपादकभङ्गान्तरस्य न सम्भवः, तथा पुनरुक्तत्वान्नास्तित्वादिवैशिष्ट्यमुपादाय धर्मान्तरस्य तत्प्रतिपादकभङ्गान्तरस्य च संभव इति दर्शितम् २९—३

४२ काल्पनिकीयं सप्तभङ्गीति प्रश्नस्य प्रतिविधानम् ३०—३
४३ ऋजुमती-प्रति सप्तभङ्गीमीमांसोपदर्शनमात्र-
नादिगुपदर्शिता ३०-१३
४४ सप्तभङ्ग्याः स्वरूपोपदर्शनपुरस्सरं सभायां विपक्ष-
विजयफलकत्वं प्राचां सम्मतमिति बोधनाय
तद्वचनं ' या प्रश्ना 'दित्यादि दर्शितम् ३१—१
४५ सर्वत्र ध्वनेः सप्तभङ्ग्यनुगामित्वे देवसूरिसूत्र-
संवादो दर्शितः ३१—८
४६ सप्तभङ्गीलक्षणप्रतिपादकं देवसूरिसूत्रं तदर्थश्च
दर्शितः ३१-११
४७ सप्तभङ्ग्यानन्त्यप्रतिपादकं देवसूरिसूत्रयुग्मम् ३२—७
४८ सप्तभङ्गीस्वरूपप्रतिपादनपराणि सप्तसूत्राणि
देवसूरेः, तद्व्याख्यानञ्च ३२-१३
४९ स्यादस्त्येव सर्वमिति प्रथमभङ्गार्थोपवर्णनम् ३३-१०
५० भङ्गमात्रेऽवधारणावश्यकताप्रतिपादकं 'वाक्येऽ-
वधारण'मित्यादिपद्यमुट्टङ्कितम् ३४—३
५१ भङ्गमात्रे प्रतिनियतस्वरूपावगतये स्यात्पदावश्य-
कत्वावबोधकं सोऽप्रयुक्तोऽपीति वचनमुद्धावितम् ३४-१०
५२ स्यान्नास्त्येव सर्वमिति द्वितीयभङ्गोपपादनम्
तत्र घट इत्युपलक्षणम् ३४-१४
५३ क्षणिकैकान्तवादिमते द्वितीयभङ्गानर्थक्ये
उत्पत्तेर्नाशकारणत्वोपदर्शकं 'उत्पत्तिरेवेति पद्यं
दर्शितम् ३५—१

५४ स्याद्वादिमते द्वितीयभङ्गसार्थक्यमावेदितम् ३५—९
५५ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव सर्वमिति तृतीयभङ्गस्योपपादनम् ३५–२६
५६ स्यादवक्तव्य एवेति तुरीयभङ्गस्योपपादनम् ३६—१
५७ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति पञ्चमभङ्गस्य विवेचनम् ३६–१७
५८ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति षष्ठभङ्गस्योपपादनम् ३७—३
५९ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति सप्तमभङ्गसङ्गमनम् ३७–१०
६० अनन्तभङ्गीप्रसङ्गवारणप्रवणं देवसूरिसूत्रत्रिकमुपदर्शितम् ३७–२०
६१ सप्तभङ्ग्याः प्रतिभङ्गं सकलादेशस्वभावत्वं विकलादेशस्वभावत्वं च, सकलादेशविकलादेशयोर्लक्षणं च, तत्प्रतिपादकं देवसूरिसूत्रत्रिकमुपदर्शितम् ३८—७
६२ कालादयश्चाष्टावुपदर्शिताः तत्सङ्ग्राहकं कालात्मरूपेति पद्यमुल्लिखितम् ३८–१५
६३ एतच्च दैगम्बरीयानुमतमपि ३८–२०
६४ कालादिभिरष्टभिः सकलादेशत्वं विकलादेशत्वञ्चोपपादितम् ३९—१

६५ सप्तभंग्याः प्रतिभङ्गं सकलादेशत्वं विकलादेशत्व-
मित्यभ्युपगतोदेवसूरेराशय उपवर्णितः — ३९-११

६६ तत्त्वार्थवृत्तिकृतां मते स्यादस्त्येव सर्वं, स्यान्ना-
स्त्येव सर्वं, स्यादवक्तव्यमेव सर्वमिति भङ्गत्रयस्य
सकलादेशत्वं, तदन्येषां चतुर्णां भङ्गानां विकला-
देशत्वमिति दर्शितम् — ४०—४

६७ एतदुपपादनाय 'अर्पितानर्पितसिद्धेः "५-३१"
इति सूत्रभाष्यस्य व्याख्यायां वृत्तिकृद्ग्रन्थस्यो-
पयुक्तस्योट्टङ्कनं, तद्विवरणञ्च — ४०-११

६८ देवसूर्याद्यभिप्रेताखिलभङ्गसकलादेशत्वप्रतिक्षेप्तु-
स्तत्त्वार्थवृत्तिकृतोऽभिप्राय उद्घाटितः — ४३—१

६९ भङ्गत्रये सकलादेशत्वसमर्थकस्तत्त्वार्थवृत्तिकृद्-
ग्रन्थस्तद्व्याख्यानञ्च — ४४—३

७० अभागस्यापि वस्तुनो बाद्धकल्पनारूपो विभागो
भवतीत्यत्र 'भागे सिंहो नरो भागे' इत्यादि
न्याय उपदर्शितः — ४६-११

७१ स्यादवक्तव्यमेवेति तृतीयभङ्गप्रतिपादकस्य
तत्त्वार्थभाष्यस्य तद्वृत्तेश्चोट्टङ्कनम् — ४९--१

७२ कालादिभिरष्टभिरभेदेन वर्त्तनं गुणानां युगपद्भाव
एकान्तवादे न सम्भवतीति तथाभिधानं
युगपदस्तित्वनास्तित्वगुणद्वयस्य नास्तीत्यवक्त-
व्यमित्युपपादनम् — ४९-१८

७३ कालात्मरूपादिभिः सप्तभिरभेदासम्भवतो युगपद्गुणद्वयाभिधानासम्भवमुपपाद्य शब्देनाभेदासम्भवतस्तदुपपादनं, तत्र शुद्धः समासजो वाक्यात्मको वैकः शब्दो न गुणद्वयस्य सहवाचक इत्युपपादितम् ५१—२
७४ संग्रहव्यवहाराभिप्रायात्त्रयः सकलादेशाः ऋजुसूत्रादिनयचतुष्टयाभिप्रायेण चत्वारो विकलादेशाः इति दर्शितम ५३—५
७५ तत्त्वार्थभाष्ये प्रकारान्तरेण सकलादेशानां त्रयाणां भावनाऽत्रोल्लिखिता ५३—८
७६ भाष्ये सूचितानां चतुर्णां विकलादेशानां तत्त्वार्थवृत्तौ यत्स्पष्टीकरणं तदुल्लिखितम् ५३–१६
७७ अर्थनयशब्दनयभेदेन नयद्वैविध्यं, तत्रार्थनयाः सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रास्त्रयस्तदाश्रितैषा सप्तभङ्गीति दर्शितम् ५८–१६
७८ साम्प्रतसमभिरूढैवम्भूतनयाः शब्दनया इत्युपदर्शितम्
७९ सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रेभ्यो यथा सप्तभङ्गीप्रवृत्तिस्तथा दर्शिता ५९—३
८० व्यञ्जनपर्यायाः शब्दनयाः तेषु साम्पतादेर्यस्य यथाऽभ्युपगमस्तथा भावितः ५९–१३
८१ श्रीमद्भिर्यशोविजयोपाध्यायैर्भाविताyास्सप्तभङ्गी-

मीमांसायाः प्रदर्शनम् ६०—६
८२ सप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यमेव प्रमाणवाक्यं, न त्वन्यदित्यत्र सम्मतिगाथासंवादः तदर्थकथनञ्च ६०-१२
८३ पुरुषविशेषमधिकृत्यैकनयदेशनाया अप्यदुष्टत्वे संवादकतया सम्मतिगाथा दर्शिता तद्व्याख्यानञ्च ६१—४
८४ सप्तभङ्ग्याः सप्तानां भङ्गानामुपदर्शनम् ६१-१४
८५ प्रधानीभूतसत्त्वविवक्षया प्रथमो भङ्गः प्रधानीभूता सत्त्वविवक्षया द्वितीयो भङ्गः, युगपत्प्रधानीभूतसत्त्वासत्त्वोभयविवक्षया स्यादवक्तव्य एव घट इति तृतीयो भङ्गः तद्विवेचना च ६१-१९
८६ युगपत्प्रधानीभूतसत्त्वासत्त्वोभयप्रतिपादकं समासवचनं न सम्भवतीत्युपपादितम् ६२—१
८७ व्यासवाक्यमपि न तथाभूतोभयप्रतिपादकम् अन्यदपि केवलं विकल्पप्रभवं वा न तत्प्रतिपादकं समस्ति ६३-१०
८८ अवक्तव्यत्वनिर्वचनम् ६४—९
८९ प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां द्वितीयभङ्गार्थसङ्क्रमनम ६४-१२
९० शङ्कासमाधानाभ्यां द्वितीयभङ्गस्य प्रथमभङ्गागतार्थत्वमावेदितम् ६५—२
९१ स्यादवक्तव्य एवेति तृतीयभङ्गस्य षोडशभिः प्रकारैः समर्थनम् ६५-१२

९२ तत्र सांख्यमतव्यवच्छेदकःप्रथमप्रकार आवेदितः ६५—१८

९३ घटो नाम घटत्वेनास्ति स्थापनाघटत्वादिना नास्तीत्येवं प्रथमद्वितीयौ ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इति द्वितीयप्रकार उपपादितः ६६—६

९४ विवक्षितसंस्थानादिरूपेण घटः तद्व्यतिरूपेणाघट इति प्रथमद्वितीयौ, युगपत्ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्य इति तृतीयप्रकारो भावितः ६८—१

९५ मध्यावस्थारूपेण घटः पूर्वोत्तरावस्थारूपेणाघट इति प्रथमद्वितीयौ, युगपत्ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्य इति तुरीयः प्रकारो निष्टङ्कितः ६९—५

९६ वर्तमानक्षणरूपेण घटः अतीतानागतक्षणाभ्यामघट इति प्रथमद्वितीयौ, युगपत्ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्य इति ७०—१

९७ चाक्षुषप्रत्यक्षविषयत्वेन घटोऽचक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षविषयत्वेनाघटः इति प्रथमद्वितीयौ, ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इति षष्ठः प्रकारः ७०—१८

९८ घटशब्दवाच्यत्वेनास्त्येव घट इति प्रथमद्वितीयौ ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इति सप्तमः प्रकार उपपादितः ७२—१३

९९ उपादेयान्तरङ्गोपयोगरूपेण सन्नेव घटः, हेयबहिरङ्गरूपेणासन्नेव घट इति प्रथमद्वितीयौ, ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इति अष्टमः प्रकार

उपपादितः ७३–१७
१०० अभिमतार्थावबोधकत्वेनोपयोगरूपो घटः सन्, अनभिमतार्थावबोधकत्वेनासन्निति प्रथमद्वितीयौ, ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इति नवमः प्रकारो विभावितः ७४–१५
१०१ घटत्वेन सन् घटः सत्त्वेनासन् घट इति प्रथमद्वितीयौ, ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इति दशमः प्रकारो नितरामुपपादितः ७५–१६
१०२ अर्थपर्यायरूपेण घटः सन् व्यञ्जनपर्यायरूपेणासन् घट इति प्रथमद्वितीयौ, ताभ्यां युगपदादिष्टोऽवक्तव्य इत्येकादशप्रकारो निर्णीतः ७७–१६
१०३ द्वादशादिपञ्चप्रकाराणां तृतीयभङ्गमात्रसमर्थनप्रवराणां प्रदर्शनम् ७८–१९
१०४ निरवयवं सत्त्वमप्यन्त्यविशेषवदनन्वयित्वादवाच्यमर्थान्तरं, निजस्वरूपो विशेषोऽप्यन्त्योऽनन्वयित्वादवाच्यस्ताभ्यामवक्तव्याभ्यां युगपदादिष्टो घटोऽवक्तव्य इति द्वादशप्रकारो दर्शितः ७८–२०
१०५ सत्त्वरजस्तमसामैक्यपरिणतिसन्द्रुतरूपं निजं तदन्यमसन्द्रुतरूपमर्थान्तरं ताभ्यां युगपदादिष्टो घटोऽवक्तव्य इति त्रयोदशप्रकार आवेदितः। ७९–१३
१०६ रूपादयो भिन्नभिन्नबुद्धिवेद्या असंहतरूपा अर्थान्तरं, सामूहिकप्रत्ययग्राह्यं संहतरूपत्वं

निजं ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्य इति चतुर्दश-
प्रकारो विवेचितः ८१-२०
१०७ रूपादिमान् घट इत्यत्र मतुबर्थो निजः,
रूपादयोऽर्थान्तरभूतास्ताभ्यामादिष्टो घटोऽ-
वक्तव्य इति पञ्चदश प्रकारो दर्शितः। ८२-१३
१०८ उपयोगो निजः, बाह्योऽर्थान्तरभूतस्ताभ्या-
मादिष्टो घटोऽवक्तव्य इति षोडश प्रकार
आवेदितः ८२-२०
१०९ अत्र 'अत्थंतरभूएहिं' इति सम्मतिगाथा संवादिका
तद्व्याख्यानञ्च ८३—८
११० एकादशसु भङ्गत्रयसम्भवः द्वादशादिषु पञ्चस्वपि
यथाभङ्गत्रयस्यापि सम्भवस्तथा दर्शितः ८३-१७
१११ अत्र स्याद्वादिमते पशुपालोक्ताक्षेप उल्लिख्य
निराकृतः ८४--४
११२ सम्मतिरहस्यावेदनप्रयोजनकं सकलादेश-
विकलादेशविभजनं श्रीमदुपाध्यायनिभालितमु-
पदर्शितम् ८५-११
११३ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति प्रथमविकलादेश-
समर्थिका'अह देशो'इति सम्मतिगाथा तद्व्याख्या
चोपदर्शिता ८६—४
११४ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट द्वितीयविकला
देशस्य समर्थिका 'सब्भावे आइट्ठो' इति

सम्मतिगाथा तद्व्याख्या च ८७—१

११५ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति तृतीयविकलादेशस्य समर्थक 'आइट्ठोऽसब्भावे' इति सम्मतिगाथातद्व्याख्यानयोरुपदर्शनम् ८९—१

११६ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति तुरीयविकलादेशसमर्थनपरण 'सब्भावासब्भावे' इति सम्मतिगाथा तद्विवरणप्रदर्शनम् ८९–१०

११७ सप्तभङ्गसमुदाय एव सप्तभङ्गीत्वं प्रत्येकभङ्गेऽपि तदिति लक्षणभेदाकलितो विवेकः ९०—२

११८ द्विधा सुनयत्वं, प्रमाण–दुर्नय–सुनयभेदेन वाक्यत्रैविध्यञ्च ९०—८

११९ आद्यद्वितीयभङ्गयोस्त्रैविध्यं, तृतीयचतुर्थयोर्दशविधत्वं, पञ्चमादीनां त्रिंशदधिकशतपरिमाणत्वमित्यादि श्रीमन्मल्लवादिप्रभृतिदर्शितमित्यावेदितम् ९०–१३

१२० सप्तैव भङ्गास्सम्भवन्ति नाष्टमभङ्गादय इति यदुपाध्यायैस्समर्थितं तदुपदर्शितम् ९०–१८

१२१ नयप्रभवायास्सप्तभङ्ग्या यो भंगो यन्नयप्रभवस्तदुपदर्शकोपाध्यायग्रन्थस्योल्लेखः । ९२—३

१२२ तत्र 'सत्तवियप्पो' इति सम्मतिगाथा तदर्थयोरुपदर्शनम् ९२—४

१२३ प्रथमभंगः संग्रहे द्वितीयभंगो व्यवहारे तृतीय-

भंग ऋजुसूत्रे इत्यादि दर्शितम् ९२—१०
१२४ प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां तृतीयभंगे निमित्तत्वमृजुसूत्रस्योपपादितमित्यर्थनये सप्तभंगाः । ९२—१९
१२५ सप्तापि भंगाश्शब्दनये इत्येकं व्याख्यानम् ९३—१७
१२६ प्रथमद्वितीयभङ्गावेव शब्दनये न त्ववक्तव्यभंगः इति द्वितीयव्याख्यानं टीकाकृतः । ९४—८
१२७ टीकाकृतो व्याख्यानस्यासंगतत्वमुपदर्श्य स्वयं व्याख्यानान्तरं कृतमुपाध्यायेन, तत्रावक्तव्यभङ्गस्य शब्दनयेऽसम्भवे प्रकारान्तरमावेदितम् ९५—५
१२८ सप्तभंग्याः प्रमाणवाक्यत्वनयवाक्यत्वे कारणद्वारके आवेदिते । ९६—१८
१२९ प्रमाणजनकत्वात्प्रमाणसप्तभङ्गी, नयजनकत्वान्नयसप्तभंगीत्येवं द्वैविध्यं दर्शितम् ९६—२२
१३० सामान्यसप्तभंगो विशेषसप्तभंगीत्येवमपि द्वैविध्यं विषयभेदप्रयुक्तमानन्त्यं सप्तभंग्या इष्टमेवेति ९७—५
१३१ नयद्वयाभ्यामेव सप्तभंगी प्रवृत्तिरिति सामान्यविशेषोभयविषयिकैव सप्तभंगी न तु तदेकमात्रविषयिकेत्याशङ्कायाः प्रतिविधानं सरलानाम् ९७—१५
१३२ परापरसंग्रहादिभेदत एकेनापि नयेन सप्तभंगीप्रवृत्तिरिति प्रतिपादितं समाधानान्तरम् ९८—३
१३३ तृतीयस्य यथा ऋजुसूत्रसमुत्थत्वं तथोपपादितम् ९९—२२
१३४ भंगान्तराणां नयद्वयादियोजनया समुत्थानम्

तथा सामान्यसप्तभंगा विशेषसप्तभंग्युपपादनम् १००-१६

१३५ ऋजुसूत्रनयानाश्रयणेऽपि तृतीयभंगप्रवृत्तिर्याभ्यां नयाभ्यां प्रथमद्वितीयौ ताभ्यामेवेत्युपाध्याय-भिन्नानामाशय उपपादितः १०४—२

१३६ प्रश्नप्रतिविधानाभ्यां प्रमाणसप्तभंगी-नयसप्तभंगीति भेदव्यवस्था कृता १०५—४

१३७ देवसूरिप्रपञ्चितनयनिरूपणमधिकृत्य नयसामान्यलक्षणं, तद्गतविशेषणोपादानप्रयोजनञ्चावेदितम् १०६—१७

१३८ द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकभेदेन नयद्वैविध्यं, द्रव्यार्थिकस्य लक्षणं तन्मन्तव्यञ्च दर्शितम् १०७-१८

१३९ पर्यायार्थिकस्य लक्षणं तन्मन्तव्यञ्चावेदितम् १०८—१

१४० सैद्धान्तिकमते नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्राश्चत्वारो द्रव्यार्थिकाः, शब्दसमभिरूढैवम्भूतास्त्रयः पर्यायार्थिकाः आद्यास्त्रयो द्रव्यार्थिकाः, ऋजुसूत्राद्याश्चत्वारः पर्यायार्थिकाः सन्मतिकृन्मते, अत्र सैद्धान्तिकमतमुपपादितम् १०८-११

१४१ नैगमस्य संग्रहव्यवहारयोरन्तर्भावान्नयाः षडिति मतं, साम्प्रतादीनां शब्दनयत्वेन संग्रहात्पञ्च नयाः चत्वारो नया इति च मतभेद आवेदितः १०९-१२

१४२ प्रदेश-प्रस्थक-वसति-दृष्टान्तैर्यथाक्रमं शुद्धिभाजो नया भाविताः १०९-१८

१४३ नैगमनये धर्माधर्माकाशजीवस्कन्धानां तद्देशस्य चेति षण्णां प्रदेशस्वीकारः। १०९–१९

१४४ संग्रहनये धर्माधर्माकाशजीवस्कन्धानां पञ्चानामेव प्रदेशाभ्युपगमः। १०९–२०

१४५ व्यवहारे पञ्चविधः प्रदेश इत्युपगमः। ११०—५

१४६ ऋजुसूत्रनये प्रदेशः स्याद्धर्मास्तिकायस्य, प्रदेशः स्यादधर्मास्तिकायस्य, प्रदेशः स्यादाकाशास्तिकायस्य, प्रदेशः स्यात्स्कन्धस्येति भजना। ११०–११

१४७ शब्दनये धर्मे धर्म इति वा प्रदेशो धर्मः, अधर्मे अधर्म इति वा प्रदेशोऽधर्मः, आकाशे आकाश इति वा प्रदेश आकाशः, इत्येवमभिधेयम्, जीवस्कन्धयोस्तु जीवे जीव इति वा प्रदेशो नोजीवः स्कन्धे स्कन्ध इति वा प्रदेशो नोस्कन्ध इत्येवमभिधेयम्। ११०–१९

१४८ समभिरूढनये धर्मश्चासौ प्रदेशो धर्मप्रदेशः, अधर्मश्चासौ प्रदेशोऽधर्मप्रदेश इत्याद्येव वक्तव्यम् १११–१८

१४९ एवम्भूतनये धर्मादीनां देशप्रदेशौ न स्त इति देशप्रदेशकल्पनारहितमखण्डमेव वस्त्वभिधातव्यमिति। ११२—३

१५० धान्यमानविशेषः प्रस्थकः तत्र वनगमनमारभ्य प्रस्थकनिष्पत्तिं यावन्नैगमभेदा यथोत्तरशुद्धाः, अतिशुद्धनैगमस्तु आकुट्टितनामानं प्रस्थकमाहेति भावितम्। ११२–२१

१५१ एतद्विषये व्यवहारस्य नैगमादविशेषः ११३-१२

१५२ संग्रहस्तु शुद्ध एव धान्यमापनविशेषलक्षणक्रिया-
करणवेलायामेव प्रस्थकोऽयमिति स्वीकरोतीति ११३-१३

१५३ ऋजुसूत्रस्तु निष्पन्नस्वरूपोऽर्थक्रियाहेतुः प्रस्थकः
तत्परिच्छिन्नं धान्यमित्युभयं प्रस्थक इत्याह ११४—१

१५४ त्रयोऽपि शब्दनयाः प्रस्थकेन धान्यं मीयते इत्या-
कारकधान्यमाननिश्चयलक्षणप्रयोजनाभिज्ञस्वरूप-
प्रस्थकाधिकारज्ञगतः प्रस्थकनिर्माणकर्तृरूप-
प्रस्थककर्तृगतो वा प्रस्थकोपयोग एव प्रस्थक
इति स्वीकुर्वन्ति ११४—७

१५५ वसतिराधारता सा यथोत्तरशुद्धानां नैगमभेदानां
लोकमारभ्य देवदत्तगृहमध्यं यावदवसेया, अति-
शुद्धनैगमनैगमस्तु वसन् वसतीत्याह ऐदम्पर्यमत्रो-
पवर्णितम् ११४-१३

१५६ वसतिविषये व्यवहारो नैगमसमानाभिप्रायकः ११६—७

१५७ उपचारानभ्युपगन्ता संग्रहस्तु संस्तारकारूढ एव
वसतीत्याह ११६-१३

१५८ ऋजुसूत्रस्तु येष्वाकाशप्रदेशेषु क्षणिकेषु क्षणिकस्य
देवदत्तादेर्यदैवावगाढो वर्त्तमानसमये तदैव तेषु
तस्य वासमभ्युपैतीति ११६-१७

१५९ त्रयोऽपि शब्दनयाः स्वात्मन्येव वसतिमभ्युप-
गच्छन्ति ११७—२

१६० लक्षणान्तराणि नैगमस्यापाकृत्य निर्दुष्टं लक्षणमुपदर्शितम्, तत्राव्याप्त्यादिदोषपरिहारश्च ११७—६
१६१ नैगमलक्षणस्य प्रमाणेऽतिव्याप्तेः परिहारः ११९—७
१६२ नैगमनयो नामादिनिक्षेपान् चतुरोऽप्यभ्युपगच्छति ११९—१२
१६३ तत्र नामनिक्षेपप्ररूपणम् ११९—१३
१६४ स्थापनानिक्षेपनिरूपणम् ११९—१७
१६५ द्रव्यनिक्षेपनिरूपणम् ११९—२१
१६६ भावनिक्षेपनिरूपणम् १२०—४
१६७ नामनिक्षेपाभ्युपगन्ता नयोऽपि नामनिक्षेपस्तन्मतमुपदर्शितम् १२०—८
१६८ 'जत्थ य जं जाणिज्जा' इति वचनप्रामाण्यान्निक्षेपचतुष्टयस्य सर्ववस्तुव्यापित्वं, यत्र व्यभिचारस्तद्भिन्नत्वमुपादाय व्याप्तिरिति मतमावेदितम् १२०—१९
१६९ अनभिलाप्यभावेष्वपि केवलिप्रज्ञारूपं नामाभ्युपगम्य निर्विशेषितवस्तुत्वव्यापकत्वं निक्षेपचतुष्टयस्य येऽभ्युपगच्छन्ति तन्मतमुपदर्श्य तत्प्रतिक्षेप्तृमतमुपदर्शितम् १२१—३
१७० द्रव्यनिक्षेपस्य वस्तुतत्त्वव्यापकत्वोपपत्तये देवजीवकारणत्वान्मनुष्यजीवो द्रव्यजीव इत्युपगमस्य दुष्टत्वमाविष्कृतम् १२१—१८

१७१ गुणपर्यायवियुक्तः प्रज्ञास्थापितो द्रव्यजीव इति
मतस्य मतान्तरस्यापि च खण्डनम् १२१-२१
१७२ द्रव्यार्थिकस्य नैगमस्य निक्षेपचतुष्टयाभ्युपगन्तृत्वं
न सम्भवतीत्याशङ्कया व्युदसनम् १२२—४
१७३ सङ्ग्रहनयस्य लक्षणम् , तत्र दोषपरिहारश्च १२२-१९
१७४ संग्रहनयमन्तव्योपदर्शनं तन्मूलिका औपनिषदानां
युक्तयः १२३-१८
१७५ संग्रहस्यापि निक्षेपचतुष्टयाभ्युपगन्तृत्वं नाम्नि
स्थापनाया अन्तर्भावात्स्थापनां नेच्छत्ययमिति
मतस्य खण्डनम् १२४—४
१७६ व्यवहारस्य लक्षणं, तस्य सामान्यानभ्युपगम-
पुरस्सरविशेषाभ्युपगन्तृत्वे 'वच्चइ विणिच्छियत्थं'
इति सूत्रं प्रमाणतया दर्शितम् १२६-१५
१७७ लौकिकसम इत्यादि तत्त्वार्थभाष्यं तत्र विशेषप्रति-
पादनपरं यथा तथाऽऽवेदितम् १२७-५
१७८ व्यवहारोऽपि निक्षेपचतुष्टयाभ्युपगन्ता, स्थापनां
नेच्छत्ययमिति मतस्य खण्डनम् १२७-११
१७९ ऋजुसूत्रस्य लक्षणं तत्र 'पच्चुप्पण्णग्गाही' इति
सूत्रं प्रमाणम् १२७-१८
१८० 'सतां साम्प्रतानाम्' इत्यादि तत्त्वार्थभाष्याभि-
प्रेतं तल्लक्षणं व्यवहारातिशायित्वप्रतिपत्तये १२८—९
१८१ प्राचां मतेऽस्यापि निक्षेपचतुष्टयाभ्युपगन्तृत्वं,

द्रव्यनिक्षेपं नेच्छत्ययमिति सिद्धसेनमतम् तत्र "उज्जुसुत्तस्स" इति सूत्रविरोधः १२८-१२

१८२ साम्पतादीनां शब्दनयत्वेनैक्यमिति मते त्रितयानुगतं लक्षणम् १२९-३

१८३ साम्पतनयलक्षणम् १२९-१०

१८४ साम्पतस्यैव शब्द इति संज्ञेति मते तल्लक्षणं, तत्र 'इच्छइ इति' सूत्रं प्रमाणं, "विशेषिततर" इत्यादिपद्यद्वयं नयोपदेशस्य संवादकं, तद्विशेषभावना नयरहस्यगतोपाध्यायानां दर्शिता १३०—२

१८५ ऋजुसूत्राच्छब्दनयस्य विशेषभावनायां सप्तापि भङ्गा उपदर्शिताः १३१—१

१८६ अत्र विशेषावश्यकभाष्यसंवाद उपपादितः १३३-१०

१८७ ऋजुसूत्रात्साम्पतस्य विशेषे प्रकारान्तरमुपदर्शितम् १३४—२

१८८ समभिरूढस्य लक्षणम् तत्र 'वत्थूओ' इति सूत्रं, तत्त्वार्थभाष्यञ्च प्रमाणमुपदर्शितम् १३४- ९

१८९ उपाध्यायदर्शितोऽस्याभिप्राय आवेदितः १३४-१३

१९० नयरहस्यप्रकरणगतमेवम्भूतस्य लक्षणं, तत्र सूत्रं तत्त्वार्थभाष्यञ्च प्रमाणमावेदितम् १३५-१८

१९१ एतत्सिद्धान्तावेदनम्, तत्र प्राणधारणाभावात्सिद्धस्य न जीवत्वं, तत्र भाष्यसंवादः १३६—२

१९२ जीवो नोजीवोऽजीवो नोऽजीव इत्याकारिते

नैगमादीनां समानार्थकत्वम् , एवम्भूतस्य तद्वै-
लक्षण्यमुपपादितम् १३६–१०

१९३ दिगम्बरमतमुपदर्शितं, तत्र भावप्राणधारणा-
त्सिद्धस्यैवैवम्भूतनये जीवत्वं न संसारिणः, तत्र
द्रव्यसंग्रहवचनसंवादः १३७—४

१९४ एतन्मतस्य चिन्तनीयत्वे युक्तिस्तोम आवेदितः। १३७-१५

१९५ एतन्नये सिद्धस्यापि सत्त्वात्मस्वभावत्वम् ,
भावनिक्षेप एवायमुररीकरोतीति । १३८-१४

१९६ शक्तिग्राहकतया निक्षेपाणामुपयोगः, अर्थनयसमु-
त्थसप्तभङ्ग्यामर्थनयानां शब्दनयसमुत्थसप्तभंग्यां
शब्दनयानामुपयोग इति निक्षेपनयनिरूपणं प्रकृते-
नासंगतम् १३८-१६

१९७ प्रशस्तौ प्रमाणनीतिस्वभावाभ्यां सप्तभंगीभ्यां
वादे परजेतृत्वं स्याद्वादिनः १३९—१

१९८ नयप्रभवत्वं सप्तभंग्या विशिष्यावेदितम् १३९—५

१९९ निक्षेपनयाभ्यां सप्तधर्माणामेकत्राविरोधतस्सुसं-
गतत्वम् १३९—९

२०० प्रतिभंगं सप्तभंग्या नयकृतत्वतोऽसङ्कीर्ण-
स्वभावत्वम् १३९-१३

२०१ अत्र दोषावश्यम्भावः तच्छोधनं तद्व्यावृतीनां
कृतिनामभ्यर्थनं विनैव कृत्यम् १३९-१७

२०२ पद्यद्वयेन गुरुपरमगुरूणां श्रीनेमिसूरीश्वराणां

स्तवनं शिष्यसूरिसमष्टिनामगर्भितम् १३९–२१
२०३ गुणकदम्बेन परमगुरोरुदयसूरेः स्तुतिः १४०—७
२०४ स्वगुरोर्नन्दनसूरेस्स्तवनम् १४०–११
२०५ ग्रन्थकर्तृनामग्रन्थोत्कृष्टत्वग्रन्थफलाशंसाद्युपदर्शनम् १४०–१५
२०६ ग्रन्थनिर्माणस्थानकालपरिचय १४०–१९

इति सप्तभङ्गीमीमांसानुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ निक्षेपमीमांसाप्रकरणस्य विषयानुक्रमणिका ॥

अङ्कः विषयाः पृ० पं०

१ मङ्गलाचरणे श्रीवीरप्रभोर्नमस्करणम् १–१३

२ गुरुपरमगुरु–परमगुरु–गुरूणां नमस्करणपुरस्सरं कर्तुः कर्त्तव्यग्रन्थस्य च नामोल्लेखः १–१५

३ निक्षेपमीमांसाकर्त्तव्यत्वाक्षेपे तत्त्व–तदधिगमोपायान्यतरत्वाभावः शक्तिग्राहकत्वात्तदभिधानं तु तत्त्वार्थाधिगमे सर्वतः प्रथममेव प्रसक्तं, कोशादेव वा शक्तिग्रहे न तदभिधानावश्यकतेति २—१

४ निक्षेपस्यापि तत्त्वभूतत्वमतत्त्वेन तत्त्वव्यवस्थानुपपत्तेः, प्रमाणनययोरिवास्य चतुर्विधस्यापि शक्तिग्राहकतया तत्त्वनिर्णयनिबन्धनत्वमप्रस्तुतार्थापाकरणप्रस्तुतार्थव्यकरणप्रयोजनकत्वेनोपपादितम् ३—३

५ तन्त्रान्तरीयैरपि निक्षेप आदृतः ३–२२

६ तत्र गौतमीयानां निक्षेपचतुष्टयाभ्युपगम आवेदितो नाम्नोऽपि पदार्थत्वस्वीकारावश्यम्भावतः ४—१

७ वैयाकरणैस्तु कण्ठत एव नाम्नः पदार्थत्वमभिहितम् ४—८

८ प्रमाणनययोर्निक्षेपापेक्षा व्यवस्थापिता ४–१०

९ अत्रैव प्रसङ्गात्स्याद्वादप्रभवज्ञानकेवलज्ञानयोर्मुख्यवृत्त्या प्रामाण्यं, स्याद्वादसंस्कारबलादेव सर्वधर्मविभासनतो ज्ञानान्तराणां प्रामाण्यमत्रोपाध्यायसम्मतिः, तत एव निक्षेपापेक्षाप्यशेषस्य प्रमाणस्य । ४–१५

१० नयापेक्ष्यत्वं निक्षेपस्योपपादितम् ६—२

११ प्रमाणनयावपि निक्षेपेणापेक्षणीयाविति । ६—२२

१२ प्रमाणस्य जघन्यतो निक्षेपचतुष्टयाभ्युपगमः, नयस्य तु केषाञ्चिन्मते द्रव्यास्तिकनयस्य नामादिनिक्षेपत्रयाभ्युपगमः, पर्यायास्तिकस्य भावनिक्षेपाभ्युपगम इति ७—७

१३ निक्षेपस्य तत्त्वस्वरूपत्वेऽपि पौद्गलिकशब्दान्तर्भूतत्वान्न पृथक्तया तत्त्वपरिगणनसूत्रे न परिगणनम् ७–१५

१४ एवं प्रमाणनययोरपि जीवतत्त्वान्तर्भूतत्वादेव तत्सूत्रे न पृथग्गणनम् ७–२१

१५ निक्षेपस्य तत्त्वविवरणाङ्गत्वमेव न तु तत्त्वाधिगमोपायत्वमिति तत्प्रदर्शकसूत्रे न तस्य कथनम् ८—२

१६ निक्षेपस्य निर्देशादिप्ररूपकसूत्रे सत्संख्याद्युपदर्शकसूत्रे च न परिगणनं किन्तु पृथक्सूत्रसूत्रणीयत्वमित्युपपादितम् ८–११

१७ निक्षेपानभिधानेऽपि तत्त्वसूत्रप्रवृत्तिस्तदनन्तरं निक्षेपसूत्रप्रवृत्तिरित्युपपादितम् ८–१७

१८ व्याख्याङ्गस्य निक्षेपस्य यथा न शक्तिग्राहककोशादितो गतार्थत्वं तथोपपादितं प्रसंगादत्र नामनिक्षेपादिचतुष्टयस्वरूपमपि लक्षितम् ९–११

१९ स्वर्गाधिपेन्द्रमधिकृत्य यथा नामनिक्षेपादिचतुष्टयप्रवृत्तिस्तथा नामेन्द्रगोपालदारकमधिकृत्यापि नामनिक्षेपादिचतुष्टयप्रवृत्तिस्सम्भवतीति प्रश्नोत्तराभ्यामुपपादितम् ११—७

२० केवलज्ञानैकसमधिगम्येषु शब्दानभिलाप्येषु भावेषु वाचकशब्दाभावाच्छक्तिग्राहकवचनविशेषलक्षणनिक्षेपासम्भवेऽपि निक्षेपस्वरूपयोग्या आकृतिद्रव्यभावास्सन्त्येतावता तन्निक्षेपा उपागताः, नाम तु निक्षेपविषयकस्वरूपत एव नास्तीति न तन्निक्षेप इति प्रश्नोत्तराभ्यां दर्शितम् १२–११

२१ अत्र येषां नामै[illegible]

व्याख्यानाभावे तदंगनिक्षेपाभाव इष्ट एवेति दर्शितम् । १४--६

२२ निक्षेपस्य निरूपणीयत्वे व्यवस्थिते तल्लक्षणविषयकः प्रश्नः तत्र लक्षणान्तरमाशंक्यापाकृतम् १४-१३

२३ तत्प्रतिविधाने विशिष्य व्याख्याङ्गत्वमुपपाद्य निक्षेपसामान्यस्य लक्षणं तस्य सर्वलक्ष्यसमन्वयश्च दर्शितः । १५-२०

२४ नामादिनिक्षेपाभ्युपगन्तुर्नयस्य नामनिक्षेपत्वं तन्मन्तव्यश्चोपदर्शितम् १७-२०

२५ वस्तुमात्रस्य नामरूपत्वेऽनुमानं प्रमाणं दोषापनोदश्च १८—२

२६ अर्थस्य नामरूपत्वे 'व्यक्तौ नष्टेऽपी'ति वचनमुपदर्शितम् १९—४

२७ नाम्नोऽर्थरूपताऽऽशंक्य परिहृता १९-१३

२८ नामनिक्षेपनयोद्भूतस्य भर्तृहरिमतस्य प्रदर्शनम् १९-२०

२९ तत्र 'न सोऽस्ती'ति पद्यद्वयमुपदर्शितम् २०—४

३० स्थापनानिक्षेपाभ्युपगन्ता नयः तद्रूपः । तन्मते सर्वस्य वस्तुन आकाररूपत्वेऽनुमानं प्रमाणं तदभिप्रायश्चोपदर्शितस्तथावेदकः २०-८

३१ एतदभिप्रायमाश्रित्य 'कुलालव्यापृतेरिति' वचनं, तन्मूलकत्वञ्च नैयायिकाद्युपगमावयवावयविवादस्योपपादितम् २२—९

३२ नामस्थापनानिक्षेपद्वयमूलकत्वं वेदाभ्युपगते ज-

गतो नामरूपात्मकतावादे, तत्र 'सच्चित्सुखात्मकमिति' वचनमुल्लिखितम् २३–१४
३३ द्रव्यनिक्षेपाभ्युपगन्ता नयो द्रव्यनिक्षेपः, तन्मते सर्वस्य द्रव्यरूपत्वेऽनुमानं दोषपरिहारश्च २४–१६
३४ एतन्मते त्रिकालावर्तिनोऽवस्तुत्वे 'न व्यक्तेः पूर्वमस्त्येवेति' पद्यत्रयमुपदर्शितम् २५–१२
३५ द्रव्यनिक्षेपप्रभवः परिणामवादः सांख्यस्य विवर्तवादश्चानिर्वचनीयवादपर्यवसन्नो वेदान्तिनो जैनाभ्युपगतपरिणामवादव्यतिरिक्त उपपादितः २५–१८
३६ जैनवेदान्तिपरिणामवादयोरभिप्रायोपदर्शनपुरस्सरं भेद उपपादितः विवर्त्तवादश्च दर्शितः । २६–१४
३७ भावनिक्षेपाभ्युपगन्ता नयोऽपि भावनिक्षेपः, तन्मते सर्वस्य वस्तुनो भावरूपत्वमेव, तत्रानुमानं प्रमाणं, तदभिप्रायश्च स्पष्टीकृतः २७–१९
३८ भावनिक्षेपमूलकं सौगतदर्शनं, तन्मते यथा न द्रव्यनामाकृतीनां सम्भवस्तथोपपादितम् २८–२२
३९ निष्कर्षोपदर्शने नामघटादिशब्दानामवश्याभ्युपगन्तव्यत्वं, तेषां प्रतिनियतार्थे निक्षेपत्वं, नामनिक्षेपादीनां चतुर्णां लक्षणानि च दर्शितानि २९–१४
४० नामादि चतुर्षु पदानां शक्त्यवबोधकं वचनं निक्षेप इत्यस्य निक्षेपसामान्यलक्षणत्वमपाकृतम् ३०—५
४१ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावान्यतमेषु शक्तिप्रतिपादकवचनं निक्षेप इत्यस्यापि निक्षेपसामान्यलक्षणत्वं व्युदस्तम् ३०–१५

४२ अत्र भावे विभिन्नसम्बन्धेन वर्त्तमानानां नामादि-
चतुर्णां विभिन्ननिक्षेपप्रयोजकत्वमुपदर्शितम् ३०–१७
४३ निक्षेपसामान्यलक्षणमुपदर्श्य तस्य तत्तत्पदविशेष-
निक्षेपसामान्यलक्षणपर्यवसानमाविष्कृतम् ३२—५
४४ घटादिपदानां नामघटाद्यर्थकत्वेऽपि न नानार्थत्वं
हर्यादिपदानाञ्च नानार्थत्वमित्यत्र विनिगमकमुप-
दर्शितम् ३३—२
४५ नैगमादि ऋजुसूत्रान्तानामर्थनयानां सर्वनिक्षेपा-
भ्युपगन्तृत्वं शब्दनयानां भावनिक्षेपाभ्युपगन्तृत्वं
सैद्धान्तिकमते, नव्यमते ऋजुसूत्रो द्रव्यनिक्षेपं
नाभ्युपगच्छतीत्यादिविचारो ग्रन्थान्तरतोऽवसेय
इत्युपदेशः ३३–१५
४६ प्रशस्तौ श्रीमन्तो नेमिसूरीश्वरास्तत्पट्टालंकारा
उदयसूरिमहोदयास्तत्पट्टविभूषणा नन्दनसूरय-
श्चातिपरमगुरुपरमगुरुगुरवः स्तुताः ३४—२
४७ ग्रन्थकर्तुः स्वनामख्यापनपुरस्सरं निक्षेपमीमांसा-
भिधग्रन्थस्य विशिष्टगुणस्य विबुधगणमोदप्रदाना-
शंसनं सतां तद्गतजैनविचारबहिर्भूतार्थगुम्फनदोष-
क्षमाप्रार्थनम् ३४–१२
४८ ग्रन्थसमाप्तिसमयोपदर्शनपुरस्सरं सिद्धिफलदाना-
शंसनम् ३४–१८

॥ इति निक्षेपमीमांसाऽनुक्रमणिका समाप्ता ॥

॥ सप्तभङ्गीमीमांसाप्रकरणस्य शुद्धयशुद्धिपत्रम् ॥

शुद्धम्	अशुद्धम्	पृ. पं.	शुद्धम्	अशुद्धम	पृ. पं.
रा मि	रामि	१–१३	वाक्यत्वेना	वाक्येना	९–१४
प्रतिभान्	प्रतिमान्	२—१	वाच्यं	वाक्यं	९–१६
सन्त्वर्थ	सन्त्यर्थ	२–१२	वाच्यं, यत:	वाच्यं यतः	९–१८
भावा,	भावाः	२–१५	उक्ता–	उक्ता	९–२०
भावाद	भावद	३—५	रत्वानि	रत्वनि	१०—१
ङ्ग्यास्सं	ङ्गयारसं	३–१८	निष्ठप्र	निष्ठा-प्र	१०—२
मविगा	र्मविगा	४—१	दिनः । ननु	दिनः ननु	१०—३
वाक्यस्य	वाक्यं	४—३	स्ति त्वा	स्ति । त्वा	१०–२०
भङ्गीप्रमाण	भङ्गी प्रमाण	४–११	भवत्येवो	भवत्यवो	११—२
भिदया	भिधया	४–१७	स्याद्वादिप्र	स्याद्वादप्र	११—७
माऽने	ना नै	४–१८	निष्ठप्र	निष्टप्र	११–२०
नि ।	निः	४–१९	संशयनि	संशयानि	१३—९
ण–गु	ण गु	५–१८	कतानि	कतानि-रूपितानि	१३–१८
विकत्व	वित्व	६ — ६	विषयाऽपि	विधया स्ति	१४—६
प्रभृतिप्रणीत-ग्रन्थ	प्रभृतिग्रन्थ	६–१०	युक्तिसूत्रणसूत्र	युक्तिसूत्र	१४–१०
ङ्गार्थोद्बो	ङ्गार्थाद् बो	६–१४	यथा	तथा	१४–१८
पत्त्या	पत्या	६–१८	नवा घट इति	न वेति	१५—३
यं प्रति का	यप्रतिका	७–१२	व्यत्वम्	व्यत्वम्	१५–१०
स्तित्ववि	स्तिवि	७–१७	धर्मद्वयविषयक प्रतिपत्ति विष-यिणी किं प्रा-धान्येन विधि-निषेधधर्मद्वयकत्व	धर्मद्वय	१६–१०
यथोक्त्या	यथोक्तया	७–२२			
एवं	एंव	८—५			
ऽस्तित्व	ऽतित्व	८—९			
तकतिङन्त	तकत्वाद् यन्त	९—७			

प्रकारतानिरू	प्रकारतानरू	१७—८
निरूपित परद्- व्याद्यपेक्षया ना- स्तित्वनिष्ठप्र- कारतानिरूपित	निरूपित	१८—४
निवर्त्तकस्य	निवर्त्तकः	१८—१६
प्रयोक्तव्यत्वं	प्रयोज्यत्वं	१८—१४
प्रथम·	प्रथमा	१८—१६
चेत्, न, ग्रतो- ऽस्ति	चेन्नास्ति	१९—२
यो युग	यः युग	१९—१८
क्ष्यना	क्ष्य ना	१९—२१
प्रयोक्तव्यत्वं	प्रयोज्यत्वं	२०—४
इत्येवं प्रयुज्य- मानं	इत्येवं प्रयुज्य- मानं संशयवि- शेषतन्मूलका- ङ्क्षा निवर्त्तकं तथा कथञ्चिद- स्तित्वेन सहावक्तव्य- त्वस्य सहभाव- विवक्षया स्याद- स्त्येव स्याद- वक्तव्य एव घट इत्येवं प्र- युज्यमानं	२०—१०
वक्तव्यत्ववान्	वक्तव्यवान्	२०—१६
त्वेन सह सह- भावो	त्वेन सहभावो	२१—८
यथा तथा किं	यथा किं	२२—५
एव घट इति	एव इति	२२—१०
भावनिष्ठ	भाव निष्ठ	२२—१४
रतानिरू	रता निरू	२२—१४
वच्छि-	वाच्छि	२२—१४
लक्षणायाः सप्त-	लक्षणा सप्तम-	२३—८
भङ्ग्या एव	द्वयेव	
भावत्वावच्छिन्न	भावावच्छिन्न	२४—६
निष्ठप्र	निष्ठप	२४—१२
ता तादृशविशे- षताकत्वे	ताकत्वे	२४—१२
रतानिरू	रता निरू	२४—२२
रतानिरू	रतानिरू	२५—११
ष्यता तन्नि	ष्यता तन्नि	२५—२१
तादृशबोध	तादृशे बोध	२६—१४
वक्तव्यत्वस्य	वक्तव्यस्य	२६—१६
व्यत्वात्स्य	व्यत्वात्स	२६—१८
च यद् यद्रूपेण	च यद्रूपेण	२६—२२
द् वक्तव्य	दवक्तव्य	२७—३
प्रवृत्तभङ्ग	प्रवृत्तभङ्ग	२७—४
धर्मं	धम	२७—५
वेति स्वतन्त्र	वेति। स्वतन्त्र	२७—१०
व्यः स्याद- वक्तव्यः	व्य स्याद- वक्तव्य	२७—१५
तद्द्वितीय	तद्वितीय	२८—६

इति न तृतीय	इति तृतीय	२८–१०
षष्ठभङ्गे	षष्ठमभङ्गे	२८–१०
भङ्गप्रति	भङ्ग प्रति	२८–११
नाष्टमो	नष्टमो	२८–१८
धर्मः प्रवि	धर्मो न प्रवि	२८–१८
प्रतिपाद्यते द्वि-तीयभङ्गेन कथ-ञ्चिन्नास्तित्व ल-क्षणनिषेधधर्मः	प्रतिपाद्यते	
प्रतिपाद्यते इति	इति	२८–२१
धिकरणवृत्ति	धिकवृत्ति	२९–६
युगपत्प्र	युगप्रत्र	२९–७
भङ्गोऽस्त्येवेति	भङ्गेऽस्त्येवेति	२९–१७
देव न नास्ति	देव नास्ति	२९–१९
भङ्गाना	भङ्गना	३०–३
दनश्वा	दनस्त्वा	३०–४
स्वस्वनिमित्ता	स्वत्व निमित्ता	३०–८
मानास्सन्तः	मानाः सन्तः	३०–९
भङ्गीमीमां	भङ्गीमीमां	३०–१३
भङ्गीलक्षण	भङ्गी लक्षण	३०–१५
भिदया	भिधया	३१–१
ध्वनिर्बिधि	ध्वनिविधि	३१–८
प्रमाणाबा	प्रमागबा	३१–१५
त्युपादानात्	त्युपादनात्	३१–१८
प्रसङ्गो न	प्रसङ्गे न	३१–१९
चैतानि	च तानि	३२–११
कर्तव्यत्वम्,	कर्तव्यम्,	३४–५

न्धनत्वमिति	न्धनमिति	३५–४
नीन्तस्य	नीन्सनस्य	३५–१२
विशेषितं	विशेषित	३५–१८
पणानि	पणा नि	३६–२
सूर्याचन्द्र	सूर्यचन्द्र	३६–११
दर्थेद्वयप्र	दर्थप्र	३६–१२
निषेधपू	निषेधत्वपू	३७–३
सप्तभङ्ग	सप्तमभङ्ग	४२–६
मात्रस्य तत	मात्रस्य। तत	४२–१५
तीति आद्यौ	तीति। आद्यौ	४२–१८
कृत्या	कृत्वा	४३–१
सत्त्वादेर	सत्त्वादिर	४३–१४
लक्षणं तेषां	लक्षणं वा तेषां	४३–२१
प्रथमसत्त्व	प्रथमसत्त्वम-सत्त्व	४४–११
या त	यात	४५–३
भङ्गोऽपि	भङ्गेऽपि	४८–७
स्तित्वना	स्तिना	४८–१३
चा भावात्	च भावात्	४८–२१
ततः समास°	तत :समास°	५१–८
व्यात्	व्यात्,	५१–१३
मभिधानो	मभिदधानो	५२–१३
काल–	काल	५६–९
यतस्तु	यस्तु	५६–२०
प्रत्यर्थ	प्रत्यय	५९–१७
त्वात्प्रमाणं,	त्वात्प्रमाण,	६०–१२
जातं तु	जात तु	६१–७

पाटवार्थम्	पाटनार्थम्	६१–११	माख्याणो	माख्यानां	८२—४
भङ्गो, नापि	भङ्गो नापि	६२—१५	वचनविशे	विचनाविशे	८३–१५
क्षितं	क्षित	६३—२	सत्तथा	स तथा	८३–१५
षय	षय–	६३—८	विशुद्द	विशुद्ध	८३–१८
इत्या	मित्या	६३—९	स्वतन्त्रैकान्ते	स्वतन्त्रकान्ते	८३–२१
दर्श	दर्श,	६३–१२	नुपपन्नं,	नुप्पन्नं	८४—६
त्मक एक	त्मकं एक	६३–२०	दकपुर	दपुर	८४–१५
सदसदु	सदसदु	६४—७	शेषधर्म	शेषधम	८५–१६
दवाच्यत्वमिति	दवाच्यमिति	६७–१०	विन्क्षा	विपक्षा	८५–१७
चाघट इति द्वि	चाघटः द्वि	६८—३	दकाः	दका।	८५–१८
गोपालदारका	गोपालका	६८—९	त्कोऽस्य वि	त्कोऽस्यावि	८६–१९
वेशः स	वेश स	६८—९	त्वयोरत्र	त्वयोस्त	८७–२२
भङ्गः स	भङ्ग स	७०–१६	मध्यौत्सर्गिकं	मप्योत्सर्गिकं	८८—६
जन्यप्रत्यक्षविष	जन्यविष	७०–१८	व्यत्वं	व्यवै	८८—९
जन्यप्रत्यक्षविष	जन्यविष	७०–१९	मित्तं फला	मित्तफला	८८–१४
वक्तव्यः	वक्तव्य	७१—४	प्रत्येकं	प्रत्येक	९०–१५
त्येवं	त्येव	७४–१४	तत्प्रति	तत्पति	९१—६
कत्वं तत्रा	कत्य तत्रा	७४–१७	र्ययाभ्याम	र्ययाम	९१–२०
भङ्गः,	भङ्ग,	७४–१९	भङ्गार्थतत्रा–	भङ्गाथत्वा-	९१–२०
विवक्षितत्वं,	विवक्षितं	७५–१७	मद्भिर्य	मद्भिय	९२—२
द्वितीये घटा	द्वितीयघटा	७८–१२	व्यत्वभङ्गो	व्यभङ्गो	९३–११
व्यत्वमपि	व्यमपि	७९–१०	वाऽन्यथा	वऽन्यथा	९४—७
प्रतिनियता	प्रतिनिव्यता	७९–१५	रर्जुसू	रजुसू	९४—९
भवादत्र	भावदत्र	८१—१	भङ्गयर्थज्ञानं	भङ्गयं ज्ञान	९५—५
सम्म–	सम्म	८१–१५	नभः पृथक्	नत्र पृथक्	९५–२०
त्तरं न सन्दु	त्तरं सन्दु	८१–१७	इत्यतो	इत्य तो	९५–२२
सामूहिक	सामुहिक	८१–२२	मीमांसितं	मीमासितं	९६–१८

मित्येवं	मित्येवं	९६–२१
पाद्यन्तत्र	पादस्तत्र	९७–२१
दोऽस्त्येवेति	दोऽस्त्यवेति	९८—४
स्तित्वनम	स्तित्वम्भ	९८–१८
त्वादिसामा	त्वादि सामा	१०१–९
इत्यादरे चे	इत्यादेरचे	१०२–१
न त्वेनास्त्येव	नत्वे नास्त्येव	१०२–१
दिङ्क्ष	दिक्ष	१०२-१०
संग्रहणा	संग्रणा	१०३–२
त्तकव्यव–	त्तकव्यैव	१०३–१९
न्योन्यासं	न्योन्यसं	१०४—२
भङ्ग	भङ्ग	१०५—१
शग्राही	शाप्रतिक्षेपी	१०६–१९
येकदेश	यैक देश	१०७—९
यताशून्य	यशून्य	१०७–१०
तत्सम्मतौ,	तत्सम्मतौ	१०८—१
मात्रग्राहित्वं	मात्र ग्राहित्वं	१०८—५
यान्तर्भावात्	यान्तर्भेदात्	१०९–११
नय	नयस	१०९–१६
प्रदेशं	प्रदेश	१०९–२०
मेव प्र	मेवप्र	१०९–२१
एवमधर्मा	एवं धर्मा	११०—१
कायप्रदेशः	काय प्रदेशः	११०–१४
स्कन्ध इति वा प्रदेशः स्कन्ध इति	स्कन्ध इति	१११–१५
सप्तमीप्रयोग-	सप्तमी प्रयोग-	१११–२१

इत्येवं सति इत्येवं लोके	लोके	११२–१०
द्वौ तेन सम	द्वैसम	११२–१७
व्रते	वर्तते	११३—४
तत्प्रस्थक	तत्प्रथस्क	११३–११
नैगमाभि	नैगमभि	११५—१
भयाऽभ्यु	भयोऽभ्यु	११७—९
विशिष्टस्वतन्त्र	स्वतन्त्र	११८–११
त्वविशिष्टस्वतन्त्र	त्वस्वतन्त्र	११८–१२
सम्बन्धो,	सम्बन्धा	१२१–१७
मनुष्य-	मनुष्य	१२१–१८
द्रव्यमात्रा	द्रव्यामात्रा	१२२—५
त्वाभ्युपगमे	त्वाभ्यगमे	१२२—७
प्रवणा प्र	प्रवणाप्र	१२२–१८
नात् स	नास	१२२–२०
स्यत्र स	स्यत्रस	१२२–२१
सर्पस्येवा	सर्वस्येवा	१२४—२
स्वलक्षणं	स्वं लक्षणं	१२४–१०
नाम्नि,	नाम्नि	१२४–१७
नामेन्द्रे गो	नामेन्द्र गो	१२५—२
एव	एव,	१२५—६
तदा	तथा	१२५—९
षामेव ना	षां यथा	१२५–१७
निबन्धनं	निबन्धन	१२५–२१
त्रस	त्र स	१२६—४
नाम्नोर्वि	नाम्नो वि	१२६—५
सामान्यान	सामान्यन	१२६–२२

न्यापोह	न्योपोह	१२७—५	म्रहे"	म्रहो"	१३७–१४
स्थापना-	स्थापना	१२७–१७	निमित्तत्वात्,	निमित्वात्	१३७–१७
मवसेयः	मवेसयः	१२८–१२	द्व्यवहारा	द्व्यहारा	१३८—२
एवार्थक्रिया	एवार्थ क्रिया	१२८–१५	रूक्त	रूक्तं	१३८—३
भावाविस्य	भावाचेत्य	१२८–१८	सत्त्वः,	सत्त्व,	१३८–१४
नपर्याया-	नर्पयाया-	१२९–१२	नाम-	नामा-	१३८–१६
पुण्णं	पुण्णं	१३०—५	याऽस्तित्वना	याऽस्तिना	१३८–१७
तत्प्रत्व	तत्प्पत्य	१३०—९	सप्तभङ्गी	सप्त भङ्गीं	१३८–२२
वेना	वे ना	१३१—२	नाजा	ना जा	१३९—६
एव, कुम्भः	एव कुम्भः,	१३१—५	यथा-	यथा,	१३९—७
भङ्गः	भङ्ग	१३१–१३	ति–प्र	ति प्र	१४०–१
देशमत्वान्न	देशवन्न	१३२—८	र्मप्र	र्मप	१४०—४
यो भङ्गः	य भङ्ग	१३२–१७	टा ज	टाः ज	१४०—६
भ्यामे	भ्यमे	१३३—७	यः श्री	यश्री	१४०—७
व्यश्च	श्च	१३३—८	नैकान्त	नैकान्त	१४०—८
हीतश्च	हितश्च	१३३–१८	वै शर	वैशर	१४०–२१
र्णं वस्तु	ण वस्तु	१३३–२२	दित्यके,	दित्ये,	१४०–२१
ति ।	ति	१३४—८	मीमांसाऽऽश्विन- शृङ्गे सुरचितो तात् कृता- राकादिने मोददाप्रौढ	मीमांसा जय- ऽऽश्विनासिते राकादिने शारदे प्रौढ	१४०–२२
पराऽन्य	परोऽन्य	१३४–१०			
ऽपि सं	ऽपिसं	१३४–१५			
पागे	पकारे	१३५–१२			
अतो जीवो	अतजीवो	१३६–१०			
शिष्टस्यै	शिस्ये	१३६–२२	प्रौढ	पोढ	१४१—३
गृह्णाति	गृह्याति	१३७—१	पुरन्दर	पुरदन्दर	१४१—७
धारणात्	धरणात्	१३७–१०	प्रौढ	पौढ	१४१–१०

॥ सप्तभङ्गीप्रकरणस्य शुद्ध्यशुद्धिपत्रं समाप्तम् ॥

॥ निक्षेपमीमांसाप्रकरणस्य शुद्ध्यशुद्धिपत्रम् ॥

शुद्धम्	अशुद्धम्	पृ० पं.	शुद्धम्	अशुद्धम्	पृ० पं.
लङ्कारा	लङ्क रा	१४३–१०	दाया–	दाय	१२–२१
ऐन्द्र	एन्द्र	१४३–१४	क्षेपाणा	क्षेपाना	१३–१३
पार्थतत्त्वा	पार्थ सत्वा	१४४–२०	मेव	मेर	१३–१७
शब्दार्थ	शब्दाथ	३–८	द्रव्यं पूर्व	द्रव्यंपूर्व	१३–१९
त्यादौ	त्यदौ	३–१३	केवलं	केवल	१३–२१
भ्युपगच्छद्भि	भ्युपमच्छद्भि	४–२	क्षतिमा	क्षतिम्मा	१४–९
प्रामाण्यम् ,	प्रामाणं,	४–१८	पि क्ति	पिकि	१४–१२
सङ्गति	संङ्गति	४–२२	इता ।	इता, ।	१४–१७
भेदेन	भेदेनं	५–५	विशेष्यविशेषण	विशेषण	१६–५
मद्भिर्वंशो	मद्भियशा	५–१७	दङ्गभावं बि	दङ्गीभाव वि	१६–९
पेक्षाया	पेक्षया	६–१	वर्त्तितया	वत्तितया	१६–१२
सत्त्वासत्त्वे	सत्वासत्वे	६–५	त्यलवच	त्यलं वच	१६–१७
निक्षेपाणा	निक्षेपाना	७–५	रव्यवहित	रववहित	१७–१
र्थान्तर्भूत	र्थान्तभूत	७–१८	ङ्गः, एवं	ङ्गः एवं	१७–१५
पृथक्तया	पृथक्त्वतया	७–१९	वधि,	वधि	१७–१५
लक्षितजीव	लक्षितं जीव	८–१	प्रतीय	प्रतिय	१८–३
पृथकृत्य	पृथक्त्वस्य	८–१	नत्वाद्वा,	नन्त्वाद्वा,	१८–४
मङ्गलमङ्ग	मलभव्य	८–७	पमिति	पमेवेति	१८–६
ध्यय	ध्ययय	९–१६	रूपत्वे	रूपत्वं	१८–६
जीव्यागम	जीव्यमागम	९–२१	तिष्ठेदिति	तिष्टेदिति	१८–१०
शब्दवाच्य	शब्द वाच्य	१०–२	मूत्सत्ताव्य	मूत्सताव्य	१८–१७
र्यायापन्नं	र्यायपत्रं	१०–२२	वक्त्रेष्व	वक्त्रेष्व	१९–४
जीवपदस्य	जीपदस्य	११–१	पादितं	पादित	१९–६
मानो	माना	१२–१५	देयस्यो	देयायो	१९–२४
केन्द्रार्थ–	केन्द्राथ	१२–१८	वभासते	भासते	२०–२

किमपीत्यें	किमपि त्ये	२०—२
दृष्टान्ता	दष्टान्ता	२०—१२
मृदादि गुण	मृदादिगुण	२०—२१
द्रव्यद्रव्यं	द्रव्यद्रव्य	२१—२
मेवाम्भु	मेम्भु	२१—३
बाधैव, पर	बाधैव पर	२१—६
त्वमभङ्ग—	त्वनमअङ्ग—	२१—१९
विधातु—	विधाउ—	२१—२२
मवलम्ब्यैव	मलम्ब्यैव	२२—४
कादेः	कदेः	२२—५
एतद	यतद	२२—८
घ, त—	घृत	२२—१५
गुरुत्वा	गुरुत्वा	२२—१८
रूपता, नाम	रूपता नाम	२२—२२
अयं घटो	अय घटो	२३—६
इति, न	इति न	२३—१६
भेदा	मेदा	२३—१७
प्रसङ्गा—	प्रङ्गा—	२४—५
र्थतादात्म्यं	र्थदात्म्य	१४—१३
भ्युपगन्ता	भ्युगन्ता	२४—१६
भूतानि	भुतानि	२५—१४
द्रव्यरूपताऽपि	द्व्यरूपाताऽपि	२६—७
जनानां	जनानां	२७—१
तत्सम्बन्ध	सत्सम्बन्ध	२७—११
नामघटा	नाम घटा	२८—१०
दयन्त	दयत	२८—१०
नामनामा—	नामनमा—	२८—२०
वयवानां	वयवावानां	२९—८
नामघटा	नाम घटा	२९—१४
न्यथा	मन्था	२९—१५
लक्षणं	लक्षण	३०—१६
नाल	ना ल	३१—४
कत्वम्,	कत्वं	३१—१९
भाववद	भावद	३२—१४
मिति न तस्य	मिति तस्य	३२—१७
टादिस	टादि स	३३—६
दिवा	दीवा	३३—१९
कल्याण	कल्काण	३४—१९
सिद्धिदा	सिद्धिदाः	३४—१९
विरचिते	विराचेते	३४—२०
रूपं श्री	रूपंश्री	३४—२१

॥ इति निक्षेपमीमांसाशुद्ध्यशुद्धिपत्रम् ॥

॥ ॐ अर्हम् नमः ॥

॥ सर्वलब्धिसम्पन्नश्रीगौतमस्वामिने नमः ॥

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र–शासनप्रभावक–सूरिचक्रचक्रवर्ति–जगद्गुरु–
तपागच्छाधिपति–प्रौढप्रभाव–प्रभूततीर्थोद्धारक–
श्रीमद्विजयनेमिसूरिभगवद्भ्यो नमः ॥

मुनिप्रवरश्रीशिवानन्दविजयप्रणीतम्

॥ सप्तभङ्गीमीमांसाप्रकरणम् ॥

सकलमपि पदार्थं केवलेनावधार्य,
प्रथयति निजवाचा यस्त्रिपद्याऽऽर्यवर्यः ।
हरतु निखिलविघ्नान् तीर्थकृद्विश्वपूज्यः,
स्मृतिपथमुपनीतो वीर इष्टप्रदः सः ॥१॥

येषामस्खलिता निसर्गमधुरा सत्पक्षनिष्ठाऽवरा,
नीतिव्रातकृतादरामितिगणोल्लासैकनीताशया ।
ऊहापोहविचारणापरिगता भव्याश्रिता भारती,
तान् भक्त्या प्रणमामि सूरिमुकुटान् श्रीनेमिसूरीश्वरान् ॥२॥

श्रीनेमीश्वरभक्तिलब्धनिखिलन्यायादिविद्यावरान्,
सिद्धान्तैकनिधीन् सदा जिनमतोल्लासैकबद्धोद्यमान् ।
तान् भूयः प्रणमामि सूरिप्रवरान् स्वाध्यायनिष्ठोदयान्,
श्रीयुक्तोदयसूरिनामविदितान् व्याख्यानवाचस्पतीन् ॥३॥

तत्त्वातत्त्वविचारणैकप्रतिमान् श्रीनेमिसूरीश्वरा-
ऽऽज्ञानिष्ठोदयसूरिशिष्यप्रवरान् स्याद्वादविद्याचणान् ।
श्रीमन्नन्दनसूरिनामप्रथितान् न्यायादिशास्त्रोद्धुरान्,
भक्त्याऽहं प्रणमामि मङ्गलमयान् सद्धर्मदीक्षागुरून् ॥४॥

येषां ग्रन्थमधीत्य मन्दमतयोऽप्यूहौघचर्चापरा,
जायन्ते परवादिभिः सममितैर्वादेऽमितैर्गर्वितैः ।
ते श्रीमद्धरिभद्रसूरिप्रमुखाःसिद्धान्तपाथोधयः,
प्राञ्चो विघ्नसमष्टिमिष्टततिदा निघ्नन्तु सम्प्रार्थिताः ॥५॥

युक्तिस्तोमप्रकाशका बुधवराः श्रीमद्यशोवाचकाः,
सिद्धान्तोदधितत्त्वरत्ननिचयप्रोल्लासनैकादराः ।
स्मृत्या सन्निहिता नवीनरचनासामर्थ्यभूतिप्रदाः,
विघ्नानां शमनाय मत्कृतिविधौ सन्त्वर्थनापूरकाः ॥६॥

मीमांसा सप्तभङ्ग्या विविधविषयगा मीतिनीतिप्रवृत्ता,
प्रत्येकं धर्ममात्रे विधिमननिषेधोभयोल्लासितार्था ।
संक्षिप्तोक्तिप्रपञ्चा मुनिप्रवरशिवानन्दतो लब्धभावाः,
विज्ञैरास्वाद्यमाना स्वयमपि सुशिवानन्ददास्तु प्रणाल्या ॥७॥

यद्यपि एकान्तवादिनां मते परस्परविरुद्धयोः सत्त्वासत्त्वायोर्विधिनिषेधरूपयोर्नैकत्र धर्मिणि समावेशोऽभीष्ट इति विधिनिषेधप्रतिपादकभङ्गद्वयाभावे क्रमविवक्षोपनीतक्रमिकविधिनिषेधद्वयप्रतिपादकतृतीयभङ्ग-युगपदुभयविवक्षोपनीतयुगपत्प्रधानीभूतविधिनिषेधद्वयावक्तव्यत्वप्रतिपादकतुरीयभङ्गद्वययोरप्य-

भावे प्रथमभङ्गविषयसङ्कटिततुरीयभङ्गविषयविवक्षोपजातस्वरूप-पञ्चमभङ्गस्य द्वितीयभङ्गविषयसंवलितचतुर्थभङ्गविषयविवक्षा-लब्धात्मभावषष्ठभङ्गस्य तृतीयतुरीयभङ्गविषयसंमिश्रविवक्षोप-लब्धस्वरूपसप्तमभङ्गस्य चाभावे न सम्भवत्येव सप्तभङ्गसमुदाय-स्वरूपा सप्तभङ्गीति विषयाभावदसत्ख्यात्यनभ्युपगन्तॄणां बौद्ध-भिन्नानामेकान्तवादिनां तद्विषयकज्ञानमपि नास्तीति तद्विष-यकेच्छास्वरूपायाः सप्तभङ्गीजिज्ञासाया असम्भवान्न जिज्ञासि-तव्यत्वं सप्तभङ्ग्या इति तान् प्रति सप्तभङ्गीमीमांसा न कर्तव्य-तामञ्चति, अनन्तधर्मात्मकैकवस्त्वभ्युपगन्तृजैनमते एकैक-धर्मावलम्बनेन विधिनिषेधयोरेकत्र धर्मिणि पृथक्कल्पनया विधि-निषेधयोर्युगपत्सद्भावकल्पनायामपि क्रमिकप्राधान्यविवक्षया युगपत्प्राधान्येन तदुभयविवक्षया पृथग्विधिविवक्षासंवलित-युगपत्प्राधान्येन तदुभयकल्पनोपनीतयुगपत्तदुभयप्राधान्यविव-क्षया पृथग्निषेधविवक्षासंवलितयुगपत्प्रधान्येन तदुभयकल्प-नोपनीतयुगपत्तदुभयप्राधान्यविवक्षया, पृथग्विधिनिषेधविव-क्षासंवलितयुगपत्प्राधान्येन तदुभयकल्पनोपनीतयुगपत्तदु-भयप्राधान्यविवक्षया च सप्तधर्मप्रतिपादकसप्तभङ्गसम्भवत-स्तत्समुदायरूपायाः सप्तभङ्ग्याः संभवेन तद्विषयकज्ञानविषय-केच्छारूपायास्तज्जिज्ञासायास्संभवतो जिज्ञासितव्यत्वं सप्त-भङ्ग्याः संभवति सप्तभङ्गीतः स्वस्वनिमित्तापेक्षसप्तविधधर्मप्र-कारकैकविशेष्यकबोधो निराकाङ्क्षत्वात् सम्पूर्णत्वाच्च प्रमाणभाव-मश्नुते, तज्जनितसप्तधर्मविषयकसंस्कारवतश्च पुंसः प्रतिनिय-

नैकधर्मावगाहिप्रत्यक्षादेरप्युक्तसंस्कारबलान्निरुक्तसप्तधर्मावगाहित्वतः सम्पूर्णार्थबोधात्मकत्वात् प्रामाण्यं सुव्यवस्थितमित्येवं सकलप्रमाणप्रामाण्यव्यवस्थापकत्वात्सप्तभङ्ग्यात्मकप्रमाणवाक्यं जिज्ञास्यत्वाज्जैनान् प्रति सप्तभङ्गीमीमांसा कर्तव्या भवतु नाम, तावता स्वगृहमान्यैव सा, तत्त्वबुभुत्सूनां जैनानामेव वादकथायामुपयोगिनी सा तैस्तत्त्वनिर्णयार्थमेवोपयोगिनी, कथङ्कारं दुर्दमपरवादिभिः समं जल्पकथायां प्रवर्तमानानां स्याद्वादिनां तत्पराजयफलमभिलषतामभ्यसनीया, तथापि एकान्तवाद्यभिमतैकान्तास्तित्वादिखण्डनयुक्तित एव कथश्चिदस्तित्वादिधर्मप्रसिद्ध्या तत्प्रतिपादकसप्तभङ्गसमूहात्मकसप्तभङ्गी प्रमाणवाक्योपपत्तिः सम्भवतीति सप्तभङ्ग्यर्थस्वरूपाभ्यासशालिनः स्याद्वादिनः सभाक्षोभादिकारणेनाप्यप्रतिबद्धप्रसरास्तदन्तर्गताभ्यस्तैकान्तमतखण्डनयुक्तिकदम्बकैरेकान्तवादिप्रकाण्डान् विजयन्त एवेति जल्पकथोपयोगिन्यपि सप्तभङ्गीति परवादिपराजयाभिलाषुकान् प्रत्यपि सप्तभङ्गीमीमांसा कर्तव्यैव, तथा चोक्तं पूज्यरत्नप्रभसूरिभिः ।

"या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिधया बाधच्युता सप्तधा,
धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचना नैकात्मके वस्तुनि;
निर्दोषा निरदेशि देव ! भवता सा सप्तभङ्गी यया,
जल्पन् जल्परणाङ्गणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात्" इति.

श्रद्धास्पदं च परेषामपीयं सप्तभङ्गी, यतः कपिलमतानुयायिनः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थां प्रकृतिमभ्युपगच्छन्ति, तथा च गुणत्रयात्मकत्वेनानेकरूपा प्रकृतित्वेन चैकस्वरूपेत्येवमेकस्यामपि प्रकृतावपेक्षाभेदेनैकत्वानेकत्वयोर्भावे स्यादेकैव प्रकृतिः स्यादनेकैव प्रकृतिरित्येवमाद्यद्वितीयभङ्गयोः प्रवृत्तावेकत्वानेकत्वयोः क्रमिकप्राधान्यविवक्षायुगपदुभयप्राधान्यविवक्षाभ्यां तृतीयतुरीयभङ्गयोरपि प्रवृत्तौ प्रथमतुरीयसंयोग–द्वितीयतुरीयसंयोग–तृतीयतुरीयसंयोगेभ्यः पञ्चमषष्ठसप्तमभङ्गानां प्रवृत्तौ तत्सप्तभङ्गसमूहरूपसप्तभङ्ग्याः प्रवृत्तिरर्थादुपगतैव, एवं नीलपीते इति समूहालम्बनात्मकज्ञानस्य चित्रैकाकारत्वमभ्युपगच्छन्तः सौगता अपि चित्रात्मकैकाकारत्वत एकत्वं नीलाकारत्वपीताकारत्वद्वययोगादनेकत्वम् चित्रैकाकारानभ्युपगमेऽपि वा स्वरूपत एकत्वं नीलाकारत्वपीताकारत्वाभ्यामनेकत्वमेकस्या बुद्धेरभ्युपगच्छन्तीति तन्मतेऽप्युक्तदिशा सप्तभङ्गीप्रवृत्तिरर्थादुपगतैव, नैयायिक-वैशेषिकावपि एकस्मिन् चित्ररूपे प्राचीनमताश्रयेणैकत्वं नव्यमताश्रयणेनानेकत्वमभ्युपगच्छन्तौ पूर्वोक्तदिशाऽर्थादुपनतां सप्तभङ्गीं कथन्नाम नोररीकुरुतः, गुण गुणिनोः क्रिया–क्रियावतोरवयवावयविनोर्जातिव्यक्त्योर्भेदाभेदात्मककथञ्चिदविष्वग्भावलक्षणतादात्म्यमभ्युपगच्छन्तो जैमिनीया अपि एकत्र धर्मिण्येकस्यैवापेक्षाभेदेन भेदाभेदयोरुपगमबलात् प्रथमद्वितीयभङ्गप्रसिद्धिनिरुक्तदिगुपनततृतीयभङ्गादिप्रवृत्ति–

संसिद्धसप्तभङ्गात्मकसप्तभङ्गीमर्थादभ्युपगच्छन्ति, वेदान्तवादिनोऽपि।

" तुच्छा चानिर्वचनीया च, वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा
ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधैः, श्रौतयौक्तिकलौकिकैः ॥२॥"

इत्यादिवचनात् एकत्रैव धर्मिण्यपेक्षाभेदेन तुच्छत्वानिर्वचनीयत्ववास्तवित्वलक्षणपरस्परविरुद्धधर्मत्रयमभ्युपगच्छन्त उक्तदिशा सप्तभङ्गीमभ्युपगच्छन्त्येवेति तान् प्रत्यपि सप्तभङ्गीमीमांसा कर्तव्यतामञ्चति। तत्र ये जैनसिद्धान्तरहस्याभिज्ञाः सप्तभङ्गीस्वरूपं स्वाभ्यस्तचतुरशीतिवादविलब्धविजयवादिकुमुदचन्द्रविजेतृदेवसूरिप्रभृतिग्रन्थसार्थादेवावगच्छन्ति स्वयमपि तत्तद्ग्रन्थोक्ततत्तद्विषयकविचारोहापोहसमर्थाः सप्तभङ्ग्युपपादनयुक्तिसूत्रणसूत्रधाराः तान् प्रति विशिष्य प्रत्येकभङ्गार्थनिर्णयफलिका मीमांसाऽनतिप्रयोजनत्वान्नोपादानार्हा, किन्तु संक्षिप्तविचारसमाकलितसप्तभङ्गार्थाद् बोधफलिका यत्किञ्चिद्विशेषशेमुष्याधानप्रयोजना मीमांसोपयुज्यत एव, तथाहि परेषां विप्रतिपत्तिसंशयाज्ञानाद्यन्यतमोन्मूलनाय प्रमाणवाक्यमुच्चारयन्ति कृतिनः, न चापूर्णार्थसन्दिग्धार्थसाकाङ्क्षार्थावबोधजनकाद् वाक्यात्स्वजन्यबोधद्वारा विप्रतिपत्त्याद्यन्यतमनिराकरणं सम्भवतीति निराकाङ्क्षासन्दिग्धसम्पूर्णार्थावबोधजनकमेव प्रमाणवाक्यमुपाददते प्रेक्षाकारिणः, निरुक्तबोधजनकत्वात् सप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यमेव प्रमाणवाक्यम्, आन्त्या नास्ति-

त्वाविमिश्रितमेकान्तास्तित्वमभिमन्यमाना नैयायिकादयोऽस्तित्वसंशयस्य परगतस्यापाकरणायास्ति घट इति वाक्यं प्रयुञ्जते तस्यैव निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधजनकत्वात् प्रमाणवाक्यत्वमामनन्ति, तत्र स्याद्वादिन एवं कथयन्ति स्वरूपसत्त्वातिरिक्तसत्तासामान्यलक्षणस्यार्थक्रियाकारित्वादिलक्षणस्य वाऽसम्भवात् स्वरूपसत्त्वमेव घटादेरस्तित्वं घटादिरूपधर्मिज्ञानमेव घटादिगतास्तित्वज्ञानमिति घटादिरूपधर्मिज्ञानं यदि परस्य समस्ति तर्हि घटाद्यात्मकास्तित्वज्ञानमपि परस्य निर्णयात्मकं समस्त्येवेति तन्निर्णयस्य तत्संशयविरोधित्वाद् घटोऽस्ति न वेति संशयस्यैव परस्मिन्नसम्भव इति न तदपाकरणप्रयोजनकं घटोऽस्तीतिवाक्यं प्रयोक्तव्यम्, यदि च घटादिरूपधर्मिज्ञानं न परस्य, तर्हि धर्मिज्ञानस्य तद्धर्मिकसंशयंप्रतिकारणत्वात् तद्रूप कारणाभावादेव संशयो नोत्पत्तुमर्हतीत्येवमपि परगतसंशयाभावान्न तदपाकरणप्रयोजनकं घटोऽस्तीति वाक्यं प्रयोक्तव्यतामञ्चति,स्याद्वादिनां मते तु स्वद्रव्यस्वक्षेत्रस्वकालस्वस्वभावैःसमं कथञ्चिद्भेदसहिष्णुभेदलक्षणतादात्म्यमेव घटादेः सम्बन्ध इति स्वद्रव्यादिस्वरूपमपि घटादिस्वरूपास्तित्वमित्यस्तिविशेषस्वरूपास्तित्वस्य निर्णयाभावेऽपि घटादिरूपधर्मिज्ञानसंभवेन ततः परस्यास्तित्वविशेषमुपादाय घटोऽस्ति न वेति संशयस्य सम्भवेऽपि ।

"यथाविधं यं विषयं निजस्य,
प्रश्नस्य निर्वक्तिपरो यथोक्त्या ।

वाच्यस्तथैवोत्तरवादिनाऽपि,
तथैव वाचा स तथाविधोऽर्थः ॥३॥"

इति वैतण्डिकवचनावलम्बनेनोत्तरवाक्यमस्ति घट इत्येवं रूपं संभवदपि न तावन्मात्रं प्रयोगार्हम् –

'वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये ।
कर्तव्यमन्यथाऽनुक्तसमत्वात् तस्य कुत्रचित् ॥४॥

इति वचनादस्त्येव घट इत्येवं स्वरूपवाक्यस्यैव प्रयोगार्हत्वात्, एवंचावधारणबलान्नास्तित्वस्य निवृत्तितः सर्वथाऽतित्वस्यैव प्रतीतिरुक्तवाक्यात् प्राप्नोति, सा च बाधितार्था भ्रान्तिरूपा प्रसज्येत, यतो घटस्यास्तित्वं घटत्वेन रूपेण, पटस्यास्तित्वं पटत्वेन रूपेणेत्येवं सामान्यतोऽस्तित्वस्यावच्छेदका घटत्वपटत्वादयः सर्वेऽपि धर्मा इति घटस्य सर्वथाऽस्तित्वे घटत्ववत्पटत्वादयोऽप्यवच्छेदकतया निमित्तानि स्युरिति पटत्वावच्छेद्यास्तित्वालिङ्गितत्वात् पटस्वरूपमिव घटस्वरूपमपि पटस्वरूपं स्यादेवं घटो मठाद्यशेषपदार्थस्वरूप उक्तवाक्यतः प्रतीयेत, न च पटादिस्वरूपो घट इति नास्त्येव घट इत्युत्तरवाक्यं प्रमाणवाक्यम्, अपि त्वबाधितार्थप्रतिपादकत्वाद् घटविशेष्यकास्तित्वविशेषतदभावप्रकारको यः संशयो घटोऽस्ति न वेत्याकारकः घटः कथञ्चिदस्ति न वेत्येवं स्वरूपपर्यवसितस्तन्निवर्तकनिर्णयफलकं स्यादस्त्येव घट इत्येवोत्तरवाक्यं प्रयुञ्जते वृद्धाः, यत्रापि

व्युत्पन्नं प्रति अस्ति घट इत्येव प्रयुज्यते तत्रापि वाक्येऽवधारणमिति वचनादवधारणार्थकैवकारस्य,

'सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञैः, सर्वत्रार्थात् प्रतीयते ।
यथैवकारोऽन्यादिव्यवच्छेदप्रयोजनः ॥ ५ ॥

इतिवचनात् स्यात्पदोपसन्दानं भवत्येवेति तदपि वाक्यं स्यादस्त्येव घट इति स्वरूपपर्यवसितमेव, अत्रानेकान्तद्योतकत्वाद् यन्तप्रतिरूपकस्यात्पदं कथञ्चिदर्थमवगमयति तेन च कथञ्चिदस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकबोधो जायमानो निरुक्तसंशयनिवर्तको भवत्येव, न तु तादृशबोधो निराकाङ्क्ष इति नोक्तबोधजनकं स्यादस्त्येव घट इति वाक्यं निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधजनकत्वाभावात् प्रमाणवाक्यम्, न चोक्तवाक्याद् बोधे जाते नास्त्येवोत्थिताऽऽकाङ्क्षा काचित्, उत्थाप्याकाङ्क्षा तु प्रमाणवाक्येनाभिमतसप्तभङ्गी-जन्यबोधानन्तरमपि जायमाना न निरोद्धुं शक्येति निराकाङ्क्षत्वमुत्थिताकाङ्क्षारहितत्वमेव वाक्यं तच्च स्यादस्त्येव घट इति वाक्यजन्यबोधेऽपि समस्त्येवेति कथं न तस्य प्रमाणवाक्यत्वमिति वाच्यं यतः किं नास्तित्वमपि घटस्य, येन स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरित्येवंस्वरूपकथञ्चिदर्थसंवलनमस्तित्वे क्रियत इत्याकाङ्क्षोत्थितैवेति तद्रहितत्वाभावान्न निराकाङ्क्षत्वम्, उक्ताकाङ्क्षानिवृत्त्यर्थं तन्मूलसंशयनिवृत्त्यर्थं च स्यान्नास्त्येव घट इति

कथञ्चिन्नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वनिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्व-निष्ठा-प्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-विशेष्यताकबोधजनकं वाक्यमपि प्रयुञ्जत एव स्याद्वादिनः ननु य एव संशयो निवर्तनीयतया भावाभावोभयकोटिकतया स्यादस्त्येव घट इति भङ्गप्रयोजकः स एव नास्त्येव घट इति भङ्गप्रयोजकोऽपि, स च प्रथमभङ्गादेव निवृत्त इति न पुनरुत्थातुमर्हतीति न संशयनिवृत्त्यर्थं स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यं प्रयोक्तव्यमिति चेन्न एकत्र विरुद्धधर्मद्वयावगाहिज्ञानस्यैव संशयत्वात् कथञ्चिदस्तित्वस्य सर्वथाऽस्तित्वं कथञ्चिदस्तित्वाभावव्याप्यत्वाद् विरुद्धं कथञ्चिदस्तित्वाभावश्च निषेधरूपत्वाद् विरुद्ध इति कथञ्चिदस्तित्वसर्वथाऽस्तित्वोभयकोटिकः कथञ्चिदस्तित्वकथञ्चिदस्तित्वाभावोभयकोटिको वा संशयः स्यादस्त्येव घट इति वाक्यान्निवर्ततां नाम, कथञ्चिन्नास्तित्वं च न कथञ्चिदस्तित्वविरुद्धं कथञ्चिदस्तित्वनिषेधरूपत्वाभावात् कथञ्चिदस्तित्ववत्यपि कथञ्चिन्नास्तित्वस्य सम्भवात्, अत एव तत् कथञ्चिदस्तित्वाभावस्य व्याप्यमपि न भवति, ततः कथञ्चिन्नास्तित्वकथञ्चिन्नास्तित्वाभावोभयकोटिकः कथञ्चिन्नास्तित्वाभावव्याप्यसर्वथानास्तित्वादिकोटिको वा संशयोऽन्य एव तस्य स्यादस्त्येव घट इति वाक्यजन्यबोधान्निवृत्त्यभावात् स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यजन्यबोध एव कथञ्चिन्नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-

विशेष्यताकनिर्णयात्मको निरुक्तसंशयनिवर्तक इति तज्जनकमुक्तवाक्यं भवत्यवोपादेयम्, ननु कथञ्चिदस्तित्वकथञ्चिन्नास्तित्वे न परस्परनिषेधरूपे इति कथञ्चिन्नास्तित्वापेक्षया कथञ्चिदस्तित्वस्य न विधिरूपत्वं तथा कथञ्चिदस्तित्वापेक्षया कथञ्चिन्नास्तित्वस्य न निषेधरूपत्वमित्येकत्र धर्मिणि एकैकस्य धर्मस्य विधिनिषेधकल्पनया सप्तभङ्गसमुदायात्मकं सप्तभङ्गीवाक्यं प्रमाणवाक्यमिति स्याद्वादप्रतिज्ञातमेवासङ्गतं स्यादिति चेन्न, यतः सामान्यतोऽस्तित्वनास्तित्वयोर्विधिनिषेधयोरन्योन्यविरुद्धयोरेवाविरोधप्रतिपत्त्यर्थं स्यात्पदलाञ्छितं सप्तभङ्गीवाक्यं प्रयुञ्जतेऽभियुक्ता इत्यस्तित्वनास्तित्वयोरेव विधिनिषेधयोर्विरोधपरिहारस्यास्तित्वस्य कथञ्चिदस्तित्वरूपतया नास्तित्वस्य कथञ्चिन्नास्तित्वरूपतया पर्यवसानत एव सम्भवादिति विरुद्धविधिनिषेधरूपत्वस्य तदानीमभावेऽप्यविरुद्धविधिनिषेधरूपत्वं समस्त्येवेति युक्तमुत्पश्यामः। अपरे तु अस्तित्वमेव स्यादस्त्येव घट इत्यत्र किञ्चिदवच्छेदेन घटे प्रकारतया भासते, स्यान्नास्त्येव घट इत्यत्र किञ्चिदवच्छेदेन नास्तित्वमेव घटे प्रकारतया भासते, अस्तित्वनास्तित्वयोश्चान्योऽन्यप्रतिक्षेप्यप्रतिक्षेपकभावेन विधिनिषेधरूपता स्पष्टैव, स्यादस्त्येव घट इति वाक्यजन्यबोधनिवर्त्यश्च संशयः स्वद्रव्याद्यवच्छेदेनास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितस्वद्रव्याद्यवच्छेदेन नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकसंशय-

रूपः, तस्य निरुक्तवाक्यजन्यो यः स्वद्रव्याद्यवच्छेदेन नास्तित्वनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितस्वद्रव्याद्यवच्छेदेनास्तित्वनिष्ठ-प्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वं स्फुटमेव एवं चोक्तसंशयनिवृत्त्यर्थं निरुक्त-निर्णयात्मकबोधजनकस्य स्यादस्त्येव घट इति वाक्यस्याभि-युक्तप्रयोक्तव्यत्वं युज्यते, स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यजन्य-बोधनिवर्त्यश्च संशयः स्यान्नास्ति न वेति परद्रव्याद्यवच्छेदेन नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितपरद्रव्याद्यवच्छेदेन अस्तित्वात्मक-नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-दोलायमानबोधस्वरूपः स्यादस्ति न वेति संश-याद् भिन्न एव, तस्य स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यजन्यो यः परद्रव्याद्यवच्छेदेन नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितपर-द्रव्याद्यवच्छेदेन नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-विशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेनोक्तसंशयनिवृ-त्त्यर्थं निरुक्तनिर्णयात्मकबोधजनकस्य स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यस्याभियुक्तप्रयोक्तव्यत्वं युक्तियुक्तमेवेत्याहुः, केचित् तु स्यादस्त्येव घट इत्यत्र स्वद्रव्यादिकमस्तित्वनिष्ठप्रकारताया अवच्छेदकतया भासते, स्यान्नास्त्येव घट इत्यत्र त्वस्तित्वनिष्ठ-प्रतियोगिताया अवच्छेदकतया परद्रव्यादिकं भासते, तथा चास्तित्वास्तित्वाभावलक्षणनास्तित्वयोर्विधिनिषेधरूपता स्पष्टैव, स्यादस्त्येव घट इति वाक्यजन्यबोधनिवर्त्यश्च स्यादस्ति न

वा घट इत्येवंरूपः स्वद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितास्तित्व-निष्ठप्रकारतानिरूपितस्वद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितास्ति-त्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलाय-मानबोधस्वरूपः संशयः, तस्य स्यादस्त्येव घट इति वाक्य-जन्यो यः स्वद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितास्तित्वाभाव-निष्ठप्रकारत्वानिरूपितस्वद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितास्ति-त्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपकनिर्ण-यात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशबोधजनकोक्तवाक्य-निवर्त्यत्वं स्यादेवेत्युक्तसंशयानिवर्तकत्वात् स्यादस्त्येव घट इति वाक्यस्याप्रयोक्तव्यत्वम्, स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्य-जन्यबोधनिवर्त्यश्च स्यान्नास्ति न वा घट इत्येवंरूपः परद्रव्यादि-निष्ठावच्छेदकतानिरूपितास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वा-वच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपरद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपिता-स्तित्वात्मकास्तित्वाभावाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छि-न्नविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपः संशयः, तस्य स्यान्ना-स्त्येव घट इति वाक्यजन्यो यः परद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकता-निरूपितास्तित्वात्मकास्तित्वाभावाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपित-परद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूगितानिरूपितास्तित्वनिष्ठप्रति-योगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-विशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशबोधजन-कोक्तवाक्यनिवर्त्यत्वं स्यादेवेत्युक्तसंशयनिवर्तकत्वात् स्यान्ना-

स्त्येव घट इति वाक्यस्याप्रमयोज्यत्वं युज्यत एव, स्वद्रव्य-क्षेत्रकालानां घटाधिकरणत्वे घटात्मकस्वरूपास्तित्वस्याधिकरणत्वं, ततश्च स्वद्रव्यक्षेत्रकाला आधेयत्वसम्बन्धेन घटधर्मत्वाद् घटात्मकास्तित्वधर्मा अपि भवन्त्येव, भावस्य घटत्वाद्यात्मकस्य घटधर्मत्वेन तदात्मकस्वरूपास्तित्वधर्मत्वमपि सुप्रतीतमिति धर्मविधयास्ति स्वद्रव्यादीनामस्तित्वनिष्ठप्रकारतावच्छेदकत्वं युज्यते प्रतियोगिवृत्तिधर्मो यथा घटत्वेन घटो नास्तीति प्रतीतिबलात् प्रतियोगितावच्छेदकः, तथा प्रतियोग्यवृत्तिधर्मोऽपि पटत्वेन धर्मो नास्तीति प्रतीतिबलात् प्रतियोगिताऽवच्छेदकोभ्युपेय एव, नव्यन्याययुक्तिसूत्रधारेण शिरोमणिभट्टाचार्येणाऽप्युक्तम् "यदि च पटत्वेन घटो नास्तीति प्रत्यय आनुभविको लोकानां तदा तादृशाभावनिराकरणं सुरगुरुणाऽप्यशक्यमिति मन्तव्यम्, तथा च व्यधिकरणधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वे सुदृढनिरूढे परद्रव्यादीनां घटस्वरूपास्तित्वावृत्तीनामपि तन्निष्ठप्रतियोगितावच्छेदकत्वात् परद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावो व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताको नाप्रसिद्ध इत्याहुः, अन्ये तु प्रतियोग्यंशे भासमानो व्यधिकरणधर्मो तथा प्रति–योगितावच्छेदकस्तथाऽनुयोग्यंशे भासमानो व्यधिकरणधर्मोऽनुयोगितावच्छेदकोऽपि भवत्येव, तथा च स्यादस्त्येव घट इत्यत्र कथञ्चिदित्यर्थः स्यात्पदस्यानुयोगिना घटेनान्वेति

एवं स्यान्नास्त्येव घट इत्यत्राप्यनुयोगिना घटेनैव स्यात्पदार्थस्य कथञ्चिदित्यस्यान्वयः एवं च स्यादस्त्येव घट इत्यस्य निवर्त्यः स्यादस्ति न वेति संशयः अस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितस्वद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितघटनिष्ठविशेष्यताकदोलायमानबोधस्वरूपः, तस्य स्यादस्त्येव घट इति वाक्यजन्यो योऽस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितस्वद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितघटनिष्ठविशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशबोधजनकवाक्यनिवर्त्यत्वात् तादृशसंशयनिवर्तकस्य स्यादस्त्येव घट इति वाक्यस्यावश्यप्रयोक्तव्यत्वम् स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यनिवर्त्यश्च स्याद् घटो नास्ति न वेति संशयो नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितास्तित्वात्मकनास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितपरद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितघटनिष्ठविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपः स स्यादस्ति न वा घट इति संशयाद् भिन्नः तस्य च स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यजन्यो योऽस्तित्वात्मकनास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितनास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितपरद्रव्यादिनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितघटनिष्ठविशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन निरुक्तबोधजनकवाक्यनिवर्त्यत्वान्निरुक्तसंशयनिवर्तकस्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यस्यावश्यप्रयोक्तव्यत्वम् । व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानभ्युपगन्तृमते गवि

शशशृङ्गं नास्तीति प्रतीतेरनुभूयमानाया अपलपितुमशक्यायाः शशीयत्वावच्छिन्नशृङ्गनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्न-प्रकारतानिरूपितगोत्वावाच्छिन्नविशेष्यताकबोधात्मकत्वासम्भवेऽपि गोनिरूपितवृत्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितशशीयत्व-निष्ठात्वच्छेदकतानिरूपितशृङ्गनिष्ठविशेष्यताकबोधात्मकत्वं व्य-धिकरणधर्मस्यानुयोगितावच्छेदकत्वं स्वीकृत्यैव घटत इति प्राहुः। नन्वस्तूक्तवाक्ययोरेव निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधजन-कत्वात् प्रमाणवाक्यत्वमिति चेत्, न, ताभ्यां क्रमेणैकैकविधि-निषेधधर्मप्रकारकबोधजननेऽपि प्राधान्येन विधिनिषेधधर्म-द्वयाकलितवस्तुप्रतिपत्त्यभावात् प्राधान्येन विधिनिषेधधर्मद्वय-वस्त्वितीत्याकाङ्क्षोत्थितैव तदुपशमनाय क्रमिकविधिनिषेधधर्म-द्वयप्राधान्यविवक्षया स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव च घट इति वाक्यं प्रयुञ्जते वृद्धाः, तच्च वाक्यं स्यादस्त्येव घटः स्यान्ना-स्त्येव घट इति वाक्याभ्यां भिन्नं विवक्षान्तरसमुद्भूतत्वादु-क्तवाक्यद्वयनिवर्त्यसंशयद्वयभिन्नसंशयनिवर्तकत्वाच्च, स्या-दस्त्येव घट इति वाक्यप्रयोजिका विवक्षाऽस्तित्वस्य प्राधान्यं नास्तित्वस्य चाप्राधान्यं विषयीकरोति, स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यप्रयोजिका च विवक्षा नास्तित्वस्य प्राधान्यमस्तित्वस्य चाप्राधान्यं विषयीकरोति, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यप्रयोजिका च विवक्षा अस्तित्वस्य प्राधान्य-मेव नास्तित्वस्य प्राधान्यमेव च विषयीकरोति न तु तयोर-

प्राधान्यमिति क्रमानुपातित्वाद् विवक्षाद्वयशरीराऽपि प्रथम-द्वितीयवाक्यप्रयोजकविवक्षाभ्यां भिन्नैव, प्रयोजकविवक्षाक्रमादिवैकप्रयोगाकलितस्यापि धर्मद्वयप्रतिपादकवचनद्वयसमनुगतवाक्यस्य क्रमः तत्प्रतिपाद्यत्वाद् धर्मद्वयस्यापि क्रमिकत्वम्, तद्वाक्यनिवर्त्यश्च स्यादस्ति स्यान्नास्ति न वा घट इत्येवंरूपः क्रमिकास्तित्वनास्तित्वधर्मद्वयपरिनिष्ठितस्वरूपास्तित्वविशिष्ट-नास्तित्वात्मकधर्मान्तरनिष्ठप्रकारतानिरूपिततादृशधर्मान्तरनिष्ठ-प्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-विशेष्यताकदोलायमानबोधस्वरूपः संशयः प्रथमद्वितीय-वाक्यनिवर्त्यसंशयाभ्यां भिन्न एव, तस्य स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यजन्यो यः स्वद्रव्याद्यवच्छिन्ना-स्तित्वविशिष्टपरद्रव्याद्यवच्छिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव-त्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितस्वद्रव्याद्यवच्छिन्नास्तित्वविशिष्ट-परद्रव्याद्यवच्छिन्ननास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-विशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशबोध-जनकोक्तवाक्यनिवर्त्यत्वं युज्यत इति तादृशसंशयनिवर्तकबोध-जनकत्वात् स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यस्यावश्य-प्रयोक्तव्यत्वमिति । अथवा अयं स्थाणुर्वा पुरुषो वेति स्थाणु-त्वस्थाणुत्वाभावपुरुषत्वपुरुषत्वाभावात्मकचतुष्कोटिकसंशयोऽ-प्युपेयत इति द्विकोटिक एव संशय इति न नियमः, एवं च प्रकृतेऽपि स्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्वं स्वद्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वं परद्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वं परद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्वात्मकपर-

द्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वाभावस्वरूपचतुष्कोटिक एव स्यादस्ति स्यान्नास्ति न वेति संशयः स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव च घट इति वाक्यनिवर्त्यः, तस्य स्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितस्वद्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितपरद्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वाभावात्मकपरद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलायमानज्ञानरूपस्य स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यजन्यो यः स्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितस्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितपरद्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितपरद्रव्याद्यपेक्षया नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशबोधजनकवाक्यनिवर्त्यत्वस्यापि सम्भवेनोक्तसंशयनिवर्तकः स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव घट इति वाक्यस्याभियुक्तप्रयोज्यत्वं युज्यते, एतच्च प्रथमद्वितीयवाक्यप्रतिपाद्यविधिनिषेधाभ्यां तृतीयवाक्यप्रतिपाद्यविधिनिषेधद्वयस्यानतिरेकेऽपि तद्विषयकबोधस्य तृतीयवाक्यजन्यस्य प्रथम द्वितीयवाक्यजन्यबोधाभ्यां विलक्षणत्वेन तन्निवर्त्यसंशयस्यापि प्रथमद्वितीयवाक्यजन्यबोधद्वयनिवर्त्यसंशयद्वयभिन्नत्वेन युक्तमेव तृतीयवाक्योपादानमित्यभिप्रायकं बोध्यम् ॥

ननूक्तक्रमेण वाक्यत्रयप्रयोगस्यावश्यकत्वेऽपि त्रिभिरेवोक्तवाक्यैर्निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधस्य सम्भवेन तादृशबोध-

जनकतापर्याप्त्यधिकरणवाक्यत्रयमेव प्रमाणवाक्यमस्त्विति चेन्नास्तित्वनास्तित्वयोर्युगपदेवैकत्र वस्तुनि सतोः युगपदेव प्राधान्येन विवक्षापि वक्तुः संभवति । प्रतिपाद्यस्यापि च किं युगपत्प्राधान्येनास्तित्वनास्तित्वोभयवान्न वा घट इति संशयतन्मूलकाकाङ्क्षयोर्भावात्तन्निवर्त्यर्थमुक्तविवक्षया स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यं प्रयुञ्जते वृद्धाः, यद्यप्युक्तसंशयो नावक्तव्यत्वतदभावोभयकोटिकः किन्तु युगपत्प्राधान्येनास्तित्वनास्तित्वोभयतदभावोभयकोटिकः, स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यप्रभवनिर्णयश्च कथञ्चिदवक्तव्यत्वाभावाप्रकारककथञ्चिदवक्तव्यत्वप्रकारकबोधस्वरूपः, तथापि युगपत्प्राधान्येन विवक्षितकथञ्चिदस्तित्व-कथञ्चिन्नास्तित्वयोः प्रतिपादकं न किञ्चित् समासरूपं व्यासरूपं वा वचनं समस्तीति तथा विवक्षितं तदुभयमेवैकत्र धर्मिणि भवत्यवक्तव्यत्वमिति तत्प्रकारकनिर्णय उक्तसंशयनिवर्तकः स्यादेव, एवं च युगपत्प्राधान्यालिङ्गितास्तित्वनास्तित्वोभयनिष्ठप्रकारतानिरूपितयुगप्रत्प्राधान्यालिङ्गितास्तित्वनास्तित्वोभयाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपस्य निरुक्तसंशयस्य स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यजन्यो यः युगपत्प्रधानीभूतस्वद्रव्याद्यपेक्ष्यास्तित्वपरद्रव्याद्यपेक्ष्यनास्तित्वोभयात्मकावक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितयुगपत्प्रधानीभूतस्वद्रव्याद्यपेक्ष्यास्तित्वपरद्रव्याद्यपेक्ष्य नास्तित्वोभयात्म-

कावक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकबोधात्मको निर्णयस्तन्निवर्त्यत्वेन तन्निवर्तकबोधजनकोक्तवाक्यस्यापि निवर्त्यत्वसम्भवेन तन्निवर्तकबोधजनकस्य स्यादवक्तव्य एव घट इति तुरीयवाक्यस्याभियुक्तप्रयोज्यत्वं युज्यते, न च चतुर्भिरेवोक्तवाक्यैर्निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधः संभवति येनोक्तवाक्यचतुष्टयपर्याप्तं प्रमाणवाक्यत्वं भवेत्, यतः कथञ्चिदस्तित्वेन सह नास्तित्वस्य सहभावविवक्षया यथा तृतीयवाक्यं प्रयुज्यमानं संशयविशेषतन्मूलाकाङ्क्षानिवर्तकं तथा कथञ्चिदस्तित्वेन सहावक्तव्यत्वस्य सहभावविवक्षया स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इत्येवं प्रयुज्यमानं संशयविशेषतन्मूलाकाङ्क्षानिवर्तकं तथा कथञ्चिदस्तित्वेन सहावक्तव्यत्वस्य सहभावविवक्षया स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इत्येवं प्रयुज्यमानं संशयविशेषतन्मूलाकाङ्क्षानिवर्तकं पञ्चमं वाक्यं स्यादेव। तथा हि किं घटः कथञ्चिदस्तित्वसमाकलितयुगपत्प्रधानीभूतास्तित्वनास्तित्वोभयात्मकावक्तव्यत्ववानपि भवतीत्याकाङ्क्षामूलस्य कथञ्चिदस्तित्वे सत्यवक्तव्यवान् घटो न वेत्येवंरूपस्य कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपस्य चतुःकोटिकस्य संशयस्य स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यजन्यो यः कथञ्चिदस्तित्वा-

भावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तन्निवर्तकबोधजनकोक्तवाक्यस्यापि निवर्त्यतया तन्निवर्तकस्य स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यस्याभियुक्तप्रयोक्तव्यत्वं युज्यते । यथा च कथञ्चिदस्तित्वेन सह सहभावः कथञ्चिदवक्तव्यत्वस्य तथा किं कथञ्चिन्नास्तित्वेन सहभावोऽवक्तव्यत्वस्य समस्तीत्याकाङ्क्षायास्तन्मूलस्य संशयविशेषस्य च जागरूकत्वान्न पञ्चमूक्तवाक्येषु परिसमाप्तं निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधकत्वलक्षणं प्रमाणवाक्यत्वमत उक्ताकाङ्क्षासंशयविशेषनिवर्तकस्य स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति षष्ठवाक्यस्यावश्यप्रयोक्तव्यत्वम्, तथाहि कथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपस्य घटः कथञ्चिन्नास्तित्वकथञ्चिदवक्तव्यत्वद्वयवान्न वेत्येवंरूपस्य चतुष्कोटिकस्य संशयस्य स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यजन्यो यः कथञ्चिन्नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपित-

घटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिर्णयात्मकबोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशसंशयनिवर्तकबोधजनकोक्तवाक्यस्यापि निवर्त्यत्वेनोक्तसंशयनिवर्तकस्य स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति षष्ठवाक्यस्याभियुक्तप्रयोक्तव्यत्वं युज्यते, एवमवक्तव्यत्वस्यैकैकेन कथञ्चिदस्तित्वेन कथञ्चिन्नास्तित्वेन समं सहभावो यथा किं कथञ्चिदस्तित्वकथञ्चिन्नास्तित्वाभ्यामपि सह सहभाव इत्याकाङ्क्षाऽपि जागर्त्येव तन्मूलसंशयविशेषोऽपि स्यादिति तन्निवृत्त्यर्थं क्रमिकतदुभयविवक्षा सध्रीचीनयुगपत्प्रधानीभूततदुभयात्मकावक्तव्यत्वविवक्षया स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव इति सप्तमवाक्यप्रयोगो घटते, तथाहि कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वाभाव निष्ठप्रकारता निरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपस्य स्यादस्ति स्यान्नास्ति स्यादवक्तव्यो घटो न वेत्येवंरूपस्य संशयस्य षट्कोटिकस्य स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति वाक्यजन्यो यः कथञ्चिदस्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वाभावनिष्ठप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्त-

ष्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिर्णया-
त्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशबोधजनकवाक्यनिवर्त्यत्वस्य।पि
सम्भवेनोक्तसंशयनिवर्तकोक्तबोधजनकस्य स्यादस्त्येव स्या-
न्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट इति सप्तमवाक्यस्याभियुक्त-
प्रयोक्तव्यत्वं युज्यते । स्यादस्त्येव घट इत्यादिवाक्यस्य
विधिनिषेधयोरेकैकप्रकारबोधकत्वाद् भङ्गरूपत्वं भङ्गानां च
सप्तविधानामपि प्रत्येकं न निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधकत्वलक्षण-
प्रमाणवाक्यत्वम्, किन्तु सप्तभङ्गसमाहारलक्षणा सप्तभङ्ग्येव
निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थबोधकत्वलक्षणंप्रमाणवाक्यत्वम्, सप्तभङ्गी-
वाक्यजन्यबोधश्च यदि समुच्चयरूपो यदि वैकत्रद्वयमिति रीत्या
बोधात्मकः उभयथाऽपि निराकाङ्क्षपरिपूर्णार्थविषयकत्वात्
प्रमात्मक एवेति युक्तं तज्जनकस्य सप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यस्य
प्रमाणवाक्यत्वम् ,तत्र समुच्चयबोधश्च कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रति-
योगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्व-
निष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वे सति
कथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वा-
निरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्न-
विशेष्यताकत्वे सति कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव-
त्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरू-
पिता या कथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छि-
न्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता
घटत्वावच्छिन्नविशेष्यता तादृशविशेष्यताकत्वे सति युगपत्-

प्रधानीभूतकथञ्चिदस्तित्वकथञ्चिन्नास्तित्वोभयात्मकावक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितताद्दशावक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वे सति कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता या कथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यनिष्ठप्रकारतानिरूपिता घटत्वावच्छिन्नविशेष्यता ताद्दशविशेष्यताकत्वे सति कथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता या कथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता घटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वे सति कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता सती कथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारता निरूपिता या कथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता घटत्वावच्छिन्नविशेष्यता तन्निरूपको बोधो भवति। ताद्दशबोधजनकतापर्याप्त्यधिकरणवाक्यत्वं सप्तभङ्ग्यां समस्तीति, एकत्र द्वयमिति रीत्या बोधश्च कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारता निरूपिता सती कथञ्चि-

न्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपित-
कथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारता निरूपिता सती कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठ-
प्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्ति-
त्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताका-
भावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारता
निरूपिता सती कथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वा-
वच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरू-
पिता सती कथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्न-
प्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदस्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चि-
दवक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरू-
पितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपिता सती कथञ्चि-
न्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरू-
पितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्व-
निष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिद-
वक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारता निरूपिता सती कथञ्चिदस्तित्व-
निष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिद-
स्तित्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठप्रतियोगि-
ताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिन्नास्तित्वनिष्ठ-
प्रकारतानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभाव-
त्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिदवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारता-
निरूपिताघटत्वावच्छिन्नविशेष्यतातन्निरूपकबोधो भवति, ताह-

अबोधजनकतापर्याप्त्यधिकरणवाक्यत्वलक्षणप्रमाणवाक्यत्वमपि सप्तभङ्ग्यामेव समस्तीति सप्तभङ्गीवाक्यमेव निराकाङ्क्ष-परिपूर्णार्थबोधकमिति ॥

ननु यथाऽवक्तव्यत्वं धर्मान्तरं तथा वक्तव्यत्वमपि धर्मान्तरं किं न भवेदिति तद्विवक्षया स्याद्वक्तव्य एव घट इत्यष्टमभङ्गः किं न स्यात्? तन्निवर्त्यायाः घटः किं वक्तव्यत्ववानपि भवतीत्याकाङ्क्षायाः तन्मूलसंशयस्य घटोऽवक्तव्यत्ववान्न वेत्येवंरूपस्यास्त्येव संभवः, तस्य वक्तव्यत्वाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितवक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकदोलायमानबोधरूपस्य स्याद्वक्तव्य एव घट इतिवाक्यजन्यो यः कथञ्चिद्वक्तव्यत्वनिष्ठप्रतियोगिताकाभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितकथञ्चिद्वक्तव्यत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिर्णयात्मको बोधस्तन्निवर्त्यत्वेन तादृशे बोधजनकोक्तवाक्यनिवर्त्यत्वस्यापि सम्भवेनोक्तसंशयनिवर्तकस्य स्याद्वक्तव्य एव घट इत्यष्टमवाक्यस्यापि प्रयोक्तव्यत्वं प्रसज्येत, यदा च वक्तव्यस्य धर्मान्तरस्य सम्भवः तदा तस्य कथञ्चिदस्तित्वादिभिर्धर्मैस्सममपि प्रत्येकं वैशिष्ट्यस्य सम्भवतस्तत्तद्धर्मविशिष्टवक्तव्यत्वारव्यधर्मविवक्षातः स्यादस्त्येव स्याद्वक्तव्य एव घट इत्यादिभङ्गान्तराणामपि सम्भवात् सप्तभङ्गीवाक्यमेव प्रमाणवाक्यमिति न स्यादिति चेत्, न, यतो वचनप्रतिपाद्यत्वमेव वक्तव्यत्वम्, तच्च कथञ्चिदस्तित्वादिधर्मेण वचनप्रतिपाद्यत्वादेव निर्वहति, तथा च यद्रूपेण

वचनप्रतिपाद्यं भवति वस्तु तत्तद्रूपं कथञ्चिदस्तित्वादिकमेव, एवं च कथञ्चिदस्तित्वादिधर्मप्रतिपादका भङ्गा एव कथञ्चिदवक्तव्यत्वप्रतिपादका इति नास्तित्वधर्ममधिकृत्य तद्विधिनिषेधाभ्यां विवक्षाभेदेन प्रवृत्तभङ्गसमूहमध्ये वक्तव्यत्वभङ्गोऽधिकः प्रवेशमर्हति, अस्तित्वादिधर्मसप्तकभिन्नधर्मान्तरेणापि वक्तव्यत्वं सम्भवति किन्तु तद्धर्मान्तरं नास्तित्वस्य विधिनिषेधात्मकमिति धर्मान्तरात्मकवक्तव्यत्वप्रतिपादको भङ्गः स्यादस्त्येवेत्यादिसप्तभङ्गानन्तर्भूतोऽप्युदासीनत्वादेव नात्र प्रवेष्टुमर्हतीति, यथा च स्वातन्त्र्येणास्तित्वपर्यायो घटादेस्तथा स्वातन्त्र्येण वक्तव्यत्वपर्यायोऽपि समस्त्येवेति । स्वतन्त्रवक्तव्यत्वधर्ममवलम्ब्य तद्विधिनिषेधविवक्षातः स्याद्वक्तव्य एव घटः, स्यादवक्तव्य एव घटः, स्याद्वक्तव्य एव स्यादवक्तव्य एव घटः, स्यादवक्तव्य एव घटः, स्याद्वक्तव्य एव स्यादवक्तव्य एव घटः, स्यादवक्तव्य एव स्यादवक्तव्य एव घटः, स्याद्वक्तव्य स्यादवक्तव्यस्यादवक्तव्य एव च घटः इत्येवं सप्तभङ्ग्यन्तरस्य सम्भवोऽभ्युपगम्यत एव, यावन्तः एकस्य वस्तुनः पर्यायाः तावतीनां सप्तभङ्गीनां सम्भवोऽभिमत एवास्माकम्, तेन पर्यायाणामानन्त्यादनन्ता सप्तभङ्गीत्येव युक्तम्, नत्वनन्तभङ्गीति बोध्यम्, न च वक्तव्यत्वपर्यायमवलम्ब्योपदर्शितायां सप्तभङ्ग्यां द्वितीयचतुर्थभङ्गयोरविशेष एव, एवं तृतीयपञ्चमभङ्गयोरपि, एवं षष्ठभङ्गे स्यादवक्तव्य एव स्यादवक्तव्य एवेति, एवं सप्तमभङ्गे द्वितीय-

तृतीयवचनयोः पुनरुक्ततेति नेयं सप्तभङ्गी युज्यत इति वाच्यम्, यतः प्रथमभङ्गे यदपेक्षया वक्तव्यत्वं प्रतीयते तद्वक्तव्यत्वाव-च्छेदकनिमित्तभिन्नावच्छेदकनिमित्तापेक्षयाऽवक्तव्यत्वं द्विती-यभङ्गे प्रतीयते, तुरीयभङ्गे तु युगपत्प्रधानीभूतवक्तव्यत्वा-वक्तव्यत्वयोरेकेन शब्देन कथनं न सम्भवतीत्यतो यदवक्त-व्यत्वं तद्द्वितीयभङ्गविषयादवक्तव्यत्वाद् भिन्नमेव प्रतीयत इति भिन्नार्थकत्वान्न द्वितीयचतुर्थभङ्गयोरविशेषः, एवं द्वितीयभङ्ग-प्रतिपाद्यं यदवक्तव्यत्वं तत्तृतीयभङ्गेऽवक्तव्यशब्देन प्रतीयते, तुरीयभङ्गप्रतिपाद्यं त्ववक्तव्यत्वं पञ्चमभङ्गेऽवक्तव्यशब्देन प्र-तीयते, इति तृतीयपञ्चमभङ्गयोरप्यविशेषः, तथा षष्ठमभङ्गे-प्रथमावक्तव्यशब्देन द्वितीयभङ्गं प्रतिपाद्यमवक्तव्यत्वं प्रती-यते द्वितीयावक्तव्यशब्देन तद्भिन्नमेव तुरीयभङ्गप्रतिपाद्य-मवक्तव्यत्वं प्रतीयते, इत्यर्थभेदान्न पौनरुक्त्यम्, एवं सप्तम-भङ्गेऽपि द्वितीयवचनेन द्वितीयभङ्गप्रतिपाद्यमवक्तव्यत्वं प्रती-यते तृतीयवचनेन तुरीयभङ्गप्रतिपाद्यमवक्तव्यत्वं प्रतीयत इति न पौनरुक्त्यमिति । यथा चास्तित्वपर्यायं समाश्रित्य विधि-निषेधकल्पनया प्राप्तेषु धर्मेषु नष्टमो वक्तव्यत्वधर्मो न प्रवि-शतीति न स्याद्वक्तव्य एव इत्यष्टमभङ्गस्य सम्भवस्तथा, तथा तत्र धर्मान्तरस्यापि न प्रवेश इति धर्मान्तरप्रतिपादकस्यापि भङ्गस्य नैव सम्भवः, यतः प्रथमभङ्गेन कथञ्चिदस्तित्वलक्षण-विधिधर्मः प्रतिपाद्यते इति प्रथमद्वितीयभङ्गौ स्वातन्त्र्येण विधि-निषेधप्रतिपादकौ, प्रतिपाद्ययोर्विधिनिषेधयोरुभयोरपि क्रमि-

कप्राधान्यविवक्षया बोधको भङ्ग आत्मलाभमासादयन् तयो-र्विशेषणविशेष्यभावसमाश्रयेण प्राप्तं कथञ्चिदस्तित्वविशिष्टना-स्तित्वलक्षणं धर्मान्तरं प्रतिपादयतीति, तच्च धर्मान्तरं नास्ति-त्वविशिष्टास्तित्वस्वरूपमपि भवतीति तेनैवैकेन तृतीयभङ्गेन तयोरुभयोरपि प्रतिपत्तिरिति न तत्प्रतिपत्त्यर्थं भङ्गान्तरमुप-तिष्ठते, यतोऽस्तित्वनास्तित्वयोरुभयोरप्येकाधिकरणवृत्तित्वमेव वैशिष्ट्यं तच्चोभयथाऽपि सम्भवतीति, युगपत्प्रधानतया विव-क्षितयोरस्तित्वनास्तित्वयोर्वचनं न किञ्चिदपि तथा प्रतिपादकं समस्तीति कृत्वाऽवक्तव्यत्वधर्म एव प्राप्त इति तत्प्रतिपादकः चतुर्थभङ्ग आगच्छति तत्प्रतिपाद्येऽवक्तव्यत्वे प्रथमभङ्गविषय-वैशिष्ट्य-द्वितीयभङ्गविषयवैशिष्ट्य-तदुभयविषयवैशिष्ट्यविव-क्षातस्तत्तद्विषयवैशिष्ट्यप्राप्तधर्मान्तरप्रतिपादकाः पञ्चमषष्ठसप्त-मभङ्गाः प्रोल्लसन्तीति, एवं च पञ्चमभङ्गप्रतिपाद्ये अस्तित्व-विशिष्टावक्तव्यत्वे अस्तित्वस्यावक्तव्यत्वस्य च वैशिष्ट्यं पुन-रुक्तत्वादेव न सम्भवतीति न तत्कृतस्य धर्मान्तरस्य सम्भवः, नास्तित्ववैशिष्ट्यं यद्यपि तत्र सम्भवति किन्तु ततः प्राप्तस्य धर्मान्तरस्य प्रतिपादकः सप्तमभङ्गोऽस्त्येवेति न भङ्गान्तरस्य ततः समुत्थानं षष्ठभङ्गप्रतिपाद्ये नास्तित्वविशिष्टावक्तव्यत्वे पुनरुक्तत्वादेव नास्तित्वावक्तव्यत्वयोर्वैशिष्ट्याश्रयणं सम्भ-वतीति तत्प्रयुक्तस्य धर्मान्तरस्य नास्त्येव सम्भवः, अस्तित्व-वैशिष्ट्यस्य तत्र सम्भवेऽपि ततः प्राप्तस्य धर्मान्तरस्य प्रति-

पादकः सप्तमभङ्ग एवेति सप्तधर्मभिन्नधर्माभावान्नाष्टमभङ्गः सम्भवतीति नाष्टभङ्गीसम्भव इति ।

ननु सप्तभङ्गनामुपपादनं सप्तधर्मोपपादनतः सप्तधर्मोपपादनत्वावच्छेदकभेदकल्पनया, कल्पना च पुरुषपरतन्त्रा न वस्तुनिबन्धनेति काल्पनिकीयं सप्तभङ्गीति ततः कल्पितानामेव सप्तधर्माणामवगम इति चेत्, न, यतः प्रतिपर्यायमन्योऽन्यसम्मिश्रिताः सप्तापि धर्माः सन्त्येव न ते कल्पिताः,अनन्तधर्मात्मके वस्तुनि स्वस्य निमित्तापेक्षया वर्तमानास्ते तत्तत्कल्पनात एव विभज्यमानाः सन्तः स्पष्टप्रतिपत्तिविषया भवितुमर्हन्ति नान्यथेत्येतदर्थमाश्रीयमाणा कल्पना सदर्थविषयिण्येवेति तद्गोचरतां गताः सप्तापि धर्मा न काल्पनिका इति तदुपदर्शिका सप्तभङ्गी न कल्पनामात्रनिबन्धना किन्तु वास्तविक्येवेति, ये तु ऋजवस्तान् प्रतीयं सप्तभङ्गीमीमांसोपदर्श्यते तथाहि जैनानां सप्तभङ्गी अवश्यं जिज्ञासितव्या, तेषां निराकाङ्क्षसम्पूर्णार्थावबोधकत्वात् सैव प्रमाणवाक्यम्, यतः सप्तभङ्गी लक्षणवाक्यादेवानेकान्तात्मकार्थनिर्णयत एकान्तात्मकार्थप्रतिक्षेपद्वारा दुर्दमपरवादिमतङ्गजाः सभायां निगृहीता भवन्ति, तत एव सप्तभङ्गीरहस्यजिज्ञासवः परवादिविजयाभिलाषिणश्च सप्तभङ्गीमभ्यस्यन्ति, सप्तभङ्ग्या यथावत्सभायामुद्भावनतो विपक्षविजयजनकत्वं तत्स्वरूपोपदर्शनपुरस्सरं दर्शितं स्याद्वादाभिज्ञैः, यदुक्तम्—

"या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा,
धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचनाऽनेकात्मके वस्तुनि ।
निर्दोषा निरदेशि देव ! भवता सा सप्तभङ्गी यया,
जल्पन् जल्परणाङ्गणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात्" ॥ इति,

शब्दश्च विधिनिषेधरूपसदंशासदंशावयवाभ्यां स्वार्थं प्रतिपादयन् सप्तभङ्गीस्वरूपमेव बिभर्ति, तथा च श्रीदेवसूरिः प्रमाणनयतत्त्वालोकालङ्कारचतुर्थपरिच्छेदे ।

"सर्वत्रायं ध्वनिर्विधिनिषेधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभङ्गीमनुगच्छति ॥१३॥" इति सूत्रम्,

सप्तभङ्गीलक्षणप्रतिपादकं तत्रैव सूत्रमिदम्–

"एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यनुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभङ्गी ॥१४॥" इति,

अस्यार्थः, एकस्य जीवाजीवादेर्वस्तुनः एकशो धर्मविषयपरिप्रश्ने सकलप्रमाणबाध्यत्वेन भिन्नाभिन्नविधिप्रतिषेधविभागाभ्यां प्रयुक्तः स्याच्छब्दाङ्कितः सप्तविधत्वेन वाक्योपन्यासः सप्तभङ्गी इति, विधिः सदंशः, प्रतिषेधोऽसदंशः एकत्र वस्तुनीत्युपादनात् सकलस्य वस्तुनः सदंशासदंशधर्माद्यनेकप्रकारविभजनयाऽनन्तभङ्गीप्रसङ्गे न सम्भवतीति, एकैकधर्मपर्यनुयोगवशादित्युपादानाद् विधिनिषेधाद्यनन्तधर्माध्यासिते एकस्मिन्

वस्तुनि अनन्तधर्मपरिप्रश्नकालेऽनन्तभङ्गीप्रसङ्गस्योन्मेषो न भवतीति, अनेन चायं नियम आवेदितो भवति, यदुत अनन्तधर्मालिङ्गितेषु अनन्तवस्तुषु सत्स्वपि प्रतिवस्तु प्रतिधर्मं परिप्रश्नकाले एकैकशो वस्तुधर्मे एकैकैव सप्तभङ्गी भवतीति, अनन्तधर्मविवक्षया सप्तभङ्गीनामपि नानात्वमभीष्टमेवेति, अयमर्थः श्रीदेवसूरिसूत्रसम्मत एव, अत्रार्थे–

"विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनन्तानामपि सप्तभङ्गीनामेव सम्भवात् ॥ ३८ ॥

प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव सम्भवात् ॥३९॥ " इति सूत्रयुग्मम्,

स्वरूपतः सप्तभङ्गीप्रतिपादनपराणि चतानि सूत्राणि यथा–

"स्यादस्त्येव सर्वमिति सदंशकल्पनाविभजनेन प्रथमो भङ्गः ॥ १५ ॥

स्यान्नास्त्येव सर्वमिति पर्युदासकल्पनाविभजनेन द्वितीयो भङ्गः ॥ १६ ॥

स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमेण सदंशासदंशकल्पनाविभजनेन तृतीयो भङ्गः ॥१७॥

स्यादवक्तव्यमेवेति समसमये विधिनिषेधयोरनिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया चतुर्थो भङ्गः ॥१८॥

स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयस्व्यापनाकल्पनाविभजनया पञ्चमो विकल्पः ॥ १९ ॥

स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति निषेधप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयस्व्यापनाकल्पनाविभजनया षष्ठो भङ्गः ॥२०॥

स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमात् सदंशासदंशप्राधान्यकल्पनया युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयस्व्यापनाकल्पनाविभजनया च सप्तमो भङ्गः ॥२१॥

प्रथमभङ्गप्रतिपादकसूत्रस्यायमर्थः—विधिप्राधान्यविवक्षायां स्यादस्त्येवेत्ययं भङ्गः, स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकम् , स्यादित्यनेन कथञ्चित्स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयरूपेण, अस्त्येव घटादि वस्तु, नास्त्येवान्यदीयद्रव्यक्षेत्रकालभावचतुष्टयरूपेण, तद्यथा—घटो द्रव्यतः पार्थिवत्वरूपेणास्ति, नास्ति जलादिरूपेण, क्षेत्रतः पाटलिपुत्रकत्वेन अस्ति, नास्ति कान्यकुब्जत्वेन, कालतः शैशिरत्वेन अस्ति, नास्ति वासन्तिकत्वेन, भावतोऽस्ति रक्तत्वेन, नास्ति पीतत्वेन, एवकारेणान्यव्यवच्छेदः क्रियते, अस्तित्वावच्छेदकपार्थिवत्वादेर्विरुद्धं जलत्वादिकमन्यदतोऽस्तित्वावच्छेदकतया जलत्वादेर्व्यवच्छेदः प्रथमभङ्गाभिमतः, न तु जलत्वादिना नास्तित्वमेतद्भङ्गप्रतिपाद्यम् , तस्य द्वितीयभङ्गविषयत्वादिति बोध्यम् , एवकारोपादानसामर्थ्यात् स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया कथञ्चिदस्ति

घटः, परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्ति चेत्युल्लेखकः प्रथमो भङ्गः ।

वाक्येऽवधारणं तावदनिष्टार्थनिवृत्तये ।
कर्तव्यमन्यथाऽनुक्त-समत्वात् तस्य कुत्रचित् ॥१॥

इति वचनादवधारणस्य प्रतिभङ्गमवश्यं कर्तव्यम्, यदि स्यादित्यनेकान्तद्योतकमव्ययं तत्र न प्रयुज्यते तदा कुम्भोऽस्त्येवेत्येतावन्मात्रोक्तौ स्तम्भास्तित्वादिना सर्वप्रकारेणास्तित्वं कुम्भस्य प्रसज्येत इति प्रतिनियतस्वरूपानुपपत्तिः स्यादिति, प्रतिनियतस्वरूपावगतये स्यादित्यव्ययं प्रयुज्यते–

"सोऽप्रयुक्तोऽपि वा तज्ज्ञैः सर्वत्रार्थात् प्रतीयते ।
यथैवकारोऽयोगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः ॥१॥

इति वचनात् तस्यापि सप्तसु भङ्गेषु ग्रहणमावश्यकम्, विधेः प्राधान्याच्च प्रथमभङ्गस्य विधिरूपतया व्यपदेशः॥ अस्तित्वात्मकविधिधर्माविनाभावित्वान्नास्तित्वात्मकनिषेधधर्मस्येति निषेधधर्मप्राधान्यकल्पनया स्यान्नास्त्येव घट इति द्वितीयभङ्गः प्रवर्तते, यद्यपि नियमेन यदेव साध्यसद्भावेऽस्तित्वं साधनस्य तदेव साध्याभावे साधनस्य नास्तित्वमिति कृतकत्वानित्यत्वयोरिव तादात्म्यलक्षणसम्बन्धादविनाभावित्वमस्तित्वनास्तित्वयोः, एवं च स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षयाऽस्तित्वेन सिद्धो घटो मुद्गरसंयोगादिना नष्टः सन् नास्तित्वेन सिद्धो भवति, क्षणविनश्वराणां भावानामुत्पत्तिरेव विनाशे कारणम्, यदुक्तम्–

उत्पत्तिरेव भावानां विनाशे हेतुरिष्यते ॥

यो जातश्च न च ध्वस्तः स हि नाम न विद्यते॥१॥इति

अस्तित्वसिद्धिनिबन्धनभूताया उत्पत्तेरेव विनाशापरपर्यायनास्तित्वस्यापि निबन्धनमिति तयोरविनाभावः सिद्धिपथमेति। न चैकेनैव स्वरूपेणास्तित्वनास्तित्वयोरेकत्र स्थाने निरूपणाद् भावाभावयोरैक्यापत्तिः, इष्टत्वादित्येवमस्तित्वनास्तित्वयोस्तादात्म्यात् प्रथमभङ्गेनास्तित्वप्रतिपादने तदात्मकं नास्तित्वं प्रतिपादितमेवेति द्वितीयभङ्गो नोपादेय एकान्तक्षणिकवादिमते, तथापि स्याद्वादिभिरस्माभिर्येन रूपेण यस्मिन् क्षणे उत्पादो यस्य तेन रूपेण तस्मिन्नेव क्षणे तस्य विनाशो नेष्यते किन्त्वेकस्मिन् क्षणे येन रूपेण यस्योत्पादस्तदन्येन रूपेण तदानीन्तनस्य विनाशो भिन्न भिन्न समय एव चैकेनैव रूपेणोत्पादविनाशाविति कथञ्चिदस्तित्वनास्तित्वभेदस्यापि सद्भावादस्तित्वाविनाभूतस्यापि नास्तित्वस्य प्रतिपादको द्वितीयभङ्गः सिद्धो भवतीति, तत्र च निषेधप्राधान्यं प्रथमभङ्गाद् विशेषः। सर्वं वस्तु क्रमेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयाधारपरद्रव्यादिचतुष्टयानाधारविवक्षया प्राप्तपूर्वापरभावाभ्यां विधिनिषेधाभ्यां प्रधानतया विशेषित स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति तृतीयभङ्गभाग् भवतीति, यथा घटः स्वीयद्रव्याद्यपेक्षया कथञ्चिदस्त्येव स्यात् परद्रव्याद्यपेक्षया नास्त्येव स्यात्, तथा सर्वं वस्त्विति विधिप्रतिषेध-

प्रधानोऽयं तृतीयभङ्गः । युगपद्विधिनिषेधकल्पनया सदंशा-सदंशयोः समकालप्ररूपणा निषेधप्रधानोऽयं स्यादवक्तव्य एवेति तुरीयो भङ्गः, तथाहि—विधिप्रतिषेधधर्मयोर्युगपत्प्रधान-भूतयोरेकस्य पदार्थस्य युगपद्विधिनिषेधद्वय इति प्रधान-विधानविवक्षायां तादृक् शब्दस्यानिर्वचनीयत्वादवक्तव्यं घटादि वस्तु, तस्य विधिप्रतिषेधधर्माक्रान्तस्यापि युगपद्धर्मद्वयस्या-वक्तव्यरूपत्वात् युगपद्विरुद्धधर्मद्वयस्याप्रयोगः, शीतोष्णयो-रिव सुखदुःखयोरिवानयोः क्रमेणैवार्थप्रत्यायने सामर्थ्यात्, न तु युगपदिति, 'क्तक्तवतु'सङ्केतितनिष्ठाशब्दवत् सूर्यचन्द्र-सङ्केतितपुष्पदन्तशब्दवद् वा, निष्ठाशब्देन पुष्पदन्तशब्देन वा क्रमेणैव क्तक्तवत्वोः सूर्यचन्द्रमसोश्चार्थयोः प्रत्ययः, एतेन द्वन्द्वादिपदानामपि युगपदर्थप्रत्यायकत्वमपास्तम्, धवखदिरौ स्त इत्यत्र क्रमेणैव ज्ञानं न युगपदिति, तथैव प्रत्ययत्वात्, सम-कालावाचकत्वात् । अवक्तव्यं जीवाजीवादि वस्तु, युगपद्विधि-प्रतिषेधकल्पनया सङ्क्रान्तमेव प्रत्यवतिष्ठते, अस्तित्व-नास्तित्वधर्मविशिष्टोऽपि समकालमस्तित्वनास्तित्वाभ्यां वक्तुम-निर्वचनीयो घट इति फलितार्थः । सदंशपूर्वको युगपत्सदं-शासदंशानिर्वचनीयकल्पनाप्रधानोऽयं स्यादस्त्येव स्याद-वक्तव्यमेवेति पञ्चमो भङ्गः, स्वस्वद्रव्यादिचतुष्टयैर्विद्यमानत्वेऽपि सदंशोऽसदंश इति प्ररूपणां कर्तुमसमर्थेऽस्मिन् भङ्गे सर्वं वस्तु जीवादि स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया समस्त्यपि विधिप्रतिषेध-

रूपाभ्यां वक्तुमनिर्वचनीयम्, अस्त्यत्र प्रदेशे घटः सद्रूपासद्रूपाभ्यां यौगपद्येन स्वरूपं निर्देष्टुमसमर्थत्वाद् विधित्वेऽप्यवक्तव्य इति फलितोऽर्थः। निषेधत्वपूर्वको युगपद्विविधिनिषेधानिर्वचनीयप्रधानोऽयं स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति षष्ठो भङ्गः, परद्रव्यादिचतुष्टयैरविद्यमानत्वेऽपि सदंशोऽसदंश इति प्ररूपणां कर्तुमसमर्थेऽस्मिन् भङ्गे सर्वं वस्तु जीवाजीवादि परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्त्यपि विधिप्रतिषेधरूपाभ्यां वक्तुमनिर्वचनीयम्, नास्त्यत्र प्रदेशे घटः सद्रूपासद्रूपाभ्यां यौगपद्येन स्वरूपं निर्देष्टुमसमर्थत्वान्नास्तित्वेऽप्यवक्तव्य इति फलितार्थः। अनुक्रमेणास्तित्वनास्तित्वपूर्वको युगपद्विधिनिषेधप्ररूपणानिषेधप्रधानः स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति सप्तमो भङ्गः। स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षयाऽस्तित्वेऽपि परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षया नास्तित्वेऽपि सदंशोऽसदंश इति प्ररूपणां कर्तुमसमर्थेऽस्मिन् भङ्गे सर्वं जीवादि वस्तु स्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्ति परद्रव्याद्यपेक्षया नास्त्यपि समसमयं विधिप्रतिषेधरूपाभ्यां सह युगपत्प्रतिपादयितुमसमर्थम्, यथा स्वद्रव्याद्यपेक्षयाऽस्त्यत्र प्रदेशे घटः, परद्रव्याद्यपेक्षया नास्त्यत्र घटः, विधिनिषेधरूपाभ्यां यौगपद्येन स्वरूपं निर्देष्टुमशक्यत्वादवक्तव्य इति फलितार्थः

"एकत्र वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानन्तधर्माभ्युपगमेनानन्तभङ्गीप्रसङ्गादसङ्गतैव सप्तभङ्गीति न चेतसि निधेयम् ॥ ३७ ॥

विधिप्रतिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनन्तानामपि सप्तभङ्गीनामेव सम्भवात् ॥ ३८ ॥

प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव सम्भवात् ॥ ३९ ॥

इति त्रिभिः सूत्रैः शङ्कासमाधानाभ्यामनन्तभङ्गीप्रसङ्गनिवारणपुरस्सरमनन्तानां सप्तभङ्गीनां व्यवस्थापनम्--

" इयं सप्तभङ्गी प्रतिभङ्गं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च ॥ ४३ ॥

प्रमाणप्रतिपन्नानन्तधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद् वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ॥ ४४ ॥

तद्विपरीतस्तु विकलादेशः ॥ ४५ ॥"

इति त्रिभिः सूत्रैः प्रतिभङ्गं सप्तभङ्ग्याः सकलादेशत्वं विकलादेशत्वं च देवसूरय आमनन्ति ।

कालादयश्चाष्टौ–कालः, आत्मस्वरूपम्, अर्थः, सम्बन्धः, उपकारः, गुणिदेशः, संसर्गः, शब्दश्च–एषां सङ्ग्राहकं पद्यमिदम्–

" कालात्मरूपसम्बन्धाः संसर्गोपक्रिये तथा ।
गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥१॥" इति।

दैगम्बरीये सप्तभङ्गीस्वरूपनिरूपणप्रवणे ग्रन्थेऽपि सप्तभङ्ग्याः प्रतिभङ्गं सकलादेशत्वं विकलादेशत्वं च प्रतिपादि-

तम्, तत्प्रतिपादनप्रकारश्चेत्थमवधारयितुं सुगमः । तथाहि-कालात्मरूपार्थसम्बन्धोपकारगुणिदेशसंसर्गशब्दैः द्रव्यार्था-देशेन गुणानामनन्तानामप्येकवस्तुगतानामभेदवृत्तिप्राधान्यात् पर्यायादेशेनाभेदोपचाराद् वैकधर्मप्रतिपादनमुखेन सकल-धर्मप्रतिपादनतस्तदात्मकवस्तुप्रतिपादकत्वेन प्रत्येकं सप्ता-नामपि भङ्गानां सकलादेशत्वम्, तथा तैरेव कालादिभि-रष्टभिः पर्यायार्थादेशेन भेदवृत्तिप्राधान्याद् द्रव्यार्थादेशेन च भेदोपचाराद् वा सप्तभिरपि भङ्गैः प्रत्येकमेकैकस्यैव धर्मस्य प्रतिपादनतो वस्तुभागस्यैव प्रतिपादकत्वं न वस्तुन इति विकलादेशत्वम्, तथा च सकलादेशस्वभावत्वात् सप्तभङ्गी प्रति-भङ्गं प्रमाणवाक्यं, विकलादेशस्वभावत्वान्नयवाक्यमिति, देव-सूरीणामाशयश्चेत्थमवधार्यः, तथाहि–अस्तित्वादिविशिष्टमव-क्तव्यत्वादिकमप्यर्थान्तरमेव, न तु विशेषणपरिकलित-विशेष्यस्वरूपमात्रं, तथा सति विशेषणविशेष्यभावव्यत्ययतः सप्ताधिकधर्माणामपि सम्भवेन सप्तभङ्गीस्वरूपव्याहतिः स्यात्, विशिष्टस्य धर्मान्तरत्वे च विशेषणविशेष्यभावव्यत्ययेनानेक-विशिष्टस्वरूपप्राप्तावपि समनियतानां तेषामैक्यमेव न तु भिन्नत्वमिति तादृशानेकविशिष्टप्रतिपादनमेकेनैव भङ्गेनेति न सप्ताधिकभङ्गप्रसङ्गः । अतिरिक्तश्च विशिष्टरूपधर्मोऽखण्ड एव, तदभिव्यञ्जकत्वमेव विशेषणविशेष्ययोरिति न धर्मद्वयभेदा-नुसन्धानस्य नियमतोऽपेक्षेति, यथा च अस्तित्वस्य नास्ति-त्वस्यावक्तव्यत्वस्य च धर्मान्तरैः समं कालादिभिरष्टभिरभेद-

वृत्त्यभेदोपचाराश्रयणस्य कर्तुं शक्यत्वादेकधर्मप्रतिपादनमुखेन सकलधर्मात्मकवस्तुप्रतिपादनस्य सप्तभिरपि भङ्गैः प्रत्येकं सम्भवात् प्रतिभङ्गं सकलादेशस्वभावा सप्तभङ्गी । एवमुक्तदिशा विकलादेशस्वभावाऽपीति, तत्त्वार्थवृत्तिकृतां मते स्यादस्त्येव सर्वम्, स्यान्नास्त्येव सर्वम्, स्यादवक्तव्यमेव सर्वम्, इत्येवं त्रयाणां भङ्गानां सकलादेशत्वम्, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव सर्वम्, स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सर्वम्, स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सर्वम्, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सर्वमित्येवं चतुर्णां भङ्गानां विकलादेशत्वम्, तथाहि—तत्त्वार्थस्य पञ्चमाध्याये—

"अर्पितानर्पितसिद्धेः॥ ५—३१ ॥" इति सूत्रस्य "उत्पन्नास्तिकस्य उत्पन्नं वा उत्पन्ने वा उत्पन्नानि वा सत्, अनुत्पन्नं वाऽनुत्पन्ने वाऽनुत्पन्नानि वाऽसत्" इति आद्यभङ्गद्वयप्रतिपादनपरस्य भाष्यस्य व्याख्यायां सप्तभङ्गीस्वरूपव्यवस्थापनपरायां वृत्तिकृद्भिरभिहितं, यथा—" एवमुक्तेन प्रकारेण धर्मादिद्रव्यं स्यात् सत्, स्यादसत्, स्यान्नित्यं, स्यादनित्यम् इति प्रतिपाद्यत्वेन सूचितम् ॥

अधुना विप्रपञ्च्यते—तत्र द्रव्यार्थनयप्रधानतायां पर्यायनयगुणभावे च प्रथमविकल्पः, प्राधान्यं च शब्देन विवक्षितत्वाच्छब्दाधीनम्, शब्दानुपात्तस्यार्थतो गम्यमानत्वादप्रधानता। पर्यायनयप्रधानतायां द्रव्यनयगुणभावे च द्वितीयः।

अर्पितेऽनुपनीते न वाच्यं सदिति असदिति वेत्यनेन भाष्य-वचनेन तृतीयविकल्पो वक्ष्यते स्यादवक्तव्यमिति " एत-द्रूत्यर्थ एवमवगन्तव्यः, 'एवमुक्तेन प्रकारेण' उत्पन्नास्ति-कस्येत्यादिभाष्योक्तप्रकारेण सप्तभङ्गीप्रसिद्धिमूलभङ्गद्वयसूचने सति सप्तभङ्गीप्रसिद्धिः सूचिता भवतीत्यभिप्रायकोऽयं धर्मादि द्रव्यं स्यात् सदित्यादिको ग्रन्थः, प्रथमभङ्गः कं नयमाश्रित्य प्रवर्तते, कं च नयमाश्रित्य द्वितीयभङ्गः प्रवर्तत इत्याकाङ्क्षानिवृ-त्त्यर्थमाह अधुनेति–उत्पन्नास्तिकस्येत्यादिभाष्यवचनेन प्रथम-द्वितीयभङ्गसूचनानन्तरमित्यर्थः । विप्रपञ्च्यते–विशिष्य प्रपञ्चतः प्रकटीक्रियते । तत्र प्रथमद्वितीयभङ्गयोर्मध्ये प्रथम-विकल्पः स्यात् सदेव सर्वमिति प्रथमभङ्गः, एवं स्यान्नित्यमेव सर्वमित्यादिः, द्रव्यार्थनयप्रधानता द्रव्यार्थनयविषयीभूत-सत्त्वनित्यत्वादिप्राधान्ये सत्यवसीयत इति तत्प्राधान्यमुपद-र्शयति–प्राधान्यमिति, यद्यपि सत्त्वादीनां सर्वेषामेव धर्माणां युगपदेव धर्मादिषु भावस्तथापि सत्त्वस्यैव शब्देन विवक्षित-त्वाच्छब्दोपात्तत्वलक्षणं शब्दाधीनं प्राधान्यमिति तद्विषयस्य द्रव्यार्थनयस्यापि प्रधानतेति तस्यां सत्यां प्रथमभङ्गः प्रवर्तत इति । असत्त्वादेः पर्यायार्थिकनयविषयस्य तदानीं सत्त्वेऽपि शब्देनाविवक्षितत्वान्न शब्दोपात्तत्वलक्षणं प्राधान्यम्, किन्तु सत्त्वमसत्त्वाविनाभूतमिति शब्दोपात्तेन सत्त्वेनासत्त्वमपि गम्यते इति प्रथमभङ्गेऽर्थतो गम्यमानस्यासत्त्वादेरप्राधान्येन तद्विषयकस्य पर्यायार्थनयस्यापि गुणभाव इति तस्मिन् सति

प्रथमभङ्गप्रवृत्तिरित्याशयेनाह—शब्दानुपात्तस्येति । पर्याय-नयप्रधानतायामित्यत्रापि भावना पूर्ववदवसेया, द्वितीयः—स्यादसदेव सर्वम्, स्यादनित्यमेव सर्वमित्यादिर्द्वितीयभङ्गः । नन्वेवं प्रथमद्वितीयभङ्गयोर्भाष्याभिप्रेतत्वेऽपि यदि स्याद-वक्तव्यमेव सर्वमिति तृतीयभङ्गो भाष्याभिप्रेतो न भवेत्, न भवेत् सप्तभङ्गीस्वरूपनिष्पत्तिः । सप्तभङ्ग्याः सप्तमभङ्ग-समाहाररूपायाः सप्तभङ्गानां सम्भव एव भावात् । भङ्गत्रय-भावे च प्रथमद्वितीयभङ्गयोजनया तुरीयभङ्गस्य तृतीयभङ्गे प्रथमभङ्गयोजनया पञ्चमभङ्गस्य तत्रैव द्वितीयभङ्गयोजनया षष्ठभङ्गस्यैवं तत्रैव प्रथमद्वितीययोर्योजनेन सप्तमभङ्गस्य सम्भ-वतः सम्भवादित्यतस्तृतीयभङ्गस्य भाष्याभिप्रेतत्वं दर्शयति—अर्पित इति, भाष्याभिप्रेततयोपदर्शितानां त्रयाणामेव भङ्गानां सकलादेशत्वं नान्येषां भङ्गानामित्युपदर्शनायाह—एते त्रयः सकलादेशा इति । यत एव आद्यानां त्रयाणां सकलादेश-त्वमभीष्टं न तु भङ्गमात्रस्य । तत एवान्यत्र स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति भङ्गस्य तृतीयतयाऽभिधानेऽप्यत्र तस्य तथाऽभिधाने विकलादेशस्य तस्य सकलादेशत्वं न सम्भव-तीति । आद्यौ द्वौ तुरीयश्च सकलादेशा इत्येवमभिधानं वक्तुमुचितं स्यात् तत्र च ग्रन्थगौरवं सकलादेशस्यैकस्याभि-धानात् पूर्वमेवैकस्य विकलादेशस्याभिधानं संदर्भविरुद्धं चेत्यतस्तृतीयतया स्यादवक्तव्यमेवेति भङ्गस्योपक्षेपः॥विशिष्ट-धर्माणां भङ्गत्रयव्यतिरिक्तभङ्गप्रतिपाद्यानामतिरिक्तधर्मता-

मङ्गीकृत्वाखण्डधर्मतासमाश्रयणेन तत्प्रतिपादकभङ्गानां सकलादेशत्वम्, यदेवसूर्याद्यभिप्रेतं तत्प्रतिक्षेप्तुरस्य वृत्तिकृतोऽयमभिप्रायः—विशिष्टानां समनियतानामखण्डानामैक्येऽपि विशिष्टस्वरूपावभासो विशेषणविशेष्यस्वरूपभेदावभासनियत एवाभ्युपगन्तव्यः, अन्यथा विशिष्टस्य विशेषणविशेष्याभ्यां सर्वथाभिन्नस्यैवाभ्युपगमे सत्त्वविशिष्टस्यासत्त्वस्य नित्यत्वविशिष्टानित्यत्व-भेदविशिष्टाभेदादिस्वरूपतो न भेदेन प्रतिभासः स्यात्, एवं सति सर्वासामपि सप्तभङ्गीनामाद्यभङ्गत्रयवैलक्षण्यकृतमेव वैलक्षण्यं स्यात्, न त्वन्तिमभङ्गचतुष्टयवैलक्षण्यप्रयुक्तमप्यवभासमानं वैलक्षण्यं युज्येत। न च व्यञ्जकवैलक्षण्यकृतमेव वैलक्षण्यमिति वाच्यम्, विशिष्टस्यावैलक्षण्ये व्यञ्जकवैलक्षण्यस्यापि वक्तुमशक्यत्वात्, न चैवं सत्त्वविशिष्टासत्त्वादसत्त्वविशिष्टसत्त्वस्य भेदप्राप्तौ सप्तभङ्गाधिकभङ्गप्रसङ्ग इति वाच्यम्, सत्त्वविशिष्टासत्त्वादिरसत्त्वविशिष्टसत्त्वादिना तुल्यवित्तिवेद्यत्वस्याभ्युपगमेनैकेनैव भङ्गेन तदुभयावगतौ निष्प्रयोजनतया विशेषणविशेष्यव्यत्यासकृतभङ्गभेदस्योपन्यासानर्हत्वादतो विशिष्टधर्मप्रतिपादकभङ्गचतुष्टये भेदभानमावश्यकमिति नाभेदप्राधान्यवृत्त्युपचाराश्रयणसंकथेति, न ततोऽखण्डवस्तुप्रतिपादनमिति न अस्तित्वाद्येकधर्मावभासकत्वतस्तदभिन्नाशेषधर्मावभासकत्वेनान्तधर्मात्मकवस्तुनो यौगपद्येन प्रतिपादकत्वलक्षणं सकलादेशत्वं पराभिप्रेतं न वाऽखण्डवस्तुप्रतिपादकत्वलक्षणं वा तेषां तत्समस्तीति आद्य-

भङ्गत्रये प्रतिज्ञातस्य सकलादेशत्वस्योपपादनाय तत्त्वार्थवृत्तिकृदाह–

"यदा त्वभिन्नमेकं वस्त्वनेकेन गुणरूपेणोच्यते, गुणिनां च गुणरूपमन्तरेण विशेषप्रतिपत्तेरभावात् । इह आत्मादिरेकोऽर्थः सत्त्वादेरेकस्य गुणस्यतद् रूपेणाभेदोपचारतो मतुब्लोपेन वा निरंशः सकलो व्याप्तो वक्तुमिष्यते, विभागनिमित्तस्य प्रतियोगिनो गुणान्तरस्यासत्त्वादेस्तत्रानाश्रयणात्, तत्र द्रव्यार्थाश्रयं सत्त्वगुणमाश्रित्य, तदा स्यात् सन्नित्युच्यते सकलादेशः, गुणद्वयं तु गुणिनो भागवृत्तिर्भवति, उभयात्मकत्वाद् गुणिनः, नत्वेको गुणो भागवृत्तिरिति, एवं स्यान्नित्य इत्यपि वाच्यम् । तथा पर्यायनयाश्रयमसत्त्वमसत्त्वमनित्यत्वं चाङ्गीकृत्य स्यादसत्, स्यादनित्य आत्मेति वाच्यम् । युगपद्भावादुभयगुणयोरप्रधानतायां शब्देनाभिधेयतयाऽनुपात्तत्वात् स्यादवक्तव्यः" इति ।

इदमस्य व्याख्यानं यथा–यदेति तदा सन्नित्युच्यते इत्यग्रेतनतदाशब्दसमाश्रयणेन, अनेकेन गुणरूपेणाभिन्नमेकं वस्तु यदा द्रव्यार्थाश्रयं सत्त्वमाश्रित्योच्यते तदा सकलादेश इति सम्बन्धः, कथमुच्यते इति कथम्भावाकाङ्क्षायामग्रे प्रतिपादितं स्यात्सन्नित्युच्यते इति, अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनः कथं गुणरूपेणाभिधानं तदन्तरेण कथं स्यात्सन्नित्येवंरूपेण सत्त्वात्मकगुणसमाश्रयणतस्तदवबोधकवचनप्रवृत्तिः, तदभावे

कथं सकलादेशत्वमित्याशङ्कानिवृत्तये त्वाह–गुणिनां चेति-अनन्तधर्मात्मकं वस्तु तदाऽवगतं भवेद् यदि येन येन गुणेन सह तस्याभेदः प्रत्येकं तत्तद्गुणात्मकतयातत्प्रतिपत्तिः स्यात्, अन्यथा तद्गुणकोऽयमित्येव न सिध्येत् कुतोऽनन्तगुणात्मकतावानयमिति, वस्तुस्वरूपमात्रप्रतिपत्तिस्त्वविशिष्टा न व्यवहारक्षमेत्याशयः, गुणपदं च धर्ममात्रोपलक्षणम्, गुणानां परस्परभेदमन्तरेण कथमनन्तता, तथा च सति कथमेकस्य वस्तुनो गुणिनो गुणाभेदः, तमन्तरेण कथं गुणात्मना गुणरूपेण तत्प्रतिपत्तिरित्यपेक्षयामाह–इहेति अभेदोपचारत इति, वास्तविकैकगुणाभिन्नत्वे तदन्यगुणाभिन्नत्वाभावतोऽनन्तधर्मात्मकत्वमेव न स्यादित्येकगुणमयत्वलक्षणतद्गुणाभिन्नत्वस्योपचार एवेत्यभिसन्धिः, एवमपि गुणगुणिभावो न प्रतीयेत, तस्य भेदप्रतिपत्त्यधीनत्वादतः पक्षान्तरमाह–मतुब्लोपेन चेति, तथा च गुणवाचकशब्दान्मतुपो लुग्विधानेन तस्य गुणवाचकशब्दस्य गुणिपरतया गुणविशिष्टत्वेन वस्तुनः प्रतीतिरुपपद्यते, निरंशः अखण्डः, एतेन एकदेशे तस्यैकस्य गुणस्य सद्भावोऽपरदेशे तदन्यगुणस्य सद्भाव इत्येवं भागवृत्तयो न तत्र गुणाः, किन्तु सम्पूर्ण एव वस्तुनि सर्व एव गुणा इत्येकगुणरूपेण न वस्तुभागप्रतिपत्तिः किन्तु अखण्डैकवस्तुप्रतिपत्तिरेवेति सूचितम्, एतत्स्पष्टप्रतिपत्तये उक्तं सकल इति, सकलशब्दोऽयं सम्पूर्णार्थको न यावदर्थकः, एकस्याखण्डस्य यावत्त्वाभावात्, अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुन एकेन गुणरूपेण

व्यापनं सम्पूर्णस्वरूपास्कन्दनं वस्तुतो न संभवति, तथा सति तदेकगुणमयत्वे गुणान्तरव्याप्तिस्तत्र न स्यात्, गुणत्व-साम्याद् गुणान्तरव्याप्त्यभाववत्तद्गुणव्याप्तिरप्यचतुरस्रेत्यत आह–व्याप्तो वक्तुमिष्यत इति, निरंशे वस्तुनि सर्वेऽपि गुणाः स्वस्वनिमित्तापेक्षया व्याप्त्यैव वर्त्तन्ते न तु भागेन, तदभावात्, तथाप्येकस्यैव गुणस्य व्याप्तिस्तत्र विवक्षिता, अन्यगुणव्याप्तेस्तत्र सत्त्वेऽपि न विवक्षा, अत एकगुणरूपेण वस्तुप्रतिपत्तिर्घटते, एतत्स्पष्टप्रतिपत्तये त्वाह–विभागनिमि-त्तस्येति, यद्यपि वस्तुनो भागाभावात् कुतो विभागः कुत-स्तरां तद्विभागनिमित्तं किञ्चित् तथापि–

भागे सिंहो नरो भागे योंऽशो भागद्वयात्मकः ।
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥ १ ॥

इति न्यायेन बौद्धकल्पनारूपो विभाग आरोपितोऽ-स्त्येव, ततस्तन्निमित्तं गुणान्तरमप्यस्त्येव, तच्च न विवक्ष्यते, अत एकेन गुणरूपेण व्याप्तोऽखण्डो वक्तुमिष्टो भवतीति। एवं सति प्रथमभङ्गः सकलादेशः सम्पद्यते सत्त्वगुणसमा-श्रयणादित्याह–तत्रेति, सप्तभङ्ग्या नयद्वयसमाश्रयणेन प्रवृत्तिरिति। प्रथमभङ्गः कं नयं समाश्रित्य प्रवर्तत इत्यपेक्षायामाह–द्रव्यार्थाश्रयमिति–द्रव्यार्थिकनयविषय–मित्यर्थः, प्रथमभङ्गविषयस्य सत्त्वस्य द्रव्यार्थिकनयविषयत्वे तद्विषयकस्य भङ्गस्य द्रव्यार्थिकनयापेक्ष्यत्वं प्राप्तमेवेति, गुण-

द्वयरूपेण गुणिनोऽभिधायकं वचनं न सकलादेशः तत्र गुण-द्वयविवक्षाया भेदविवक्षामन्तरेणाघटनात्, तदात्मकत्वविवक्षणमपि गुणिनो भागकल्पनेनैव, यत एको भागोऽस्यायं गुणः एकश्चायमित्यतोऽयं गुणी भागद्वयात्मक इत्येवं सखण्डता तस्येति नाखण्डरूपस्य सकलस्य वस्तुनो गुणद्वयरूपेण प्रतिपादनं घटते, एकस्तु गुणः स्वयमखण्डत्वाद् वस्तुनो भागो विभागान्तराविवक्षायां वस्तुस्वरूपवदखण्डतयैव विवक्षितत्वात् तद्रूपेण वस्तुप्रतिपादनस्य सकलादेशत्वं घटत एवेत्यभिसन्धानेनाह–गुणद्वयं त्विति, यथा च सत्त्वासत्त्वविधिनिषेधकल्पनया प्रवृत्तायाः सप्तभङ्ग्याः स्यात्सन्निति प्रथमभङ्ग उक्तयुक्त्या सकलादेशः तथैव नित्यत्वानित्यत्वविधिनिषेधकल्पनाप्रवृत्तसप्तभङ्गीप्रथमभङ्गोऽपि स्यान्नित्य इति सकलादेशोऽवसेय इत्याह- एवं स्यान्नित्य इत्यपि वाच्यमिति। पर्यायार्थिकनयसमाश्रयणेन प्रवृत्तो द्वितीयभङ्गोऽप्येकरूपेण वस्त्वभिधायकत्वात् सकलादेशोऽवसेय इत्यतिदिशति–तथेति, पर्यायनयाश्रयं पर्यायार्थिकनयविषयम्, सकलादेशतयाऽभिमतस्य तृतीयभङ्गस्योपपादनायाह–युगपदिति, गुणद्वयस्य युगपत्प्रधानतया विवक्षायां प्रधानतयोभयप्रतिपादकस्य कस्यचिच्छब्दस्यावक्तव्यशब्दव्यतिरिक्तस्याभावादभिधेयस्याप्यभावापत्तौ सत्यां तथाऽप्रधानतैव तयोरित्यभिसन्धानेनोक्तम्–अप्रधानतायामिति, शब्देनाभिधेयतयाऽनुपात्तत्वादिति च देहलीदीपकन्यायेन पूर्वो-

त्तराभ्यामन्वेति, ततश्च यद्यप्यस्ति तयोः प्राधान्येन युगपद्विवक्षा, तथापि तथा विवक्षायां तथा तत्प्रतिपादकः शब्द एव न कोऽपि विद्यत इत्यप्रधानतैव प्राप्ता, एवं युगत्प्रधानतया विवक्षितगुणद्वयरूपेण गुणिनोऽभिधायकमपि वचनं नास्तीत्यवक्तव्य एव सः, एवं च युगपत्प्रधानतया विवक्षितगुणद्वयमव्यक्तरूपतापन्नमेकगुणरूपमेव, तद्रूपेण धर्मिणोऽभिधायकत्वात् स्यादवक्तव्य एवेति तृतीयभङ्गेऽपि सकलादेश इत्याशयः। विशेषतः प्रथमद्वितीयभङ्गप्रपञ्चनं स्यात्पदैवकारपदप्रक्षेपप्रयोजनोपवर्णनसंवलितं तत्त्वार्थवृत्तावुपदर्शितं विशेषार्थिभिः तत्रैव विलोकनीयम् ,ग्रन्थगौरवभयान्नात्रोपदर्श्यते।स्यादवक्तव्य एवेति तृतीयभङ्गाभिधित्सया भाष्यकृदुक्तस्य "अर्पितेऽनुपनीते न वाच्यं सदिति असदिति वा" वचनस्य तत्त्वार्थवृत्तिः पुनरित्थम्--युगपदात्मन्यस्तिनास्तित्वधर्माभ्यामर्पिते विवक्षिते क्रमेण चानुपनीते क्रमेणाभिधातुमविवक्षिते, वाच्यं न जातुचित् सदात्मतत्त्वमसदात्मतत्त्वमिति वा, वाशब्दो विकल्पार्थः अर्पितं विशेष्यते--कीदृशेऽर्पिते ? अनुपनीते, कथमनुपनीते ? सामर्थ्यात् क्रमेणाविशेषिते, क्रमेण त्वर्पणे प्राच्यविकल्पावेव स्याताम्, अतोऽवश्यन्तया युगपदभिन्ने काले द्वाभ्यां गुणाभ्यामेकस्यैवार्थस्याभिन्नस्य प्रतियोगिभ्यामभेदरूपेणैकेन शब्देनावधारणात्मकाभ्यां वक्तुमिष्टत्वादवाच्यम्, तद्विषयस्यार्थस्य शब्दस्य च भावात्, अयं च विकल्पस्तत्त्वान्यत्वसत्त्वासम्भवात् किलावक्तव्यमेवेत्येवं-

विधैकान्तव्यावर्तनार्थः–स्यादवक्तव्य एवात्मा अवक्तव्यशब्दे-नान्यैश्चषड्भिर्वचनैर्द्रव्यपर्यायविशेषैश्च वक्तव्य एव, अन्यथा सर्वप्रकारावक्तव्यतायामवक्तव्यादिशब्दैरप्यवाच्यत्वादनुपाख्यः स्यात्, अतीतविकल्पद्वयं त्वेकान्तास्तित्वैकान्तनास्तित्वप्रति-पक्षनिराकरणद्वारेण स्यादस्ति स्यान्नास्तीति स्वपरपर्यायान्तरै-कधर्मसम्बन्धार्पणात्कालभेदेनोक्तम्, अधुना युगपद्वि-रुद्धधर्मद्वयसम्बन्धार्पितस्य च वस्तुरूपस्याभिधानात् कीदृशः शब्दप्रयोगो भवतीति,? उच्यते–न खलु तादृशः शब्दोऽस्ति यस्तादृशीं विवक्षां प्रतिपूरयेत्, यतोऽर्थान्तरवृत्तैः पर्यायैर-वर्तमानमनुभवँस्तान् पर्यायान् द्रव्यं ब्रवीत्येका विवक्षा, अपरा तु विवक्षा निजैः पर्यायैः स्वात्मनि वृत्तैर्वर्त्तमानमनु-भवन् स्वान् पर्यायान् द्रव्यमभिदधातीति, एवमेतयोर्विवक्षयोः परस्परविलक्षणत्वाद् विरुद्धत्वाच्च द्वाभ्यामपि युगपदादेशे पुरुषस्यैकस्यैकत्र द्रव्ये नास्ति सम्भवो वचनविशेषाती-तत्वाच्चावक्तव्यं वाचकशब्दाभावात्, एतदुक्तं भवति–अस्ति-त्वनास्तित्वयोर्विरुद्धयोरेकत्राधिकरणे काले च सम्भव एव नास्तीत्यतस्तद्विधस्यार्थस्याभावात्तस्य वाचकः शब्दोऽपि नास्त्येवेति, तथा कालाद्यभेदेन वर्त्तनं गुणानां युगपद्भावः, तच्च यौगपद्यमेकान्तवादे नास्ति, यतः, कालात्मरूपार्थसम्ब-न्धोपकारगुणिदेशसंसर्गशब्दद्वारेण गुणानां वस्तुनि वृत्तिः स्यात्, तत्रैकान्तवादे विरुद्धानां गुणानामेकस्मिन् काले न क्वचिदेकत्रात्मनि वृत्तिर्दृष्टा. ॥ ९ ॥ न जातुचित् प्रविभक्ते

सदसत्त्वे स्त एकत्रात्मन्यसंसर्गरूपे, येनात्मा तथोच्येत, ताभ्यां विविक्तश्च परस्परगुणानामात्मस्वभावो नान्योन्यात्मनि वर्तते, ततश्च नास्ति युगपदभेदेनाभिधानम् २ ॥ न चैकत्रार्थे विरुद्धाः सदसत्त्वादयो वर्तन्ते यतो ह्यभिन्नैकात्माधारत्वेनाभेदे सति सदसत्त्वे युगपदुच्येयाताम् ॥ ३ ॥ न च सम्बन्धाद् गुणानामभेदः, सम्बन्धस्य भिन्नत्वाच्छत्रदेवदत्तसम्बन्धाद्धि दण्डदेवदत्तसम्बन्धोऽन्यः, सम्बन्धिनोः कारणयोर्भिन्नत्वात्, न तावेकेन सम्बन्धेनाभिन्नावेव, सदसतोरात्मना सह सम्बन्धस्य भिन्नत्वात्, न सम्बन्धकृतं यौगपद्यमस्ति, तदभावाच्च नैकशब्दवाच्यत्वम् ॥ ४ ॥ न चोपकारकृतो गुणानामभेदः, यस्मान्नीलरक्ताद्युपकर्तृगुणाधीन उपकारः, ते च स्वरूपेण भिन्नाः सन्तो नीलनीलतररक्तरक्ततरादिना द्रव्यं रञ्जयन्ति विविक्तोपकारभाजः, एवं सदसत्त्वयोर्भेदात् सत्त्वेनोपरक्तं सत्, असत्त्वोपरक्तमसदिति दूरापेतमुपकारसारूप्यम्, यतस्तदभेदेन शब्दो वाचकः स्यादिति ॥ ५ ॥ नाप्येकदेशे गुणिन आत्मन उपकारः समस्ति, येनैकदेशोपकारेण सहभावो भवेत् गुणगुणिनोरुपकारकोपकार्यत्वे नीलादिगुणः सकल उपकारकः, समस्तश्च घटादिरुपकार्यः, न चैकदेशे गुणो गुणी वा, यतो देशसहभावात्कश्चिच्छब्दो वाचकः कल्प्येत, ॥ ६ ॥ न चैकान्तवादिनां सदसत्त्वयोः संसृष्टमनेकान्तात्मकं रूपमस्ति, अवधृतैकान्तरूपत्वात्, यथैव हि शबलरूपव्यतिरिक्तौ शुक्लकृष्णावसंसृष्टौ नैकस्मिन्नर्थे वर्तितुं

समर्थौ, एवं सदसत्त्वाभ्यां संसर्गाभावान्न युगपदभिधानमस्ति ॥ ७ ॥ नाप्येकशब्दः शुद्धः समासजो वाक्यात्मको वाऽस्ति गुणद्वयस्य सहवाचकः, क्रमेण सदसच्छब्दयोः प्रयोगे यद्य-सच्छब्दः सदसत्त्वे यौगपद्येन ब्रवीति एवं तर्हि स्वार्थवत्स-त्त्वमप्यसत्कुर्यात्, तथैव सच्छब्दोऽपि स्वार्थवदसदपि सत् कुर्यात्, विशेषशब्दत्वाच्च सदित्युक्ते नासदभिधीयते, न चासदित्युक्ते सदित्युक्तं भवति, अतो युगपदवाचक एकशब्दः। अथ युग-पत्सदसच्छब्दौ गुणद्वयस्य वाचकाविष्येते, तत :समासवाक्य-माख्यातादिपदसमुदायवाक्यं वा भवेत्, तत्र च समासवाक्यं न वाचकं तत्र द्वन्द्वस्तावदुभयपदार्थप्रधानः प्लक्षन्यग्रोधवदस्त्यादिभिः क्रियाभिस्तुल्ययोगित्वात्, क्रियाश्रयत्वाच्च द्रव्यस्य प्राधान्यं न गुणत्वम्, यश्च गुणक्रियाशब्दानां द्वन्द्वो रूपरसादीनामुत्क्षे-पणापक्षेपणादीनाञ्च, तत्रापि गुणाः शब्दशक्तिस्वाभाव्यात्, द्रव्यरूपा एवोच्यन्तेऽस्त्यादिक्रियायोगित्वात्, अन्यथा द्वन्द्वाभावात्, अत्र चात्मा विशेष्यद्रव्यं सदसतोर्गुणवचन-त्वमतो गुणस्य गुण्यभेदोपचारेणाभिधानम्—सन्नात्माऽसन्ना-त्मेत्यतो न द्वन्द्वः। ननु च द्रव्येऽपि स्याद्वादोऽस्ति न गुण-विषय एव, यथा स्याद्घटः स्यादघट इति, अत्रापि हि द्रव्यं गुणरूपोपपन्नमेवोच्यते, शब्दशक्तिस्वाभाव्याद्विशेषणविशेष्य-भावापत्तेर्द्रव्यस्य विशेष्यत्वात्, स्याद्घटः इदं वस्त्विति वाक्यञ्च वृत्तेरभिन्नार्थं, केवलं विभक्तिश्रवणाद्रूपेण भिद्यते, अतो वाक्येनापि युगपत्प्रयोगासम्भवः। समानाधिकरण-

समासवाक्यमपि न सम्भवति, तत्र हि द्रव्यगुणयोः सामान्यविशेषभावे सति द्रव्यशब्दतायां सामानाधिकरण्यं नीलोत्पलादिवत्, अत्र च सदसतोर्गुणत्वात्परस्परं भेदे सति न सामानाधिकरण्यम्, अद्रव्यशब्दत्वात्, सामान्यविशेषरूपेणास्थितत्वान्नास्ति विशेषणविशेष्यसमानाधिकरणसमासः। कर्मधारयश्चार्थयोरिष्यते, न चान्यत्प्रतिपदविहितं समासलक्षणमस्ति, तस्मात्समासाभावाद्युगपत्प्रयोगाभावः तद्वाक्येऽपि सामर्थ्याभावाद् वृत्त्यनुरोधिवाक्यत्वाच्चातो न कर्मधारयः। नाप्याख्यातादिपदसमुदायो वाक्यं—संश्चासंश्चात्मेति, भवत्यादिक्रियासम्बन्धात्, तत्र सामान्यशब्दो युगपदनेकमर्थमभिदध्यात्, न चाभिदधीत, "अभिहितानां सामान्यशब्देन विशेषाणां नियमार्था पुनः श्रुतिः" इति न्यायात्, न वा ब्रूयादनेकमर्थमभिदधानोपायासम्भवात्, "तन्मात्राकाङ्क्षणाद्भेदः स्वसामान्येन चोज्झितः" इति न्यायात्, सामान्यशब्देष्वेवं, न विशेषशब्देषु धवखदिरादिषु, विशेषशब्दास्तु वाक्ये प्रयुज्यमानाः केवलाः स्वार्थमेव ब्रुवते संश्चासंश्चेति, न त्वनेकमर्थं, स्वार्थमात्राभिधानान्न सहगुणद्वयाभिधायिता। ननु च वाक्ये द्वयोरपि शब्दयोरेकतया युगपद्भावः, तन्न, पदेभ्यो वाक्यशब्दस्य शब्दान्तरत्वात्, एक एव हि शब्द इष्यते वाक्यम्, तस्य चार्थान्तरेणैकेनैव प्रतिभारूपेण भाव्यम्, अतोऽत्रापि गुणद्वयवचनस्य युगपच्छब्दद्वयस्यासम्भव इति ॥ ८ ॥ एवमुक्तात्कालादियुगपद्भावा-

सम्भवात्समासवाक्यलौकिकवाक्ये युगपच्छब्दयोर्द्वयोरर्थयोश्च वृत्त्यसम्भवाद्युगपद्विवक्षायामवाच्य इत्येवं सर्वैकान्तावक्तव्य-प्रतिषेधद्वारेण भाष्यकृता तृतीयविकल्पप्रणयनमकारि प्रेक्षा-पूर्वकारिणा "कथञ्चिदवक्तव्यः कथञ्चिद्वक्तव्योऽवक्तव्यादि-शब्दैरात्मेति निरूपितम्" इति, "सङ्ग्रहव्यवहाराभिप्राया-त्रयः सकलादेशाः, चत्वारस्तु विकलादेशाः समवसेया ऋजुसूत्र-शब्दसमभिरूढैवंभूतनयाभिप्रायेण" इत्यपि तत्त्वार्थवृत्तावेव दर्शितम्, प्रकारान्तरेण आद्यानां त्रयाणां सकलादेशानां भावना—"पर्यायास्तिकस्य सद्भावपर्याये वा सद्भावपर्याययोर्वा सद्भावपर्यायेषु वा, आदिष्टं द्रव्यं वा द्रव्ये वा द्रव्याणि वा सत्, असद्भावपर्याये वा असद्भावपर्याययोर्वा असद्भावपर्यायेषु वा, आदिष्टं द्रव्यं वा द्रव्ये वा द्रव्याणि वाऽसत्, तदुभय-पर्याये वा तदुभयपर्याययोर्वा तदुभयपर्यायेषु वा, आदिष्टं द्रव्यं वा द्रव्ये वा द्रव्याणि वा न वाच्यं सदसदिति वा," इति भाष्यस्य वृत्तौ विस्तरतः कृता विशेषार्थिभिरवलोकनीया। चतुर्णां विकलादेशानां भङ्गानां "देशादेशेन विकल्पयितव्य-मिति" इति भाष्येण सूचनं कृतं तत्स्पष्टीकरणार्था तत्त्वार्थ-वृत्तिर्यथा "इति करणो विकल्पेयत्ताप्रतिपादनार्थः, पर्याया-स्तिकमिति नपुंसकलिङ्गप्रक्रान्तेर्विकल्पयितव्यमित्याह, किं पुनः कारणं भाष्यकृता सकलादेशत्रयवदितरेऽपि चत्वारो विकलादेशा भाष्येण नोक्ता इति, अयमभिप्रायो भाष्यकारस्य लक्ष्यते—सकलादेशसंयोगाच्चतुर्णां निष्पत्तिरिति सुज्ञाना॥

तत्राद्य–द्वितीयविकल्पसंयोगे तुर्यविकल्पनिष्पत्तिः–स्यादस्ति च नास्ति चेति, प्रथम-तृतीय-विकल्पसंयोगे पञ्चमविकल्प-निष्पत्तिः–स्यादस्ति चावक्तव्यश्चेति, द्वितीय-तृतीय-विकल्प-संयोगे षष्ठविकल्पनिष्पत्तिः–स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्चेति, प्रथम–द्वितीय–तृतीय–विकल्पसंयोगे सप्तमविकल्पनिष्पत्तिः–स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्चेति, तत्राद्येषु त्रिषु विकल्पेषु सकलमेव द्रव्यमादिश्यते, चतुर्थादिषु पुनर्विकल्पीकृतं खण्डश आदिश्यते, तदाह देशादेशेनेत्यादि, सकलस्य वस्तुनो बुद्धि-च्छेदविभक्तोऽवयवो देशस्तस्मिन् देशे आदेशो देशादेशस्तेन देशादेशेन विकल्पनीयं व्याख्येयम् आत्मादितत्त्वमित्येवं विकल्पचतुष्टयस्यापि ग्रहणम्, तत्र चतुर्थ उभयप्रधानो विकल्पः क्रमेणोभयस्यापि शब्देनाभिधेयत्वात्, देशादेशो हि विकलादेशः तच्च वस्तुनो वैकल्यम्, स्वेन तत्त्वेन प्रवि-भक्तस्यापि विविक्तं गुणरूपं स्वरूपेणोपरञ्जकमपेक्ष्य प्रति-कल्पितमंशभेदं कृत्वाऽनेकान्तात्मकैकत्वव्यवस्थायां नरसिंह-नरसिंहत्ववत् समुदायात्मकमात्मरूपमभ्युपगम्याभिधानं विक-लादेशः, न तु केवलसिंह–सिंहत्ववदेकात्मकैकत्वपरिग्र-हात् यथा च प्रतिपादनोपायार्थपरिकल्पितानेकनीलपीतादि-विभागा निर्विभागमनेकात्मकमेकं चित्रं सामान्यरूपमुच्यते तथा च वस्त्वप्यनेकधर्मस्वभावमेकम्, दृष्टश्चाभिन्नात्मनोऽर्थस्य भिन्नो गुणो भेदकः पटुर्द्भवान् पटुरासीत् पटुतर एषमोऽन्य एनाभिसंवृत्तः, पटुत्वातिशयो गुणः सामान्यपाटवाद् गुणादन्यः

स वस्तुनो भेदं कल्पयति, भिन्नप्रयोजनार्थिना तथाऽऽश्रितत्वात्, अनेकात्मकं चैकत्वमात्मादेः, यतोऽनेकं शुद्धाशुद्धं द्रव्यार्थमाश्रित्य पर्यायनयं चैकात्मनो वृत्तिः, तथात्मकोऽसौ तद्भावभावित्वात्, घटमृदात्मकत्ववत् पुरुषपाण्याद्यात्मकत्ववद्वा, अतस्ते तस्यारम्भकत्वाद्भागाः, पुरुषस्येव पाण्यादयो वस्त्वंशमनुभवन्ति, क्रमेण वृत्ताः क्रमयौगपद्याभ्यां वा, चतुर्थे तावत् समुच्चयात्मके न क्रमेण वृत्ताः, पञ्चमषष्ठयोरपचितक्रमयुगपद्वृत्ताः सप्तमे प्रचितक्रमयौगपद्याभ्यां वृत्ताः सँश्चासँश्चावक्तव्यश्चेत्यनेकबुद्धिबुद्धित्वात्, अनेकबुद्धिर्हि बुद्धिर्भवति द्रव्यपर्यायेषु सत्सु त्र्यात्मिका यतोऽनेकां सद्रूपामसद्रूपामवक्तव्यरूपां च बुद्धिं भिन्नामिव क्रमवतीमिवाश्रित्याभिन्नैकाऽक्रमा वस्तुरूपा वाक्यार्थबुद्धिर्भवति, तस्माद्भेदक्रमप्रतिभासविज्ञानहेतुत्वाद्भागास्ते भवन्त्यत्राविभक्तस्यैकस्यापि वस्तुनः, एवञ्चानेकस्वभावेऽर्थे सति वक्तुरिच्छावशात् कदाचित्केनचिद्रूपेण वक्तुमिष्यते, विवक्षायत्ता च वचसः सकलादेशता विकलादेशता च द्रष्टव्या, द्रव्यार्थजात्यभेदात् तु सर्वद्रव्यार्थभेदानेवैकं द्रव्यार्थं मन्यते, यदा पर्यायजात्यभेदाच्चैकं पर्यायार्थं सर्वपर्यायभेदान्प्रतिपद्यते तदा स्वविवक्षितस्वजातिभेदत्वात्सकलं वस्त्वेकद्रव्यार्थाभिन्नमेकं पर्यायार्थाभेदोपचरितं तद्विशेषैकाभेदोपचरितं वा तन्मात्रमेकमद्वितीयांशं ब्रुवन् सकलादेशः—स्यान्नित्य इत्यादिस्त्रिविधोऽपि नित्यत्वानित्यत्वयुगपद्भावैकत्वरूपैकार्थाभिधायी, यदा तु द्रव्यपर्यायसामा-

न्याभ्यां तद्विशेषाभ्यां वा तद्यौगपद्येन वा वस्तुन एकत्वं तदतदात्मकं समुच्चयाश्रयं चतुर्थविकल्पे स्वांशयुगपद्वृत्तं क्रमवृत्तं च पञ्चमषष्ठसप्तमेषूच्यते तथा विवक्षावशात् तदा तु तथा प्रतिपादयन् विकलादेशः, ते हि द्रव्यपर्यायास्तस्य देशाः तदादेशेनादेश एको ह्यनेकदेश आत्माऽभिधीयते, तत्र द्रव्यार्थ-सामान्येन तावत् वस्तुत्वेन सन्नात्मा, पर्यार्थसामान्येनावस्तु-त्वेनासन्निति, विशेषस्त्वात्मनि स्वद्रव्यत्वात्मत्वचेतनत्वद्रष्टृत्व-ज्ञातृत्वमनुष्यत्वादिरनेको द्रव्यार्थभेदः तथा श्रुतप्रतियोगिनः पर्याया असत्त्वाद्रव्यत्वानात्मत्वाचेतनत्वादयः, तद्द्रव्यक्षेत्रकाल भावसम्बन्धजनिताश्च द्रव्यपर्यायवृत्तिभेदाः, तत्र द्रव्यार्था-देशात्स्वद्रव्यतया द्रव्यत्वं, पृथिव्यादित्वेनाद्रव्यत्वं तद्विशेषैश्च घटादिभिः, क्षेत्रतोऽसङ्ख्याताकाशदेशव्यापितया, न सर्व-व्यापितया, कालतः स्वजात्यनुच्छेदादभिन्नकालता, पर्याया-देशाद्घटादिविज्ञानदर्शनभेदाः क्रोधाद्युत्कर्षापकर्षभेदाश्च, तथाऽ-नन्तकालवृत्तस्ववर्तनाभेदात्कालभेदः, भावतोऽज्ञत्वं क्रोधादि-मत्त्वं च एवं बहवो द्रव्यार्थपर्यायार्थयोर्वृत्तिभेदाः सर्वेऽपि तस्यांशाः तैर्द्रव्यपर्यायरूपैर्वक्तुमिष्यमाणो नानारूप आत्मो-च्यते, भावना तु–स्यादस्ति नास्ति च, द्रव्यार्थभेदेन चैतन्य-सामान्येनास्ति, चैतन्यविशेषविवक्षायां वाऽस्त्येकोपयोगत्वात्, पर्यायस्तु अचैतन्येन नास्ति, घटोपयोगकाले वा पटाद्युप-योगेनासन्, चैतन्येन तद्विशेषेण वा वर्त्तमान एव तदभावेन तद्विशेषाभावेन वर्तते इत्युभयाधीनस्तस्यात्मा, अन्यथाऽऽ-

त्माभाव एव स्यात् । एवं सर्वसिद्धान्तेषु पदार्थाः परस्पर-विरुद्धार्थत्वात् तदतद्रूपसमुच्चयात्मकाश्चतुर्थविकल्पोदाहरणीयाः। पञ्चमविकल्पस्तु—स्यादस्ति चावक्तव्यश्चात्मेति, तत्रानेकद्रव्य-पर्यायात्मकस्य सतः कञ्चिद्द्रव्यार्थविशेषमाश्रित्यास्तीत्यात्मनो व्यपदेशः, तस्यैवान्याऽऽत्मद्रव्यसामान्यं तद्विशेषं द्वयं वाऽङ्गीकृत्य युगपद्विवक्षायामवक्तव्यता, स्फुटतरमेतद्विभाव्यते --स्यादस्त्यात्मा द्रव्यत्वेन द्रव्यविशेषेण वा जीवत्वेन मनुष्य-त्वादिना वा, द्रव्यपर्यायसामान्यमुरीकृत्य वस्तुत्वावस्तुत्व-सत्त्वासत्त्वादिना विशेषेण वा मनुष्यत्वामनुष्यत्वादिना युगपदभेदविवक्षायामवाच्यः, यतः सर्वेऽपि तस्यैकस्यात्म-नस्तदैव विकल्पाः सम्भवन्तीति । षष्ठविकल्पोऽपि त्रिभिरात्म-भिर्व्यंशः—स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्चात्मेति, नान्तरेणात्मभेदं वस्तुगतं नास्तित्वमवक्तव्यत्वरूपानुविद्धं शक्यं कल्पयितुं वस्तुनः, तथापि सद्भावात्, तत्र नास्तित्वं पर्यायाश्रयम्, स च पर्यायो युगपद्वृत्तः क्रमवृत्तो वा, सहावस्थाव्यविरोधा-दात्मनो धर्म एककाल एव, यथा चेतनोपयोगवेद-नाहर्षसम्यक्त्वहास्यरतिपुरुषवेदायुर्गतिजात्यादिसत्त्वद्रव्यात्वा-मूर्तत्वकर्तृत्वभोक्तृत्वान्यत्वानादित्वासङ्ख्यातप्रदेशत्वनित्यत्वा-दिः । क्रमवर्ती तु क्रोधादिदेवत्वादिबालत्वादि ज्ञानित्वादिः स्वस्थानानेकभेदवृत्तः, तत्रैकोऽवस्थितो द्रव्यार्थो जीवनामा नैवास्ति कश्चिच्चेतनाव्यतिरिक्तः क्रोधादिक्रमवृत्तधर्मरूपनै-रन्तर्यमात्रव्यतिरिक्तो वा, अत एव तु धर्मास्तथासन्निविष्टाः

सत्त्वव्यपदेशव्यवहारभाजो भवन्तीति, अतो नास्ति पर्यायार्था-देवंविधो द्रव्यार्थस्य कश्चिदंशः, नास्तीति तेन रूपेणाभावात्, न पुनः सर्वथैव नास्तित्वं, विशिष्टस्याभावस्य विवक्षितत्वात् पर्यायांशः, सर्वार्थज्ञातृत्वात्सर्वव्यापारविनियोगात्सर्ववस्तुत्वेन सन्निति द्रव्यार्थांशः, आभ्यां सह विवक्षायामवाच्य इति द्वितीयोंऽशः। अधुना सप्तमविकल्पश्चतुर्भिरंशैस्त्र्यंशः, कश्चिद्द्रव्यार्थविशेषमाश्रित्यास्तित्वं पर्यायविशेषञ्च कञ्चिदङ्गीकृत्य नास्तित्वं समुच्चितरूपं भवति, द्वयोरपि प्रधान्येन विवक्षितत्वाद्यथा द्रव्यसामान्येन पर्यायसामान्येन च युगपद्-वक्तव्यः स्यादस्ति च स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्चात्मेति। भावना तु द्रव्यार्थात्सति द्रव्यत्वे देहेन्द्रियादिव्यतिरिक्तात्मत्वेन विशेषेण नास्तित्वमतोऽस्ति च नास्ति च स एवात्मा, द्रव्यपर्यायसामान्यसदसत्त्वाभ्यां युगपदवाच्य इत्येवमर्थानुरोधाद्विवक्षावशाच्च सप्तधैव वचनप्रवृत्तिः, नान्यथाऽपि, प्रवृत्तिनिमित्ताभावात्, एष च मार्गो द्रव्यार्थपर्यायार्थाश्रयः तौ च सङ्ग्रहाद्यात्मकौ, सङ्ग्रहादयश्चार्थशब्दनयरूपेण प्रधाविताः तत्र सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रैरर्थनयैर्यौ द्रव्यार्थपर्यायार्थौ तदाश्रयैषा सप्तभङ्गी, तत्रानपेक्षितोपदेशकशब्दव्यापारमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमर्थरूपोत्पादितं मतिज्ञानमर्थनया वक्तृ-परिच्छेदविषयाः, ते त्वर्थपृष्ठेनैवार्थं गमयन्ति। शब्दनयास्तु साम्प्रतिकसमभिरूढैवम्भूतनयाः श्रोतृविषयाः श्रुतज्ञानात्मकाः शब्दरूपरूषितविज्ञानत्वाच्छब्दप्रमाणकाः यच्छब्द आह यथा

च तथैवार्थं इतिशब्दपृष्ठेनैवार्थपरिच्छेदं कुर्वन्ति, अत एव तेष्वभिधानस्वरूपशुद्धिपरा चिन्ता चक्षुर्विमलीकरणाञ्जनवत्। तत्रार्थनयाः सत्त्वासत्त्ववर्त्तमानसत्त्वमात्रैषिणः प्रत्येकात्मकाः संयुक्ताश्च सप्तविधवचननिर्वचनप्रत्यलाः । विविक्तसत्त्वमात्र-परिग्रहात्सत्त्वसङ्ग्रहः, अन्यासत्त्वमेव सत्त्वमिति व्यवहारः, वर्तमानप्रधानत्वाद्वर्त्तमानमेव सत्त्वमृजुसूत्रः, तत्र स्यादस्तीति सङ्ग्रहः १, स्यान्नास्तीति व्यवहारः २, सङ्ग्रहव्यवहारयोगात् स्यादवक्तव्यः ३, सङ्ग्रहव्यवहारविभागसंयोगादेव स्यादस्ति च नास्ति च ४, स्यादस्त्यवक्तव्यश्चेत्यत्र सङ्ग्रहः सङ्ग्रह-व्यवहारौ चाविभक्तौ ५, स्यान्नास्त्यवक्तव्यश्चेत्यत्र व्यवहारः सङ्ग्रहव्यवहारौ चाविभक्तौ ६, स्यादस्ति नास्त्यवक्तश्चेत्यत्र विभक्तौ सङ्ग्रहव्यवहारावविभक्तौ च ७, इत्येवमर्थपर्यायैः सप्तधा वचनव्यवहारः । व्यञ्जनपर्यायाः शब्दनयाः ते त्वभेद-भेदद्वारेण वचनमिच्छन्ति शब्दनयस्तावत् समानलिङ्गानां समानवचनानां च शब्दानामिन्द्रशक्रपुरन्दरादीनां वाच्यं भावा-र्थमेवाभिन्नमभ्युपैति, न जातुचिद् भिन्नलिङ्गं भिन्नवचनं वा शब्दं स्त्रीदारास्तथाऽऽपोजलमिति । समभिरूढस्तु प्रत्यर्थ शब्दनिवेशादिन्द्रशक्रादीनां पर्यायशब्दत्वं न प्रतिजानीते, अत्यन्तभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वाद्भिन्नार्थत्वमेवाभिमन्यते घट-शक्रादिशब्दानामिवेति,। एवंभूतः पुनर्यथासद्भावं वस्तु वचसो गोचरमापृच्छति—इच्छति, चेष्टाविष्ट एवार्थो घटशब्दवाच्य-श्चित्रालेखनोपयोगपरिणतश्च चित्रकारः, चेष्टारहितस्तिष्ठन्

घटो न घटशब्दवाच्यः, तच्छब्दार्थरहितत्वात्, कुटशब्द-वाच्यार्थवत्, नापि भुञ्जानः शयानो वा चित्रकाराभिधानाभिधेयश्चित्रज्ञानोपयोगपरिणतिशून्यत्वाद्गोपालादिवत्। एवमभेदभेदार्थवाचिनोऽनेकैकशब्दवाच्यार्थावलम्बिनश्च शब्दप्रधाना अर्थोपसर्जनाः शब्दनयाः प्रदीपवदर्थस्य प्रतिभासका व्यञ्जन-पर्यायसंज्ञकाः" इति ॥ श्रीमन्तो न्यायविशारदा न्यायाचार्या यशोविजयोपाध्यायाः पुनरित्थं सप्तभङ्गीमीमांसां कुर्वन्ति। तत्र तत्र विचारे सम्मतिगाथाश्च प्रमाणयन्ति तथाहि-जिनवचनरहस्याभिज्ञानां स्याद्वादप्रमाणराजस्यैवोपादेयत्वेन सप्तभङ्गीस्वरूपमेव स्याद्वादवाक्यं शब्दप्रमाणभावमश्नुते यतः शब्दस्थले साकाङ्क्षखण्डवाक्यजन्यसप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यमेव निराकाङ्क्षपरिपूर्णाखण्डवस्तुप्रतीत्यात्मकप्रमाजनकत्वात्प्रमाणं, न तु निरपेक्षमेकान्तवाक्यम्, यदुक्तं सम्मतौ "जे वयणिज्ज-वियप्पा, संजुज्जंतेसु होंति एएसु। सा ससमयपण्णवणा, तित्थयराऽऽसायणा अण्णा ॥ १-५३ ॥ इति" ये वचनीय-विकल्पाः संयुज्यमानयोर्भवन्त्यनयोः। सा स्वसमयप्रज्ञापना तीर्थकराशातना अन्या"। इति संस्कृतम्, अस्या अयमर्थः— ये वचनीयस्याभिधेयस्य विकल्पाः प्रतिपादकशब्दविशेषाः, संयुज्यमानयोरन्योन्यसंबद्धयोर्भवन्ति, अनयोर्द्रव्यास्तिकपर्याया-स्तिकनयवाक्ययोः, ते च कथञ्चिन्नित्य आत्मा कथञ्चिदनित्य इत्येवमादयः सा एषा, स्वसमयस्य तत्त्वार्थस्य, प्रज्ञापना निदर्शना, अन्या निरपेक्षनयप्ररूपणा, तीर्थकरस्य तीर्थप्रणेतुः श्रीभगवतो

जिनस्य, आशातना अधिक्षेपः, तत्प्ररूपणोत्तीर्णत्वात्, उत्सर्गतः स्याद्वाददेशनाया एव तीर्थकरेण विधानात्, "विभज्जवायं च वियागरिज्जा" इत्याद्यागमवचनप्रामाण्यात्। विशिष्टपुरुष-मधिकृत्यापवादतस्त्वेकनयदेशनाऽप्यदुष्टा, तदुक्तं सम्मतौ—"पुरिसज्जायं तु पडुच्च जाणओ पन्नवेज्ज अन्नयरं। परि-कम्मणानिमित्तं, ठाएहि सो विसेसंपि" ॥ १--५४ ॥ पुरुष-जात तु प्रतीत्य ज्ञकः प्रज्ञापयेदन्यतरत्। परिकर्मणानिमित्तं, स्थापयिष्यत्यसौ विशेषमपि" इति संस्कृतम्। अस्या अर्थः—पुरुषजातं प्रतिपन्नद्रव्यपर्यायान्यतरस्वरूपं श्रोतारं, प्रतीत्य आश्रित्य, ज्ञकः स्याद्वादज्ञः, प्रज्ञापयेदन्यतरदज्ञातम्, परिकर्म-निमित्तं अज्ञातांशसंस्कारपाटनार्थम्, ततः परिकर्मितमतये स्थापयत्यसौ स्याद्वादज्ञो विशेषमपि परस्पराविनिर्भागरूपं ततश्चैकनयदेशनाऽपि भावतः स्याद्वाददेशनैवेत्यतः शब्द-प्रमाणतया स्याद्वादात्मकसप्तभङ्गी अवश्यं प्रदर्शनीयेति सेत्थं प्रदर्श्यते—स्यादस्त्येव घटः १, स्यान्नास्त्येव घटः २, स्यादवक्तव्य एव घटः ३, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव घटः ४, स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्य एव घटः ५, स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घटः ६, स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्य एव घट ७, श्चेति, तत्र गुणीभूतासत्त्वप्रधानीभूतसत्त्वविवक्षायां प्रथमो भङ्गः १, गुणभूतसत्त्वप्रधानीभूतासत्त्वविवक्षायां द्वितीयो भङ्गः, २, युगपत्सत्त्वासत्त्वोभयविवक्षायां तृतीयो भङ्गः ३, द्वयो-र्धर्मयोः प्राधान्येन गुणभावेन वा प्रतिपादने कस्यापि वचसः

सामर्थ्याभावात्, तथाहि—तत्प्रतिपादकं समासवचनं न ताव-त्सम्भवति, यतः उभयप्रधाने प्रकृते अन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिर्न स्थितिमासादयति, अव्ययीभावस्य च नैतादृशेऽर्थे प्रवृत्तिर्घटते, द्वन्द्वस्तूभयपदार्थप्रधानोऽपि द्रव्यवृत्तिर्नात्र युज्यते, गुणवृत्तिरपि द्वन्द्वो द्रव्याश्रितगुणप्रतिपादक एव, तिष्ठत्यादि-क्रियाया द्रव्याश्रिताया द्रव्यमन्तरेण गुणाश्रितत्वाभावात्, तथा च प्रकृते प्रधानभूतयोर्गुणयोर्न ततः प्रतिपत्तिसम्भवः, उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषोऽपि प्रधानभूतयोर्गुणयोः प्रतिपादको न भवत्येव, द्विगुरपि सङ्ख्यावाचिपूर्वपदो नात्र क्रमते, गुणाधारद्रव्यविषयः कर्मधारयोऽपि नात्रावकाशं लभते, न चैतेभ्यो व्यतिरिक्तः समासः कोऽपि विद्यते यः प्रधानी-भूतास्तित्वनास्तित्वगुणद्वयप्रतिपादको भवेत्। ननु साक्षात्क्रिया-न्वयो द्रव्य एव न गुणे इति तादृशक्रियान्वयित्वरूपं प्राधान्यं प्रथमभङ्गे नास्त्येवास्तित्वरूपगुणे इति तादृशप्राधान्याश्रयास्ति-त्वप्रतिपादको न प्रथमभङ्गो नापि द्वितीयभङ्गस्तादृशप्राधान्या-श्रयनास्तित्वप्रतिपादको, द्रव्यान्वयव्यवधानेन क्रियान्वयित्वरूप-प्राधान्यं यदि विवक्षितं तदा प्रथमभङ्गेऽवभासमानं द्रव्यं वस्तुगत्याऽनन्तधर्मात्मकत्वान्नास्तित्वाकलितमपीति द्रव्या-न्वयव्यवधानेन क्रियान्वयित्वरूपप्राधान्यं नास्तित्वेऽपीति प्रथमभङ्गेऽपि द्वितीयभङ्गलक्षणमापद्येत, एवं द्वितीयभङ्गेऽप्यु-पसर्जनीभूतस्यास्तित्वस्य द्रव्यान्वयव्यवधानेन क्रियान्व-यित्वलक्षणं प्राधान्यं समस्तीति प्रथमभङ्गलक्षणं तत्राप्यति-

प्रसक्तं स्यात्, यदि च नोक्तक्रियान्वयित्वलक्षणप्राधान्यं विवक्षितं किन्तूत्कटतात्पर्यविषयत्वरूपमेव तद्विवक्षितं तच्च प्रथमभङ्गेऽस्तित्वस्यैव द्वितीयभङ्गे नास्तित्वस्यैवेति नातिप्रसङ्गः, तर्हि द्वन्द्वकर्मधारययोरपि तात्पर्यविषयत्वलक्षणं प्राधान्यं निरुक्तगुणद्वयस्य समस्तीति प्राधान्येन युगपद्गुणद्वयवाचकत्वं द्वन्द्वकर्मधारययोस्स्यादेवेति चेत्, मैवं, द्वन्द्वे द्विवचनेन भेदोपस्थितौ निरवयवप्रतीतिर्न सम्भवति कर्मधारये च विशेष्यतयाऽभ्यर्हितत्वेन द्रव्यं एवोत्कटतात्पर्यविषयमित्याशयादिति न समासवाक्यं प्रधानीभूतयुगपदस्तित्वनास्तित्वगुणद्वयप्रतिपादकम्। व्यासवाक्यमपि वृत्त्यसम्भिन्नार्थमेवेति समासात्मकवृत्तेस्तदप्रतिपादकत्वे व्यासवाक्यस्यापि तदप्रतिपादकत्वमेव, यन्न पदान्तरार्थान्वितार्थकमेतादृशं, केवलं पदं वाक्यं वा वृत्तिसम्भिन्नार्थं नहि लोकसिद्धं, यच्च लोकसिद्धं पदं वाक्यं वा तत्परस्परापेक्षद्रव्यादिविषयत्वान्न युगपत्प्रधानीभूतास्तित्वनास्तित्वगुणद्वयप्रतिपादकम्। शतृशानचयोः सङ्केतितस्य सत्पदस्य वाच्यत्ववत् कस्यचित्पदस्य तादृशगुणद्वयसङ्केतितस्य वाच्यत्वं गुणद्वये सम्भावितमपि विकल्पप्रभवशब्दवाच्यत्वमेव स्यात्, विकल्पद्वयं च युगपन्न भवतीति तत्प्रभवशब्दवाच्यतापि युगपत्प्रधानीभूतगुणद्वये न सम्भवतीति। यद्यपि समूहालम्बनात्मकं एक एव विकल्पो युगपद्गुणद्वयविषयकः, तथापि तत्प्रभवं पदं बुद्धिविशेषविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितनानाशक्यतावच्छेदककत्वेन पर-

मार्थतो नानार्थस्थानीयमतस्ततः प्रकरणादिनियन्त्रितप्रतिनियतैकार्थबोधस्यैवैकदा सम्भवः। यदपि वैकल्पिकपदस्य मिलितोभयबोधकत्वस्वाभाव्याद्युगपदुभयवाचकत्वमिति तत्पदवाच्यत्वं तथाभूतगुणद्वयस्य सम्भाव्यत इति तदपि न रमणीयं, सदसदुभयसाङ्केतिकपदस्य पुष्पदन्तादिवद् द्वित्वविश्रान्तत्वेनैकत्वावच्छिन्ने द्वित्वावच्छिन्नान्वयस्य निराकाङ्क्षत्वादेवावाच्यत्वसिद्धेः, अत एव वस्त्वादिपदानि जैनैः सदसदुभयात्मकैकजात्यन्तरे सङ्केत्यन्ते, न तु सदसतोरित्यवधेयम्। वस्तुतः एकपदजनितप्रातिस्विकधर्मद्वयावच्छिन्नविशेष्यताकशाब्दबोधाविषयत्वेनावक्तव्यत्वं प्रकृतेऽव्याहतं, अत एव कर्मधारयाख्यं सामासिकमेकपदमादायापि न दोषः, तज्जन्यबोधे उभयनिरूपितैकविशेष्यताऽभ्युपगमेन यथोक्तावाच्यत्वाक्षतेरिति दिक्। ननु विधिस्वरूपेणोपस्थिते न प्रतिषेधान्वयस्सम्भवतीति घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूतं यद् घटत्वं विधिरूपं तदात्मनाऽऽलिङ्गिते घटात्मके धर्मिणि पटाद्यर्थान्तरप्रतिषेधोऽसम्बद्ध इति घटः पटत्वेन नास्तीति द्वितीयभङ्गो न सम्भवतीति चेत्, न, यतः अघटस्य पटादेर्भिन्नत्वादेव घटे घटत्वं भवति, अन्यथा घटवत्पटेऽपि घटशब्दप्रवृत्तौ तन्निमित्तं घटत्वं घटमात्रगतं न भवेदतो घटे घटत्वं प्रतिपादयन् घटशब्दस्तदैव सङ्गतिमङ्गति यदि घटभिन्नपटादेस्तत्र निषेधप्रतिपादकेन घटः पटत्वेन नास्तीत्येवम्भूतवचनेनैकवाक्यतापन्नो भवेदिति विधिरूपे घटे सम्बद्ध एव पटाद्यर्थ-

प्रतिषेध इति द्वितीयभङ्गस्तथाभूतार्थप्रतिपादकोऽवश्यमेव प्रयोक्तव्य इति । ननु स्वद्रव्यादिना सन्नेव घट इति प्रथमभङ्गप्रतिपाद्येन स्वद्रव्यादिना सदात्मकेन घटेन समानसंवित्संवेद्यत्वात्परद्रव्यादिनाऽसद्भूतो घट इति सोऽपि प्रथमभङ्गत एवावभासत इति न तदवबोधनाय द्वितीयभङ्गस्सफलतां भजत इति चेत्, न, यद्धि समानसंवित्संवेद्यं तदनियन्त्रितविषयके मानसबोधे भासत इति तत्रैव *समानसंवित्संवेद्यत्वं तन्त्रम्*, न तु शाब्दबोधे, तत्र तु यस्य शब्दादुपस्थितिस्तस्यैव प्रकारमुद्रया भानः, "शाब्दी ह्याकाङ्क्षा शब्देनैव पूर्यते" इति, एवञ्च परद्रव्यादिना घटादेरसत्त्वं न प्रथमभङ्गेन बोधयितुं शक्यं, तत्र तद्बोधकपदाभावादतस्तद्बोधनार्थं द्वितीयभङ्ग आवश्यकः ।

अत्र स्यादवक्तव्य इति तृतीयभङ्गस्य षोडशभिः प्रकारैस्समर्थनमुपदर्श्यते तत्र प्रथमद्वितीयभङ्गौ सामान्येन सत्त्वप्राधान्यविवक्षया सामान्येनासत्त्वप्राधान्यविवक्षया सम्भवतः, युगपत्तदुभयप्राधान्यविवक्षया तथा विधायकपदाभावात् स्यादवक्तव्य इति तृतीयभङ्गो व्यावर्णितः । प्रथमभङ्गप्रयोगस्यावश्यकत्वञ्च दर्शितम्, सर्वं सर्वात्मकं कार्यकारणयोस्तादात्म्येन सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थालक्षणमूलप्रकृतितत्त्वस्य पारिणामिनः साक्षात्परम्परया वा परिणामरूपमेव महदहङ्कारादितत्त्वमिति सर्वस्य विकारस्य कार्यभूतस्य कारणीभूतप्रकृत्यात्मकत्वं, एवञ्च "तदभिन्नाभिन्नस्य तदभिन्नत्वमिति"

नियमात्पटाद्यभिन्नप्रकृत्यभिन्नस्य घटादेः पटाद्यभिन्नत्वमिति घटस्यापि पटादिरूपेण सत्त्वमिति साङ्ख्यमतव्यवच्छेदार्थ-मर्थान्तरप्रतिषेधविधायको द्वितीयभङ्गोऽवश्यमेव प्रयोक्तव्यः, भङ्गद्वयप्रसिद्धौ तद्विषयविधिनिषेधोभययुगपत्प्राधान्यविवक्षया तृतीयभङ्गोऽप्यात्मानमासादयति इत्येवमेकः प्रकारः । १ ।

तथा नामघटः स्थापनाघटो द्रव्यघटो भावघट इत्येवं घट-श्चतुर्विधो भवति तत्र नामघटो यदा घटतया विधातुमिच्छि-तस्तदा नामघटत्वेन घटोऽस्ति, तस्य घटस्य नामघटत्वमेव न तु स्थापनाघटत्वादिकं तस्याविधित्सितत्वादतोऽविधित्सितेन स्थापनाघटत्वादिना घटो नास्तीत्येवं प्रथमद्वितीयभङ्गौ, तद्वि-षयाभ्यां नामघटत्वादिस्थापनाघटत्वादिभ्यां क्रमेणास्तित्वना-स्तित्वाभ्यां युगपत्प्रधानतया विवक्षिताभ्यामवाच्यो घटो भवति, युगपत्प्रधानीभूतविधित्सितरूपास्तित्वाविधित्सितरूपावच्छेद्य-नास्तित्वोभयरूपेण घटस्याभिधेयपरिणामो नास्तीत्यतस्तथाऽ-वक्तव्य एव सः । अयञ्च प्रकार इत्थमुपपाद्यः,—यथा नामादिषु मध्ये विधित्सितरूपेण घटः तथाऽविधित्सितरूपेणापि घटः, एवं सति नामघटः स्थापनाघटादिरूपोऽपि प्रसज्येत इत्ययं घटो नामघटोऽयं पुनः स्थापनाघट इत्येवं प्रतिनियतनामादि-भेदव्यवहार एवोत्सीदेत्, एवञ्च स्थापनाघटादितो व्यावृत्तं नामघटत्वादिकं विधित्सितं यदुपगतं तदेव न भवेत्, एवं स्थापनाघटत्वादिकमपीति सर्वाभाव एव प्रसज्येतेत्यतो विधि-

त्सितरूपेण यो घटः स नाऽविधित्सितरूपेण सत्तामनुभवतीति प्रथमभङ्गव्यवस्थितिः, यथा चाविधित्सितरूपेण घटोऽघटः तथा विधित्सितरूपेणाप्यघटः स्यात् तदा सर्वथाऽप्यघटत्वे घटसत्तानिबन्धनव्यवहारोच्छेद एव स्यात्, एवं घटात्मकप्रतियोगिनिरूप्यस्याघटत्वस्यापि निरूपकीभूतघटाभावेऽभावः प्राप्नोतीत्यतोऽविधित्सितरूपेणैव घटस्याघटत्वमिति द्वितीयभङ्गोऽप्युपपद्यते, एवं युगपत्प्रधानतयोभयविवक्षायां यथाऽवाच्यस्तथैकपक्षस्यैवाभ्युपगमे तदितराभावे तस्याप्यभाव इति घटस्य सत्त्वासत्त्वयोरुभयस्याप्यभावे विधिनिषेधव्यतिरिक्तस्य घटस्य स्वरूपत एवाभावादवाच्यमिति तत्प्रतिपादकस्तृतीयभङ्ग उपपत्तिपद्धतिमेति । ननु विधित्सितरूपेण सत्त्वकालेऽप्यविधित्सितरूपं तत्र समस्त्येवेति, एकरूपेण विधित्सा नान्यरूपावच्छिन्नसत्तां विरुणद्धि, रूपवत्त्वेन घटस्य विधित्सितत्वेऽपि रसवत्त्वेन तत्सत्त्वस्यापि भावादिति चेत्, न, गुणात्मकसत्त्वस्य गुणरूपत्वेऽपि व्यावहारिकस्य सत्त्वस्य तदभिधेयपरिणामपर्यवसितत्वेन विधित्सानुसारित्वात्, एवञ्च यद्यपि घटस्य रूपवत्त्वे रूपात्मकसत्त्वं तदानीमेव रसवत्त्वस्य भावेन रसात्मकसत्त्वमपि, तथापि रूपवत्त्वेन घटविधित्सायां रूपवत्त्वेनैव घटस्य सत्त्वं व्यवह्रियते न त्वविधित्सितेन रसवत्त्वेनेति रूपवत्त्वेन विधित्सायां रूपवत्त्वेनैव घटस्याभिधेयपरिणामो न तु रसवत्त्वेनेति, एवमग्रेऽप्याक्षेपपरिहारौ द्रष्टव्याविति द्वितीयः प्रकारः ॥ २ ॥

प्रतिनियतनामादिरूपेण स्वीकृतेऽपि घटे यत्संस्थानादिस्तत्स्वरूपेण घटः इति प्रथमभङ्गः, विवक्षितसंस्थानादिव्यतिरिक्तरूपेण चाघटः द्वितीयभङ्गः, यथा नामादिषु मध्ये नामघटत्वेन स्वीकृतस्य घटस्य संस्थानावयवसन्निवेशः स च नामघटो यदि "घट" इत्येतन्नाम तदा घकारोत्तराकारोत्तरटकारोत्तरात्वरूपानुपूर्वीविशेषः, यदि च यस्य कस्यचिद्गोपालदारकादेरयं घटशब्दवाच्य इत्येवं रूपेण घट इति नाम क्रियते स गोपालदारकादिः नामघटस्तदा तस्य गोपालकादेर्यश्शरीरावयवसन्निवेश स संस्थानं तद्रूपेण घट इति प्रथमभङ्गः, निरुक्तसंस्थानव्यतिरिक्तरूपेणाघट इति द्वितीयभङ्गः, एवं स्थापनाघटादिष्वपि प्रथमद्वितीयभङ्गौ भावनीयौ, ताभ्यां युगपत्प्रधानतया विवक्षिताभ्यामभिधातुमशक्यत्वादवाच्य इति तृतीयभङ्गः, अत्र यथा विवक्षितेन संस्थानादिना घटः तथा यदि विवक्षितसंस्थानादिव्यतिरिक्तरूपेणापि घटः तर्हि नामघटस्य स्थापनाघटादित्वं स्थापनाघटस्य नामघटादित्वमित्येवं नामादिषु मध्ये स्वीकृतनामादिप्रतिनियतरूपस्यैकस्यापि सर्वघटात्मकत्वप्रसङ्गः, अतो विवक्षितसंस्थानादिरूपेणैव घटो न तदितररूपेणेति प्रथमभङ्गव्यवस्थितिः, एवं यथा विवक्षितसंस्थानादिरूपव्यतिरिक्तरूपेणाघटः, तथा यदि विवक्षितसंस्थानादिरूपेणाप्यघटः, तर्हि अघटे पटादौ यथा न घटार्थिनः प्रवृत्तिः तथा सर्वथाऽघटतामुपगतेऽपि घटे घटार्थिनः प्रवृत्तिर्न स्यात्, अतो विवक्षितसंस्थानादि-

व्यतिरिक्तरूपेणैवाऽघट इति द्वितीयभङ्गव्यवस्थितिः, सर्वथा घटात्मकं सर्वथाऽघटात्मकञ्च घटस्वरूपं न प्रमाणगोचरचरमित्येकान्ताभ्युपगमे तथाऽसत्त्वादेवावाच्य इति तृतीयः प्रकारः ॥ ३ ॥

यद्वा स्वीकृतप्रतिनियतसंस्थानादिरूपे घटे विवक्षितत्वान्मध्यावस्था निजं रूपं, कुशूलकपालादिलक्षणे पूर्वोत्तरावस्थे अर्थान्तररूपमिति विवक्षितमध्यावस्थात्मकनिजरूपेण घटोस्ति, पूर्वोत्तरावस्थात्मककार्यान्तररूपेण घटो नास्ति, इत्येवं प्रथमद्वितीयभङ्गौ, युगपत्प्रधानतया विवक्षिताभ्यां निरुक्तनिजरूपार्थान्तररूपाभ्यामभिधातुमसामर्थ्यात्स्यादवाच्यो घट इति तृतीयो भङ्गः, तर्कप्रवृत्तिश्चेत्थम्—यथा घटो विवक्षितमध्यावस्थारूपेणास्ति तथा यदि पूर्वोत्तरावस्थाभ्यामपि स्यात्, तदाऽनाद्यनन्तत्वं तस्य स्यादतो मध्यावस्थारूपेणैव घटोऽस्तीति प्रथमभङ्गव्यवस्थितिः, एवं यथा पूर्वोत्तरावस्थारूपेण घटोऽघटस्तथा यदि मध्यावस्थारूपेणाप्यघटः स्यात्सर्वदा तर्हि घटाभावः प्रसज्येत, एवञ्च विषयाभावाद् घटार्थिनस्तत्र प्रवृत्तिरनुपपन्ना स्यादतः पूर्वोत्तरावस्थारूपेणैव घटोऽघट इत्येवं स्याद्घटो नास्तीति द्वितीयभङ्गव्यवस्थितिः, एवं घटो न सर्वथा घटो न वा सर्वथाऽघट इत्येवमेकान्तरूपस्य तस्यासत्त्वादेवावक्तव्यत्वमित्यवाच्यो घट इति तृतीयभङ्गो व्यवतिष्ठते इति तुरीयः प्रकारः ॥ ४ ॥

मध्यावस्थाऽपि घटस्य बहुकालव्यापीनीति, तत्र वर्त्तमानक्षणमात्रं तस्य निजं रूपं अतीतानागतक्षणौ चार्थान्तराविति वर्त्तमानक्षणरूपतयाऽस्त्येव घट इति प्रथमो भङ्गोऽतीतानागतक्षणरूपाभ्यामविवक्षिततयाऽर्थान्तराभ्यां नास्त्येव घट इति द्वितीयो भङ्गः, युगपत्प्रधानतया विवक्षिताभ्यां ताभ्यां वक्तुमशक्यत्वादवाच्यो घट इति तृतीयोभङ्गः, इयमत्र तर्कप्रवृत्तिः–यदि वर्त्तमानक्षणवत्पूर्वोत्तरक्षणयोरपि घटः स्यात्तर्हि वर्त्तमानक्षणमात्रमेवासौ स्यात्, पूर्वोत्तरयोर्वर्त्तमानताप्राप्तेः न च वर्त्तमानक्षणमात्रमपि, पूर्वोत्तरक्षणापेक्षस्य वर्त्तमानक्षणस्य पूर्वोत्तरक्षणयोरभावेऽभावादिति वर्त्तमानक्षणरूपेणैवासावस्तीति प्रथमभङ्ग उपपद्यते, यथा चातीतानागतक्षणरूपाभ्यां घटोऽघटस्तथा यदि वर्त्तमानक्षणरूपतयाऽप्यघटः तर्हि कालत्रयेऽपि तस्याभावः प्रसज्येत इति पूर्वोत्तरक्षणरूपाभ्यामेवासावघट इति द्वितीयभङ्गः सङ्गच्छते, एकान्तेन वर्त्तमानक्षणमात्रवर्त्तिनः एकान्तेनातीतानागतक्षणावर्तिनो वा घटस्याभावादेव तथाऽवक्तव्यो घट इति तृतीयभङ्ग सङ्गतिमङ्गति, इति पञ्चमः प्रकारः ॥ ५ ॥

अथवा क्षणपरिणतिरूपे यदा चक्षुरिन्द्रियजन्यविषयत्वं तदा नान्येन्द्रियजन्यविषयत्वम्, अन्यदा चान्येन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयोऽन्य एव क्षणपरिणतिरूपो घटो न तु चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयस्सः एवञ्च क्षणप-

रिणतिरूपो यो घटः स चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयत्वेनास्ति, इन्द्रियान्तरजन्यप्रत्यक्षविषयत्वपर्यवसन्नचक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयत्वेन स नास्तीत्येवं प्रथमद्वितीयभङ्गौ ताभ्यां युगपत्प्रधानतयाऽऽदिष्टाभ्यां वक्तुमशक्यत्वादवक्तव्य स इति तृतीयो भङ्गः। इयमत्रोपपत्तिः—यदि चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेन यथा क्षणपरिणतिरूपो घटस्सन् तथा चक्षुर्व्यतिरिक्तेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषयत्वेनापि सन्, एतच्च तदोपपद्येत यदि यत्क्षणरूपे यदा चक्षुरिन्द्रियजन्यज्ञानं तदैवेन्द्रियान्तरजन्यज्ञानं, तर्हि ज्ञानद्वयस्य युगपदनङ्गीकारादिन्द्रियान्तरजन्यत्वेनाभिमतं ज्ञानं चक्षुरिन्द्रियजन्यं स्यात्, एवं सतीन्द्रियान्तरमन्तरेणापि चक्षुरिन्द्रियेण तज्ज्ञानस्य संभवे इन्द्रियान्तरकल्पनाया वैफल्यमेवानुषज्येत, यदि च विनिगमनाविरहाच्चक्षुरिन्द्रियजन्यमपीन्द्रियान्तरजन्यं, तर्हि चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविशेषकरणत्वं यच्चक्षुरिन्द्रियस्यासाधारणधर्मत्वाल्लक्षणं तदिन्द्रियान्तरेऽप्यस्तीन्द्रियान्तरमपि चक्षुरिन्द्रियं स्यात्, एवं रसनेन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविशेषकरणत्वं यद्रसनेन्द्रियस्यासाधारणधर्मत्वाल्लक्षणं तच्चक्षुरादीन्द्रियान्तरेऽप्यस्तीति चक्षुरादीन्द्रियमपि रसनेन्द्रियमित्येवमिन्द्रियसङ्करप्रसङ्ग इति क्षणपरिणतिरूपो घटो यश्चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयस्स चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेनैव सदिति प्रथमभङ्गोपपत्तिः, एवं स एव क्षणपरिणतिरूपो यथेन्द्रियान्तरजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेनासन् तथा चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेना-

प्यसन् स्यात्, एतच्च तदा घटेत यदि चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविशेषविषयत्वं तस्य न भवेत्, तथा च यन्न चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयस्तन्न रूपात्मकमिति नियमादरूपत्वं तस्य प्रसज्येतेत्यत इन्द्रियान्तरजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेनैव सोऽसन्निति द्वितीयभङ्गस्योपपत्तिः, उक्तदिशा सर्वात्मकत्वप्रसङ्गभयादेकान्तेन न सत्किमपीति न चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेन सत्त्वमिन्द्रियान्तरजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेनासत्त्वविनिर्मुक्तं समस्ति तथेन्द्रियान्तरजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेनासत्त्वमपि चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रतिपत्तिविषयत्वेन सत्त्वविनिर्मुक्तं न समस्तीत्येकान्तवादे तदितरस्याभावे तस्याप्यभावाद्वचनविषयाभावे वचनप्रवृत्तिरेव न सम्भवतीत्यवाच्य एव तथा स इति तृतीयभङ्गोपपत्तिरिति षष्ठः प्रकारः ॥६॥

अथवा लोचनप्रतिपत्तिविषयस्स एव घटो यदा घटशब्दवाच्यत्वेन विवक्षितस्तदा घटशब्दवाच्यत्वं तस्य निजं रूपमिति घटशब्दवाच्यत्वेनास्त्येव स घट इति प्रथमो भङ्गः, कूटशब्दवाच्यत्वं तत्र सदपि न विवक्षितमित्यविवक्षितत्वादेव न तत्तद्रूपं किन्त्वर्थान्तरभूतं तदिति कूटशब्दवाच्यत्वेनासन्नेव स इति द्वितीयभङ्गः, युगपत्ताभ्यां निरुक्तसत्त्वासत्त्वाभ्यामभिधातुमिष्टस्स न केनापि वचनेन वक्तुं शक्य इति अवक्तव्य एव स इति तृतीयभङ्गः, अत्रोपपत्तिरेवं भाव्या- यथा घटशब्दवाच्यत्वेन स घटः तथा यदि कूट-

शब्दवाच्यत्वेनापि स घटः, एतच्च तदोपपद्येत यद्येकशब्द-
वाच्यस्तदन्यशब्दवाच्योऽपि भवेत्, तथा चैकः शब्दः सर्वस्य
वाचकस्स्याद् घटो वाऽशेषपटादिशब्दवाच्यः प्रसज्येतेत्यतो
घटशब्दवाच्यत्वेनैव घट इति प्रथमभङ्गोपपत्तिः, अत्रेद-
मप्यवधार्यं यदुत अर्थे वाच्यत्वस्य शब्दे वाचकत्वस्य च
समानसंवित्संवेद्यत्वमिति घटशब्दवाच्यत्ववत् सर्वशब्दवाच्य-
त्वे घटशब्दवाच्यत्वप्रतिपत्तौ सर्वशब्दवाच्यत्वे भासमाने सति
समस्ततद्वाचकशब्दप्रतिपत्तिरपि स्यादिति, यथा च कूटशब्द-
वाच्यत्वेन घटोऽसन् तथा घटशब्दवाच्यत्वेनाप्यसन् एतच्च
तदा स्याद्यदि घटशब्दवाच्यस्स न स्यात्, एवञ्च तत्प्रति-
पत्तये घटशब्दोच्चारणवैयर्थ्यं प्रसज्येतेत्यतः कूटशब्दवाच्यत्वे-
नैवासन्स इति द्वितीयभङ्गस्योपपन्नता, घटो घटशब्दवाच्य-
त्वेन सन्नेवेति कूटशब्दवाच्यत्वेनासन्नेवेत्येकान्ताभ्युपगमे
तथाभूतस्य घटस्यैवासत्त्वादसति तस्मिन्कस्यचिदपि शब्दस्य
सङ्केतकरणासम्भवान्न तद्वाचकः कश्चिच्छब्द इत्यवाच्य एव
स इति तृतीयभङ्गः सङ्गतिमङ्गतीति सप्तमः प्रकारः ॥७॥

यद्वा घटशब्दाभिधेये तत्रैव घटे उपादेयान्तरङ्गोपयोगरूपतया
सत्त्वस्य विवक्षितत्वात्तद्रूपेण सन् घट इति प्रथमभङ्गः, हेयो
यो बहिरङ्गस्तद्रूपेण तत्र किञ्चित्कार्यकारित्वस्याभावादनुप-
युक्तस्स इति तद्रूपेणासन् घट इति द्वितीयभङ्गः, ताभ्यां
युगपत्प्रधानतया विवक्षिताभ्यामादिष्टस्य घटस्य न वाचकः
कश्चिच्छब्द इत्यवाच्य एव स इति तृतीयभङ्गः, यथा च

सन्निहितार्थक्रियाकार्युपादेयरूपेण घटस्सन् तथा हेयबहिरङ्गा-नर्थक्रियाकारिरूपेणापि घटस्स्यात् तर्हि जलाद्याहरणादिलक्षण-घटार्थक्रियाऽकारिणां पटादीनामपि घटत्वं प्रसज्येतेत्यत उपा-देयान्तरङ्गार्थक्रियाकारिरूपेणैव घट इति प्रथमभङ्गोपपत्तिः, यथा च हेयबहिरङ्गादिरूपेण घटोऽघटः तथोपादेयान्तरङ्ग-रूपेणाऽप्यघटः स्यात्तदा घटव्यवहार एवोच्छिद्येत, घटाभावे घटभिन्नानामघट इति व्यवहारोऽपि कथं स्यादघटस्य घट-निरूप्यत्वान्निरूपकाभावे निरूप्यस्याप्यभावादिति हेयबहि-रङ्गादिरूपेणैवाघट इति द्वितीयभङ्गोपपत्तिः, उक्तदिशैवान्त-रङ्गस्य वक्तृगतस्य हेतुभूतघटाकारावबोधकविकल्पस्य श्रोतृ-गतस्य च फलभूतघटाकारविकल्पोपयोगस्य चाभावे घटस्या-प्यभावाद्वाच्याभावाद्वाचकस्याप्यभाव इत्यवक्तव्य एव सः, एकान्ताभ्युपगमेऽप्येकान्तस्याभावात्तद्वाचकाभावादवक्तव्य एवेत्येव तृतीयभङ्गोपपत्तिरित्यष्टमः प्रकार ॥ ८ ॥

यदा चोक्तदिशोपयोगरूपो घट उपेयते तदा तत्रैवोपयोगेऽ-भिमतार्थावबोधकत्वेन सत्त्वमिति तद्रूपेण सन्निति प्रथमभङ्गः, अनभिमतार्थावबोधकत्वं तत्रासन्निति तद्रूपेणासन्निति द्वितीय-भङ्गः, ताभ्यां युगपदादिष्टो न केनापि वचनेन वक्तुं शक्य इति तथाऽवक्तव्य एव स इति तृतीयो भङ्ग, उपपत्तिश्चात्रेत्थम्-उपयोगरूपो घटो यथा विवक्षितार्थप्रतिपादकत्वेन घटः तथा यद्यविवक्षितार्थप्रतिपादकत्वेनापि घटः, एवं तर्हि प्रतिनियतो-

पयोगो न भवेत् , तथात्वे च विवक्षितरूपोपयोगप्रतिपत्तिरपि न भवेदतो विवक्षितार्थाविबोधकत्वेनैव घट इति प्रथमभङ्गोपपत्तिः । एवं यथाऽविवक्षितार्थाविबोधकत्वेनाघटस्तथा यदि विवक्षितार्थविबोधकत्वेनाप्यघटः स्यात्, एवं दिशा पटादिरप्यपटादिरेव प्रसज्येत तदा घटपटादेरशेषस्याभावः स्यात् , घटपटादीनां सर्वेषां सर्वथाऽसत्त्वे विशेषश्च न स्यात् , न ह्यसतां शशशृङ्गगगनकुसुमादीनां विशेषोऽस्तीत्यतोऽविवक्षितार्थबोधकत्वेनैवोपयोगरूपो घटोऽघट इति द्वितीयभङ्गोपपत्तिः । अत्र कश्चिदेवं ब्रूयादस्तु सर्वाभावोऽविशेषश्चेति तन्न युक्तं विविक्तरूपोपयोगप्रतीत्यनुरोधेन सर्वसत्त्वस्य परस्परविशेषस्य चावश्यमभ्युपगन्तव्यत्वात् सर्वाभावस्याविशेषस्य च प्रतीत्यभावादेवाभ्युपगन्तुमशक्यत्वादिति बोध्यम् । एकान्तसत्त्वासत्त्वोपगमेऽपि सर्वाभावाविशेषप्रसङ्गदोषस्य जागरूकत्वात्तथाभूतस्य वाच्यस्याभावे तद्वाचकस्याप्यभावादवक्तव्य एवेति तृतीयभङ्गोपपत्तिरिति नवमः प्रकारः ॥ ९ ॥

यद्वा सत्त्वस्याशेषवस्तुगतस्य महासामान्यस्य साधारणत्वादर्थान्तरत्वमेवेति न घटधर्मतया तस्य विवक्षितं, किन्तु घटत्वमेवान्यतो व्यावृत्तत्वेनासाधारणत्वान्निजं रूपमिति तदेव घटधर्मतया विवक्षितमिति घटत्वेन सन् घट इति प्रथमभङ्गः, सत्त्वेनासन् घट इति द्वितीयभङ्गः ताभ्यां युगपदभेदेन निर्दिष्टो घटो न केनचिच्छब्देनाभिधातुं

शक्य इत्यवक्तव्य एव स इति तृतीयभङ्गः, तर्कप्रवृत्तिस्त्वे-त्थम्,—घटस्य सत्त्वेनास्तित्वं यद्यभिमतं तदा वक्तव्यं किं यो यस्सन् स घट इत्येवं सत्त्वमनूद्य घटत्वं विधातव्यम्, तथाभ्युपगमे 'असति बाधके उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन विधेयान्वय' इति सत्त्वं व्याप्यं घटत्वं व्यापकमिति सत्त्वस्य व्याप्यस्य सर्वगतत्वे तदात्मकस्य सतोपि सर्वगतत्वं सत्त्व-व्यापकस्यापि घटत्वस्य सर्वगतत्वप्राप्तौ तदात्मकस्य घटस्यापि सर्वगतत्वप्रसङ्गः, न चायं प्रसङ्ग इष्टापत्त्या परिहर्तुं शक्यः, यत्किञ्चित्प्रदेश एव घटस्य प्रतीयमानत्वेन तादृशप्रतिभास-बाधितत्वात् सर्वगतत्वस्य, एवं प्रतिनियतव्यक्तिष्वेव घट-व्यवहारस्य भावेन सर्वगतत्वाभ्युपगमे तद्विलोपप्रसङ्गाच्चातो घटत्वेनैव घटस्सन् इति प्रथमभङ्गोपपत्तिः, एवं घटत्वेन घटस्य असत्त्वं तदा भवेद्यदि यत्रासत्त्वं तत्र घटत्वमिति स्यात्, असत्त्वञ्च निषेधरूपत्वं निषेधश्च प्रागभावध्वंसात्यन्ताभावा-न्योन्याभावभेदेन चतुर्विध इति असत्त्वस्य प्रागभावादिचतुष्टये सत्त्वेन घटत्वस्यापि तत्र प्रसङ्ग इति न घटत्वेन घटस्य निषेध-रूपत्वलक्षणमसत्त्वम्, अतस्सत्त्वमनूद्य घटत्वस्य विधाना-सम्भवात्सत्त्वेन न घटस्य घटत्वमिति तद्रूपेणैव घटस्याऽसत्त्व-मिति सत्त्वेन घटोऽसन्निति द्वितीयभङ्गोपपत्तिः, यदा सदसत्त्वे घटत्वमनूद्य विधीयेते यो यो घटस्स सन्नसंश्चेति तदा सदसत्त्वे घटमात्ररूपे प्रसज्येयातां, अत्र सामनैयत्येनोद्देश्यविधेय-भावोऽभिमतो यथा 'प्रमाणं स्वपरव्यवसायिज्ञानं, गन्धवती

पृथिवीत्यादौ', एतच्च तदोपपद्येत यदि पटादयः प्रागभावादयश्च जगति नाम न स्युः, इत्थं चान्यस्य कस्यचिदभावाद्-व्यावर्तकत्वेन न विशेषणं व्यावर्त्यत्वाभावेन न विशेष्यमिति विशेषणविशेष्यलोपात्सन् घट इत्येवमप्यवक्तव्यस्तथा चैकान्तस्वरूपविषयाभावादवाच्य इति सदसद्भ्यां घटस्य कथञ्चिद्भेदाभेदालक्षणानेकान्ताभ्युपगमे तु विषयस्य सत्त्वेऽपि युगपत्तदुभयावबोधकस्यावक्तव्यशब्दातिरिक्तशब्दस्याभावेऽपि तादृशस्यावक्तव्यशब्दस्य भावान्न सर्वथाऽवक्तव्यः किन्तु कथञ्चिदवक्तव्यः, अभेदवादकृततद्दोषस्य भेदवादेन परिहारसम्भवात्, न चाभेदैकान्तो घटस्य सदसद्भ्यामुक्तदोषभयाद् मा भवतु, भेदैकान्तस्तु तत्र घटत्वमनुद्य समवायेन सत्त्वस्य, विशेषणतयाऽसत्त्वस्य च विधानसम्भवादिति सत्त्वासत्त्वयोस्तथा विधानेन वक्तव्यतेति वाच्यं, अतिरिक्तसमवायविशेषणतयोरभावेन भेदैकान्तस्यापि विषयस्याभावात्तथाप्यवक्तव्यत्वादिति दशमः प्रकारः ॥ १० ॥

अथवा घटस्य व्यञ्जनपर्यायार्थपर्यायभेदेन पर्यायो द्विविधः तत्र येन घटत्वसामान्यलक्षणपर्यायेण घटमात्रे घटशब्दप्रवृत्तिस्स घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तघटत्वसामान्यलक्षणपर्यायो व्यञ्जनपर्यायः, प्रतिक्षणं घटव्यक्तेर्योऽन्यान्यरूपेण परिणामः सोऽर्थपर्यायः, तत्रार्थपर्याय एकस्य घटव्यक्तेर्नान्यघटवृत्तीति निजं रूपं, ततश्च निजेनार्थपर्यायरूपेण

घटोऽस्त्येवेति प्रथमभङ्गः, अथान्तरभूतेन व्यञ्जनपर्यायेण च नास्त्येव घट इति द्वितीयभङ्गः, ताभ्यां प्राधान्येन युगपद्विवक्षिताभ्याममभेदेन निर्दिष्टो घटो न केनचिद्वक्तुं शक्य इत्यवक्तव्य एव घट इति तृतीयो भङ्गः, अत्र प्रथमद्वितीयभङ्गोपपत्तिः सुकरैव, तृतीयभङ्गोपपत्तिस्त्वित्थम्—अभेदेन ताभ्यां घटस्य निर्देशो द्विधा सम्भवति व्यञ्जनपर्यायमनूद्य घटार्थपर्यायविधिः घटार्थपर्यायमनूद्य व्यञ्जनपर्यायविधिश्च, तत्र प्रथमे व्यञ्जनपर्यायस्य घटसामान्यात्मकघटत्वस्य घटव्यक्त्यात्मकघटरूपार्थपर्यायाभेदस्तदैव सम्भवो यदि सकलघटस्वरूपतैकस्य घटस्य स्यादित्येकघटरूपार्थपर्यायस्याशेषघटात्मकत्वमापद्येतेति भेदनिबन्धनो योऽयं घटोऽन्यस्माद्घटाद्भिन्न इति व्यवहारस्तस्य विलोपः स्यात्, द्वितीय घटार्थपर्यायात्मिका घटव्यक्तिर्व्यञ्जनपर्यायघटत्वसामान्यात्मिकैव भवेत्, घटत्वसामान्यस्य नित्यत्वेन तदात्मकघटव्यक्तेरपि नित्यत्वमिति तत्र कार्यत्वन्न भवेदिति कार्यतयैव निर्णीतस्य घटस्य कार्यत्वाभावेऽभावादवक्तव्य एव घटः, अनेकान्तपक्षे तु युगपदभिधातुमशक्यत्वात्कथञ्चिदवक्तव्य इत्येकादशमप्रकारः ॥ ११ ॥

अतः परं पञ्चप्रकाराः केवलमवक्तव्यत्वमवलम्ब्य तृतीयभङ्गमात्रसमर्थनप्रवणा उपदिश्यन्ते, तथाहि—एकमेकत्रैव सम्बद्धं भवितुमर्हति, कदाचित्सावयवमेकत्रैकेनान्वय-

वेन सम्बद्धं तदन्यत्रावयवान्तरेण सम्बद्धमित्यनेकसम्बद्धं सम्भावयितुं शक्येतापि, निरवयवस्य त्वेकस्यावयवद्वारेण सम्बन्धाभावाद्यत्र सम्बद्धं तत्र परिपूर्णस्वरूपमेव सम्बद्धम्, एवञ्चार्थान्तरभूतस्य निरवयवस्य सत्त्वस्य विशेषोऽन्त्यो यथैक एकत्रैव सम्बद्धत्वादनन्वयिरूपस्तथैवैकत्रैव सम्बद्धत्वादनन्वयिरूपता, अत एवान्त्यविशेषवदेव न तद्वाच्यम्, अन्त्यविशेषो निजस्वरूपोऽप्यनन्वयादेवावाच्यः, प्रत्येकावक्तव्याभ्यां ताभ्यामभेदेनादिष्टो घटोऽप्यवक्तव्य एव, अवक्तव्याभिन्नस्यावक्तव्यत्वस्यैव न्याय्यत्वात्, अनेकान्तपक्षे त्ववक्तव्यमपि घटधर्म इति तद्रूपेणावक्तव्यशब्देन वाच्यत्वम्, सत्त्वादिनाऽन्यशब्देनावाच्यत्वमिति कथञ्चिदवक्तव्य इति द्वादशप्रकारः ॥ १२ ॥

सत्त्वरजस्तमस्स्वरूपास्त्रयो गुणाः परस्परविरुद्धस्वभावाः प्रतिनियतजलाहरणादिलक्षणार्थक्रियाकारित्वं घटस्यैक्यपरिणतिमन्त्वेनेति प्रतिनियतार्थक्रियाकारितावच्छेदकैक्यपरिणतिलक्षणसन्द्रुतरूपत्वाभावादसद्रूपाः प्रतिनियतार्थक्रियाकारितावच्छेदिकैक्यपरिणतिः सन्द्रुतरूपं, तत्र सन्द्रुतरूपं निजम्, असन्द्रुतरूपमर्थान्तरं, ताभ्यामादिष्टो घटोऽवक्तव्यो भवति, अस्योपपत्तिरित्थम्—निरुक्तस्वस्वरूपस्य सन्द्रुतरूपस्य सत्त्वरजस्तमस्सु सद्भावे तेषामैक्यप्रसक्त्या विभिन्नरूपतापगमाद्विभिन्नस्वभावतालक्षणपरस्परवै-

लक्षण्येनैव सत्त्वत्वरजस्त्वतमस्त्वानां प्रत्येकधर्माणां सद्भावो नान्यथेति तेषामभावाद्विशेषणस्य सन्द्रुतरूपत्वस्य भावेऽपि विशेष्याणां विभिन्नस्वभावानां सत्त्वरजस्तमसां तदाऽभावादेवावक्तव्यः, यदि च सत्त्वरजस्तमस्सु निरुक्तैक्यपरिणतिलक्षणं सन्द्रुतरूपं नास्ति तदा तत्रासदेव सन्द्रुतरूपमुत्पन्नमितिनिरुक्तत्रिगुणाभ्युपगन्तुस्सत्कार्यवादिनस्साङ्ख्यस्यासत्कार्योत्पादप्रसङ्गोऽनिष्ट आपद्येत, उक्तप्रसङ्गस्येष्टापत्त्या परिहारेऽपि सत्त्वरजस्तमस्स्वरूपत्रिगुणात्मके घटे त्रिगुणात्मकत्वादेव न सन्द्रुतरूपत्वमिति विशेषणस्य सन्द्रुतरूपस्याभावादेवावाच्यः, न च सत्त्वरजस्तमसां घटाविर्भावकाले सन्द्रुतरूपमस्तीति न विशेषणाभाव इति वाच्यं घटाविर्भावपूर्वकालावच्छेदेन सत्त्वरजस्तमस्सु असन्द्रुतरूपत्वं घटाविर्भावकालावच्छेदेन सन्द्रुतरूपत्वमित्येवं कालभेदेन सदसद्रूपसमावेशाभ्युपगमेऽनेकान्तवादप्रवेशापत्तेः, ननु घटाविर्भावपूर्वकाले शक्तिरूपेण तेषु सन्द्रुतरूपमस्ति न तु व्यक्तिरूपेण, शक्तिरूपेण सन्द्रुतरूपसत्त्वञ्च न सत्त्वरजस्तमसां वैलक्षण्यस्य विघातकं, व्यक्तिरूपेण सन्द्रुतरूपन्तु घटसामग्रीत एवोपजायत इति चेत्, न व्यक्तेराविर्भावरूपाया घटसामग्रीतः प्राक्काले सद्भावे सत्त्वरजस्तमसां सन्द्रुतरूपस्य प्रकटस्य सद्भावात् परस्परवैलक्षण्यस्वभावव्याघातात्, घटसामग्रीतः प्राक्काले सन्द्रुतरूपाविर्भावस्यासत्त्वे तु असतस्तस्य घटसामग्रीतो भावेनासत्कार्योत्पादप्रसङ्गतादवस्थ्यात् । ननु नैयायिकादिमते

घटसत्त्वकाले भूतले सतोऽपि घटाभावस्य सम्बन्धाभावदत्र घटो नास्तीति न व्यवहारः, सम्बन्धश्च तस्य घटशून्यकालीन-भूतलस्वरूपात्मा, स च तस्मिन्नेव भूतले घटापसारणदशायां घटाभावस्य समस्तीति तदानीं भवत्यत्र भूतले घटो नास्तीति व्यवहारः, तथा साङ्ख्यमतेऽपि सन्द्रुतरूपस्य घटसामग्रीतः प्राक्काले सत्त्वेऽपि तत्कालावच्छिन्नस्वरूपात्मा नास्ति तस्य सम्बन्ध इति तदानीं न तत्र सन्द्रुतरूपव्यवहारः, घटसामग्री-सम्पत्तौ च तत्कालावच्छिन्नस्वरूपात्मकस्य सम्बन्धस्य सद्भावाद्भवति तदानीं सन्द्रुतरूपव्यवहार इति चेत्, न, केवलस्वरूपात्तत्कालावच्छिन्नस्वरूपस्य सर्वथा भेदे च केवलाधि-करणस्वरूपस्य सर्वदा भावात्तदात्मकसम्बन्धस्य बलाद्घटसत्त्वेऽपि भूतले घटाभावव्यवहारापत्तिर्नैयायिकादीनाम्, साङ्ख्यानाञ्च घटसामग्रीसम्पत्तितः प्रागपि निरुक्तसम्बन्धसद्भावात्सन्द्रुतरूप-व्यवहारापत्तिश्च स्यात्, केवलस्वरूपात्तत्कालावच्छिन्नस्वरूपस्य सर्वथा भेदे च सर्वथाभिन्नतदन्यस्वरूपवत्तस्यापि सम्बन्धत्वासम्भवान्न ततो घटापसारणदशायामपि घटाभावव्यवहारो भवेत्, तथा घटसामग्रीसम्पत्तावपि तदुत्तरं सन्द्रुतव्यवहारश्च स्यादत उक्त-सम्बन्धः कथञ्चिद्भिन्न एवाभ्युपेयः स चानेकान्तवाद एव युज्यते न त्वेकान्तवाद इत्येकान्तवाद इत्थमप्यवक्तव्यः। इति त्रयोदश प्रकारः ॥१३॥ अथवा रूपादयोऽनेकप्रत्यय-ग्राह्याः अर्थाद्भिन्नभिन्नबुद्धिवेद्या अत एवासंहतरूपा अर्थान्तर-भूताः, संहतरूपत्वं सामुहिकप्रत्ययग्राह्यं निजं, ताभ्यामादिष्टो

घटोऽवक्तव्यः, तथाहि अरूपादिव्यावृत्ता रूपादयः यतोऽरूपव्यावृत्तं रूपमुच्यते, अरसव्यावृत्तो रस इति, अगन्धव्यावृत्तो गन्धः, अस्पर्शव्यावृत्तस्स्पर्शः एवञ्च परस्परविलक्षणबुद्धिग्राह्यानां रूपादीनां सामूहिकप्रत्ययग्राह्यत्वलक्षणस्य घटत्वस्यारूपत्वादिस्वरूपस्यासम्भवादेवमपि घटस्य रूपादित्वाभ्युपगमे परस्परव्यावृत्तस्वरूपरूपाद्यात्मको घटो नास्त्येवेति संहृतरूपविशेषणसद्भावेऽपि विशेष्यस्य घटस्य लोपादवाच्यः, रूपादेरप्यरूपादित्वाश्रयणे रूपादय एव न भवन्तीति रूपादीनामभावे केऽसंहृतरूपतया विशेष्याः येनासंहृतरूपादयो घटो भवेदित्येवमवाच्यो घट एकान्तवादे, अनेकान्ते तु संहृतासंहृतरूपयोः कथञ्चिदभेदस्य सम्भवाद्विषयस्य सद्भावेऽपि युगपत्तदुभयप्रतिपादकस्यावक्तव्यशब्दातिरिक्तशब्दस्याभावात्कथञ्चिदवाच्य इति चतुर्दशप्रकारः॥ १४ ॥ अथवा रूपादिमान् घट इति व्यवह्रियते तत्र घटस्य मतुबर्थो निजं रूपं, रूपादयोऽर्थान्तरभूताः, ताभ्यामादिष्टो घटोऽवाच्यः रूपाद्यात्मकैकाकारावभासप्रत्ययविषयव्यतिरेकेणापररूपसम्बन्धानवगतेर्मतुबर्थलक्षणविशेष्याभावाद्रूपादिमान् घट इत्यवाच्यः, न चैकाकारप्रतिभासग्राह्यव्यतिरेकेणापररूपादिप्रतिभास इति रूपादिलक्षणविशेषणाभावादप्यवाच्यः, अनेकान्तवादे तु कथञ्चिदवाच्यः, इति पञ्चदशप्रकारः ॥ १५ ॥ अथवा उपयोगमन्तरेण घटस्याप्रतिभासमानत्वादुपयोगो निजः, बाह्यस्तु सन्नपि ज्ञानमन्तरेण न व्यवहृतिपथमुपयातीति

सोऽर्थान्तरभूतः, ताभ्यामादिष्टोऽवक्तव्यः, तथाहि—य उपयोगः स घट इत्येवमुपयोगमनूद्य घटस्य विधाने उपयोगमात्रकमेव घट इति सर्वोपयोगस्य घटत्वप्रसक्त्या प्रतिनियतस्वरूपाभावादवाच्यः, अथ यो घटः स उपयोग इत्येवं घटमनूद्योपयोगो विधीयते तदाप्युपयोगस्यार्थत्वप्रसक्तिरित्युपयोगाभावे घटस्याप्यभाव उपयोगाधीनसिद्धिकत्वाद्घटस्य, ततश्च विषयाभावात्कथं नावाच्यः इति षोडशप्रकारः ॥१६॥ एतदभिप्रायेणोक्तं सम्मतौ "अत्थंतरभूएहि य, णियएहि य दोहिं समयमाईहिं ॥ वयणविसेसाईअं, दव्वमवत्तव्वयं पडइ ॥ १–३६ ॥" अर्थान्तरभूतैश्च निजकैश्च द्वाभ्यां समकमादिभ्याम् ॥ वचनविशेषातीतं द्रव्यमवक्तव्यं पतति" इति संस्कृतम्, अस्यार्थः—अर्थान्तरभूतैर्निजकैश्च पर्यायैः क्रमेण स्यात्सन् स्यादसन्निति द्वौ भङ्गौ भवत इति शेषः, द्वाभ्यां चादिभ्यां प्रागुक्ताभ्यां प्रकाराभ्यां समकं युगपत्, विवक्षितमिति शेषः, द्रव्यं वचनाविशेषातीतं स तथाविधवचनवाच्यतानापन्नं सद्, अवक्तव्यकं पतति तृतीयभङ्गविषयतामास्कन्दतीति, अत्र च निजार्थान्तरपर्यायैरनेकान्तोपजीविनैगमव्यवहारविशुद्धतारतम्योपदर्शकवसतिदृष्टान्तनीत्या यथाक्रमं सङ्कुचद्भिः क्रमेण युगपच्चादिष्टैरुपदर्शितेषु षोडशस्ववक्तव्यविकल्पेषु मध्ये एकादशसु त्रयोऽपि भङ्गाः सम्भवन्ति, द्वादशादिषु पञ्चसु च स्वतन्त्रैकान्ते नयार्पितैस्तैः प्रत्येकं समुदाये च सर्वथाऽवक्तव्यत्वभङ्ग एवोत्तिष्ठते, स च बाधितः

सन् कथञ्चिदवक्तव्यत्वे पर्यवस्यति, तस्य कथञ्चित्त्वं च भङ्गद्वयाधीनं इत्थञ्च त्रयाणां भङ्गानां क्रमाभिधानमेव सम्प्रदायसिद्धमिति व्युत्पत्तिमहिम्ना ततोऽपि स्याद्वादविदुषो भङ्गत्रयसम्भव इति विवेकः, इत्थञ्च यत्पशुपालेनोक्तं-"सर्वत्रानेकान्ताभ्युपगमे 'सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च' इति वचनमेवानुपपन्नं, स्वपररूपयोरप्यनिर्धारणादिति" तदपास्तं द्रष्टव्यं, पूर्वं नयविशेषेण स्वपररूपयोः सङ्कोचविकासावुपजीव्य तदनुसारेणैव सप्तभङ्गीप्रवृत्तेः, अवच्छिन्नसप्रतिपक्षधर्मद्वयाभिधानस्थले एकान्ततोऽवच्छेदकनिर्णयस्य तवाप्यभावात्, इदानीं गोष्ठे गौर्न तु वाजिशालायामित्यादौ शुद्धगोष्ठादेरप्यवच्छेदकत्वस्य निर्णेतुमशक्यत्वात्, इह कोणे गोष्ठे गौर्नापरकोणे इति प्रतिसन्धान एतत्कोणावच्छिन्नगोष्ठस्यैतत्कोणस्य वा तथात्वसम्भवात्, अवच्छेदकावच्छेदकस्यावच्छेदकसङ्कोचस्य वाऽपरिस्फूर्तौ शुद्धावच्छेदकपुरस्कारेण तत्परिस्फुर्तौ तु सावच्छिन्नप्रकृतावच्छेदपुरस्कारेणैव प्रतिनियतदेशदेशावच्छेदेन वा निर्णयस्त्वावयोः समानः, देशदेशस्य नावच्छेदकत्वमिति तु नीलपीतकपालिकास्थकपालसमवेतघटनीलप्रत्यक्षान्यथानुपपत्त्या परेण वक्तुमशक्यम्, तत्र नीलकपालिकावच्छिन्नचक्षुस्संयुक्तसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारतयैव घटे नीलप्रत्यक्षोपपादनात्, इयाँस्तु विशेषः, यत्परेषां देशदेशस्यावच्छेदकत्वं स्वाभाविकसम्बन्धविशेषेण, अस्माकं तु वैज्ञानिकसम्बन्धविशेषेण, तत्र परेषां परम्परासम्बन्धेन

गोष्ठकोणस्य साक्षात्सम्बधेन च कोणावच्छिन्नगोष्ठस्य गवावच्छेदकत्वमिति कोणे गौर्न तु गोष्ठे इति सूक्ष्मेक्षिकानुपपत्तिः, अस्माकं तु मध्यमनैगमभेदकृतवैज्ञानिकसम्बन्धेन गोष्ठकोण एव तथात्वं न तु गोष्ठ इति तदुपपत्तिः, न च कोणे गौर्न तु गोष्ठे इति सूक्ष्मेक्षिका न भवत्येव किन्तु न तु सम्पूर्णगोष्ठे इत्येव, सा च यावत्कोणेषु गवावच्छेदकतावच्छेदकत्वपर्याप्त्यभावमवगाहत इति परेषामपि नानुपपत्तिरिति वाच्यम्, एवं सति सम्पूर्णकोणेऽपि तदभावात्कोणे गोष्ठे गौरित्यस्याप्यनुपपत्तेः, नयविशेषकृतसम्बन्धं विना न त्रिचित्रप्रतीत्युपपत्तिरिति ।

सकलादेशविकलादेशविभजनं चेत्थमुपदर्शितमुपाध्यायैः, तदुपदर्शनप्रयोजनन्तु सम्मतिरहस्यावेदनम्, तथाहि–एते च त्रयो भङ्गा गुणप्रधानभावेन सकलधर्मात्मकैकवस्तुप्रतिपादकाः सन्तः सकलादेशाः, स्यात्कारपदलाञ्छितैतद्वाक्याद्विवक्षाकृतप्रधानभावसदाद्येकधर्मात्मकस्यापेक्षितापरशेषधर्मक्रोडीकृतस्य वाक्यार्थस्य प्रतीतेः, विपक्षाविरचितद्वित्रिधर्मानुरक्तस्य स्यात्कारपदसंसूचितसकलधर्मस्वभावस्य धर्मिणो वाक्यार्थस्य प्रतिपादका। वक्ष्यमाणास्तु चत्वारो विकलादेशा इति केचित्सङ्गिरन्ते, ते चेमे–स्यादस्ति नास्ति च घट इति प्रथमो विकलादेशः १, स्यादस्त्यवक्तव्यश्च घट इति द्वितीयः २; स्यान्नास्ति

चावक्तव्यश्च घट इति तृतीयः ३, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्च घट इति चतुर्थः ४, तत्र वस्तुनो यदेको देशः सत्त्वेऽपरश्चासत्त्वे आदिश्यते तदा प्रथमो विकलादेशः, तदुक्तं सम्मतौ "अह देसो सब्भावे, देसोऽसब्भावपज्जवे णियओ। तं दवियमत्थि णत्थि य, आएसविसेसियं जम्हा ॥१—३७॥ "अथ देशः सद्भावे, देशोऽसद्भावपर्यवे नियतः। तद्द्रव्यमस्ति च नास्ति च आदेशविशेषितं यस्मात् ॥" इति संस्कृतम, अस्यार्थः—यदा देशो वस्तुनोऽवयवः सद्भावेऽस्तित्वे नियतः सन्नेवायमित्येवं निश्चितः, अपरश्च देशोऽसद्भावपर्याये नास्तित्व एव, नियतोऽसन्नेवायमित्यवगतः अवयवेभ्योऽवयविनः कथञ्चिदभेदादवयवधर्मैस्तस्यापि तथा व्यपदेशः, यथा 'कुण्ठो देवदत्त इति' ततोऽवयवसत्त्वासत्त्वाभ्यामवयव्यपि सदसन् भवति, ततस्तद्द्रव्यमस्ति च नास्ति चेति भवति, आदेशेन उभयप्रधानावयवभागेन, विशेषितं यस्मात्, तथा हि यदवयवेन विशिष्टधर्मेण आदिश्यते तदस्ति च नास्ति भवति, तथा स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च विभक्तो हि घटोऽस्ति, परद्रव्यादिरूपेण च स एव नास्तीति। आद्ययोरपि भङ्गयोः स्वद्रव्यपरद्रव्याभ्यां विभज्यत एव घट इति तत्समुदायात्कोऽस्याविशेष इति चेत्, न तत्रास्तित्वनास्तित्वावच्छेदकद्वारा विभागेऽप्यवयवद्वारा विभागाभावात्, अत्र तु तद्द्वाराविभागेन विशेषात्। तद्द्वाराविभागकरण एव किं बीजमिति चेत्, सावयवनिरवयवात्मकवस्तुनस्तथाप्रतिपत्तिजनकसावयवनिरवयवत्वशब-

लैकस्वरूपत्राविषयत्वेन प्रामाण्यरक्षार्थमिति दिक् ४ । एकस्य देशस्य सत्त्वेनापरस्य च युगपदुभयथा देशे द्वितीयो विकलादेशः, तदुक्तं संम्मतौ "सब्भावे आइट्ठो, देसो देसो य उभयहा जस्स । तं अत्थि अवत्तव्वं, च होइ दवियं विअप्पवसा ॥ १–३८ ॥" सद्भावे आदिष्टो, देशो देशश्चोभयथा यस्य । तदस्ति अवक्तव्यं च भवति द्रव्यं विकल्पवशात्– इति संस्कृतम् । अस्यार्थः–सद्भावेऽस्तित्वे, यस्य घटादेर्धर्मिणः, देशो धर्मः, आदिष्टोऽवक्तव्यानुविद्धस्वभावे, अन्यथा तदसत्त्वप्रसङ्गात्, न ह्यपरधर्माऽप्रविभक्ततामन्तरेण विवक्षितधर्मास्तित्वमस्य सम्भवति, खरविषाणादेरिव, तस्यैवापरो देश उभयथाऽस्तित्वनास्तित्वप्रकाराभ्यामेकदैव विवक्षितोऽस्तित्वानुविद्ध एवावक्तव्यस्वभावे, अन्यथा तदसत्त्वप्रसक्तेः, न ह्यस्तित्वाभावे उभयाविभक्तता शशशृङ्गादेरिव तस्य सम्भविनी, प्रथमतृतीयकेवलभङ्गव्युदासस्तथा विवक्षावशादत्र कृतो द्रष्टव्यः, तत्र प्रथमतृतीययोर्भङ्गयोः परस्पराविशेषणीभूतयोः प्रतिपाद्येनाधिगन्तुमिष्टत्वात्, प्रतिपादकेनापि तथैव विवक्षितत्वात्, अत्र तु तद्विपर्ययात्, अनन्तधर्मात्मकस्य धर्मिणः प्रतिपाद्यानुरोधेन तथाभूतधर्माक्रान्तत्वेन वक्तुमिष्टत्वात्, तद्द्रव्यमस्ति चावक्तव्यं च भवति, तद्धर्मविकल्पवशाद् धर्मयोस्तथा परिणतयोस्तथा व्यपदेशे धर्म्यपि तद्द्वारेण तथैव हि व्यपदिश्यते । अत्रेदमवधेयम्–परस्परविशेषणीभूतयोरस्तित्वावक्तव्यत्वयोस्तु न विवक्षा, तत्र चैत्रो रक्त-

दण्डवानितिवत् स्यादस्त्यवक्तव्यश्च घट इत्यतोऽस्तित्ववि-
शिष्टावक्तव्यत्ववान् घट इत्यबोधात्, किन्तु चकारबलाद्
'एकत्र द्वयमिति' न्यायेन विभिन्नदेशे दण्डी कुण्डली च चैत्र
इत्यत्र चैत्रे दण्डकुण्डलयोरिव प्रकृते घटेऽस्तित्वावक्तव्यत्वयोः
परस्पराविशेषणीभूतयोरेव भानात्, एकत्र द्वयभाने द्वयोः
सामानाधिकरण्येन वैशिष्ट्यमप्यौत्सर्गिकं भासत इति चेत्,
तर्हि सम्भूयभङ्गद्वयजनितबोधेऽपि तद्भानमावश्यकमिति
कस्ततो विशेषः, वस्तुतो मिलिताभ्यां प्रथमतृतीयाभ्यामस्ति-
त्वविशिष्टे घटेऽवक्तव्यवैशिष्ट्यज्ञानं सुकरं, द्वितीयमीलन-
स्यापि ''अधिकं प्रविष्टं न तु तद्धानिः'' इति न्यायेनादुष्ट-
त्वात्, प्रकृते तु 'एकत्र द्वयमिति' न्यायेनापि न बोधो, देशे
सत्त्वस्य देशेऽवक्तव्यत्वस्य च विवक्षणादिति विपरीतो विशेषः,
परस्परविशेषणीभूतयोरेकवाक्येन बोध्यत्वप्रकारकतात्पर्य-
विषयतया तु विशेषो न भङ्गान्तरनिमित्तफलाविशेषात्,
अन्यथा विशेषणविशेष्यभावकामचारस्यापि तथात्वप्रस-
ङ्गात्, तथापि देशविशेषितपरस्परविशेषणविशेष्यभावेनात्र
विशेषो द्रष्टव्यः। प्रकृतेऽस्त्यवक्तव्यपदयोर्देशास्तित्वविशिष्ट-
देशावक्तव्यत्वविशिष्टयोरेव तात्पर्यानुपपत्त्या लक्षणास्वीका-
रात्, तयोश्च तादात्म्येन वैशिष्ट्यबोधस्यैतद्भङ्गफलत्वात्,
अयमेव परस्परानुवेधार्थोऽपि द्रष्टव्यः, चतुर्थभङ्गेऽप्युभयप्रधा-
नावयवभागेनैव विशेषोपदेशादत्राग्रेऽपि तस्यैव विशेषस्या-
विशिष्टत्वादितिदिक् ॥५॥ देशेऽसत्त्वस्य देशे च युगपदुभयो-

विवक्षणे षष्ठः. तदुक्तं सम्मतौ "आइट्ठोऽसब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स ॥ तं नत्थि अवत्तव्वं च होइ दवियं विय-प्पवसा ॥१॥-॥३९॥ आदिष्टोऽसद्भावे देशो देशश्चोभयथा यस्य । तन्नास्ति अवक्तव्यं च भवति द्रव्यं विकल्पवशात् ॥ इति संस्कृतम् । अस्यार्थः—यस्य वस्तुनो देशोऽसत्त्वे आदिष्टोऽसन्नेवायमित्यवक्तव्यानुविद्धो विवक्षितोऽपरश्चासदनुविद्धः, उभयथा सदसत्त्वाभ्यामादिष्टस्तदा तद्द्रव्यं नास्ति चावक्तव्यं च भवति विकल्पवशात्, तद्व्यपदेश्यावयवाभेदोपचाराद्द्रव्यस्यापि तद्व्यपदेशासादनात्, देशानुपरक्तद्वितीयतृतीयभङ्गव्युदासेनायं षष्ठो भङ्गः प्रवर्तते ॥ ६ ॥ देशेऽस्तित्वस्य देशे नास्तित्वस्य देशे च युगपदुभयोर्विवक्षायां सप्तमः तदुक्तं सम्मतौ "सब्भावासब्भावे देसो देसो य उभयहा जस्स । तं अत्थि णत्थि अवत्तव्वयं च दवियं विअप्पवसा॥१-४०॥" "सद्भावासद्भावे देशो देशश्च उभयथा। यस्य तदस्ति नास्ति अवक्तव्यं च द्रव्यं विकल्पवशात् ॥" इति संस्कृतम् । अस्यार्थः—यस्य देशिनो देशोऽवयवो देशो धर्मो वा, सद्भावे सत्त्वे नियतोऽपरस्त्वसद्भावेऽसत्त्वे, तृतीयस्तूभयथेत्येवं देशानां सदसदवक्तव्यव्यपदेशात्तदपि द्रव्यमस्ति च नास्ति चावक्तव्यं च भवति विकल्पवशात्, तथाभूतविशेषणाध्यासितस्य द्रव्यस्यानेन प्रतिपादनादपरभङ्गव्युदासः । एते च परस्पररूपापेक्षया सप्तभङ्ग्यात्मकाः प्रत्येकं स्वार्थं प्रतिपादयन्ति नान्यथेति प्रत्येकं तत्समुदायो वा सप्तभङ्ग्या-

त्मकः प्रतिपाद्यमपि तथाभूतं दर्शयतीति सम्प्रदायविदो वदन्ति । तत्र जिज्ञासितसप्तधर्मात्मकताप्रतिपादकत्वपर्याप्त्यधिकरणमहावाक्यत्वरूपसप्तभङ्गीत्वं समुदाय एव, निरुक्तप्रतिपादकत्वाधिकरणवाक्यत्वरूपं च तत्प्रत्येकमपीति विवेकः, अत एव स्यात्पदलाञ्छनविवक्षितधर्मात्रधारकत्वेन स्वार्थमात्रप्रतिपादनप्रवणत्वेन च द्विधा सुनयत्वमुदाहरन्ति—आद्यं सप्तभङ्ग्यात्मकमहावाक्यैकवाक्यतापन्नवाक्ये, अन्त्यं चोदासीने धर्मान्तरोपादानप्रतिषेधाकारिणि, इत्थं च स्यादस्तीत्यादि प्रमाणं, अस्त्येवेत्यादि दुर्नयः, अस्तीत्यादिकः सुनयः, न तु स व्यवहाराङ्गम्, स्यादस्त्येवेत्यादिस्तु सुनय एव व्यवहारकारणम्, स्वपरानुवृत्तव्यावृत्तवस्तुविषयप्रवर्तकवाक्यस्य व्यवहारकारणत्वादिति ग्रन्थकृतो विवेचयन्ति, अत्र सप्तभङ्ग्यामाद्यभङ्गस्त्रिधा, द्वितीयोऽपि त्रिधा, तृतीयो दशधा, चतुर्थोऽपि दशधैव, पञ्चमादयस्तु त्रिंशदधिकशतपरिमाणाः प्रत्येकं श्रीमन्मल्लवादिप्रभृतिभिर्दर्शिताः । पुनश्च षट्त्रिंशदधिकचतुर्दशशतपरिमाणास्त एव च द्व्यादिसंयोगकल्पनया कोटिशो भवन्तीत्यभिहितं तैरेवेति तद्विस्तरस्तद्ग्रन्थादवसेय इति ॥ सप्तैव भङ्गास्संभवन्ति नाष्टभङ्गादय इत्यपि श्रीमद्भिर्न्यायविशारदैर्न्यायाचार्यैर्यशोविजयोपाध्यायैरित्थं समर्थितम्, तथाहि—

'अथानन्तधर्मात्मके वस्तुनि तत्प्रतिपादकवचनस्य सप्तधा कल्पनेऽष्टमनवमादिविकल्पानां कल्पनमपि किं न क्रियत इति

चेत्, न, तत्परिकल्पननिमित्ताभावात्, तथाहि—न तावत्सावयवात्मकमन्योन्यनिमित्तकं तत्परिकल्पयितुं युक्तम्, चतुर्थादिवचनविकल्पेषु तस्यान्तर्भावप्रसक्तेः, नापि निरवयवकात्मकमन्योन्यनिमित्तकं तत्परिकल्पनामर्हति प्रथमादिष्वन्तर्भावप्रसक्तेः, न च गत्यन्तरमस्तीति नाष्टमनवमादिभङ्गकल्पना युक्ता। किं चासौ क्रमेण वा तद्धर्मद्वयं प्रतिपादयेद्यौगपद्येन वा, प्रथमपक्षे गुणप्रधानभावेन तत्प्रतिपादने प्रथमद्वितीययोरन्तर्भावः, प्रधानभावेन तत्प्रतिपादने चतुर्थे, यौगपद्येन तत्प्रतिपादने तृतीये, भङ्गसंयोगिभङ्गान्तरकल्पनायां प्रथमद्वितीयसंयोगे चतुर्थ एव प्रसज्यते, प्रथमतृतीयसंयोगात्पञ्चमः, द्वितीयतृतीयसंयोगात्षष्ठः, प्रथमद्वितीयतृतीयसंयोगात्सप्तमः, प्रथमचतुर्थादिसंयोगकल्पना तु पौनरुक्त्यभयादनुत्थानोपहतैव। न च देशिदेशभेदेन, धर्मिभेदादपौनरुक्त्यम्, प्रथमचतुर्थसमाजादेतादृशप्रतीतिसिद्धौ तत्संयोगस्य निराकाङ्क्षत्वात्, तस्मान्न कथञ्चिदष्टमादिभङ्गप्रसङ्ग इति नाधिक्यम्। न चावक्तव्यत्वसप्तभङ्ग्यां तृतीयभङ्गस्य प्रथमभङ्गाद्वक्तव्यत्वसप्तभङ्ग्यां च द्वितीयभङ्गादविशेषान्न्यूनत्वमपि शङ्कनीयं, तत्रांशांशग्राहकधर्मेणावक्तव्यत्ववक्तव्यत्वयोरेव प्रथमद्वितीयभङ्गार्थत्वात्, अंशावक्तव्यत्ववक्तव्यत्वतद्विपर्ययामवक्तव्यत्वस्यैव तृतीयभङ्गार्थत्वादिति दिक्। इत्थमुक्तन्यायेन वस्तुप्रतिपादने सप्तविध एव वचनमार्ग इति स्थितम्" इति। सेयं सप्तभङ्गीनयप्रभवा,

तत्र वचनमार्गावर्थनयशब्दनयप्रभवाविति व्यवस्थापितं श्रीमद्भिर्यशोविजयोपाध्यायैः, तथा च तद्ग्रन्थः—

"अत्रैवं नयविभागमुपदिशन्ति श्रीसिद्धसेनदिवाकरपादाः- एवं सत्तवियप्पो, वयणपहो होइ अत्थपज्जाए। वंजणपज्जाए पुण, सवियप्पो णिव्वियप्पोय ॥ १-४१॥ एवं सप्तविकल्पो, वचनपथो भवति अर्थपर्याये। व्यञ्जनपर्याये पुनः, सविकल्पो निर्विकल्पश्च ॥ इति संस्कृतम्। अस्यार्थः— एवमनन्तरोक्तप्रकारेण, सप्तविकल्पः सप्तभेदः, वचनपथो भवत्यर्थपर्याये अर्थनये-सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रलक्षणे, सप्ताप्यनन्तरोक्ता भङ्गका भवन्ति। तत्र प्रथमो भङ्गः सङ्ग्रहे सामान्यग्राहिणि, नास्तीत्ययं तु व्यवहारे विशेषग्राहिणि, ऋजुसूत्रे तृतीयः, चतुर्थः सङ्ग्रहव्यवहारयोः, पञ्चमः सङ्ग्रहर्जुसूत्रयोः, षष्ठो व्यवहारर्जुसूत्रयोः, सप्तमः सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रेष्विति विभागः। अत्र यद्धर्मप्रकारकः सङ्ग्रहाख्यो बोधः प्रथमभङ्गफलत्वेनाभिमतस्तद्धर्माभावप्रकारको व्यवहाराख्यबोध एव द्वितीयभङ्गफलत्वेनेष्टव्यः, तेन स्याद्घटः, स्यान्नील घट इत्यादि सामान्यविशेषसङ्ग्रहव्यवहाराभ्यां न सप्तभङ्गीप्रवृत्तिरित्यवधेयम्।

अथ तृतीयभङ्गस्य ऋजुसूत्रनिमित्ततायां किं बीजं, युगपत्सत्त्वासत्त्वाभ्यामादिष्टं हि सङ्ग्रहव्यवहारावप्यवक्तव्यमेव ब्रूतः, सङ्ग्रहव्यवहारौ युगपदुभयथाऽऽदिशत एव नेति चेत्,

ऋजुसूत्रोऽपि कथं तथाऽऽदेष्टुं प्रगल्भताम्, मध्यमक्षणरूपायाः सत्तायास्तेनाभ्युपगमात् । सङ्ग्रहाभिमतयावत्सजातीयविशेषानुवृत्तसामान्यानभ्युपगमादृजुसूत्रेणावक्तव्यत्वभङ्ग उत्थाप्यत इति चेत्, सोऽयं प्रत्येकावक्तव्यत्वकृतोऽवक्तव्यत्वभङ्गः, तदुत्थापने च सङ्ग्रहोपि समर्थः, ऋजुसूत्राभिमतमध्यमक्षणरूपसत्ताऽनभ्युपगन्त्रा तेनापि तदुत्थापनस्य सुकरत्वादिति चेत्, अत्रेदमाभाति—सङ्ग्रहव्यवहारौ युगपत्त्रोभयथाऽऽदेष्टुं प्रगल्भेते, स्वानभिमतांशादेशेऽनिष्टसाधनत्वप्रतिसन्धानात्, ऋजुसूत्रस्य तु वर्त्तमानपर्यायमात्रग्राहिणस्तिर्यगूर्ध्वतास्पदाधारांशान्यतररूपसामान्यान्यापोहरूपविशेषौ च सांवृतावेवेति तदपेक्षया युगपदुभयथाऽऽहार्यतदादेशसम्भवादवक्तव्यभङ्गोत्थानमनाबाधम्, न चैवमपि तज्जनितबोधस्य प्रसङ्गरूपत्वाद्विपर्ययपर्यवसाने सङ्ग्रहव्यवहारान्यतरसाम्राज्यमिति वाच्यं, विषयाबाधे कूटलिङ्गजन्यानुमितेरिव प्रकृतभङ्गजन्यबोधस्य प्रमात्वेन विपर्ययपर्यवसानकदर्थनानवकाशात्, अधिकं तु बहुश्रुता विदन्ति ॥

व्यञ्जनपर्याये शब्दनये पुनः, सविकल्पः प्रथमे साम्प्रताख्यशब्दनये पर्यायशब्दवाच्यताविकल्पसद्भावेऽप्यर्थस्यैकत्वात्, द्वितीयतृतीययोस्समभिरूढैवम्भूताख्यशब्दनययोर्निर्विकल्पश्च, द्रव्यार्थात्सामान्यलक्षणान्निर्गतस्य पर्यायरूपस्य विकल्पस्याभिधायकत्वात्तयोः समभिरूढस्य पर्यायभेदभि-

ष्कार्थत्वात्; एवम्भूतस्यापि विवक्षितक्रियाकालार्थत्वात्, तथा च घटो नाम, घटवाचकयावच्छब्दवाच्यः शब्दनयेऽस्त्येव समभिरूढैवम्भूतयोर्नास्त्येवेति द्वौ भङ्गौ लभ्येते लिङ्गसंज्ञा-क्रियाभेदेन भिन्नस्यैकशब्दावाच्यत्वाच्छब्दादिषु तृतीयः, प्रथमद्वितीयसंयोगे चतुर्थः, तेष्वेव च प्रथमद्वितीयचतुर्थेष्व-नभिधेयसंयोगे पञ्चमषष्ठसप्तमा वचनमार्गा भवन्ति। अथ-वाऽन्यथाऽस्या व्याख्यातात्पर्यम्–अर्थनय एव सप्तभङ्गाः, शब्दादिषु त्रिषु नयेषु प्रथमद्वितीयावेव भङ्गौ, "यो ह्यर्थ-माश्रित्य वक्तृस्थः सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्राख्यः प्रत्ययः प्रादु-र्भवति सोऽर्थनयः," अर्थवशेन तदुत्पत्तेरर्थप्रधानतयाऽसौ व्यवस्थापयतीति कृत्वा, "शब्दं तु स्वप्रभवमुपसर्जनतया व्यवस्थापयति, तत्प्रयोगस्य परार्थत्वात, यस्तु श्रोतरि शब्द-श्रवणादुद्गच्छति, शब्दसमभिरूढैवम्भूताख्यः प्रत्ययस्तस्य शब्दः प्रधानं, तद्वशेन तदुत्पत्तेः, अर्थस्तु तदुत्पत्तावनिमि-त्तत्वात्स शब्दनय" उच्यते, तत्र वचनमार्गः सविकल्पक-निर्विकल्पकतया द्विविधः सविकल्पं सामान्यं, निर्विकल्पः पर्यायः, तदभिधानाद्वचनमपि तथा व्यपदिश्यते, तत्र शब्द-समभिरूढौ संज्ञाक्रियाभेदेऽप्यभिन्नमर्थं प्रतिपादयत इति तदभिप्रायेण सविकल्पो वचनमार्गः प्रथमभङ्गरूपः, एवम्भू-तस्तु क्रियाभेदाद्भिन्नमेवार्थं तत्क्षणे प्रतिपादयतीति निर्वि-कल्पो द्वितीयभङ्गरूपस्तद्वचनमार्गः, अवक्तव्यभङ्गस्तु व्यञ्जननये न सम्भवत्येव, यतः "श्रोत्रभिप्रायो व्यञ्जननयः,"

स च शब्दश्रवणादर्थं प्रतिपद्यते, न शब्दाश्रवणात्, अवक्तव्यं तु शब्दाभावविषय इति, नावक्तव्यभङ्गको व्यञ्जनपर्याये सम्भवतीत्यभिप्रायवता व्यञ्जनपर्याये तु सविकल्पकनिर्विकल्पौ प्रथमद्वितीयावेव भङ्गावभिहितावाचार्येणेति टीकाकृतो व्याचक्षते । अत्र वक्तरि यत्सप्तभङ्ग्यर्थज्ञानं तन्मानसो ऽपेक्षोपनीतपदार्थसंसर्गभानरूपं, श्रोतरि तु शाब्दमेव तत्सम्भवति अवक्तव्यं तु न शब्दविषयः, किन्तु शब्दाभावविषय इति यद्व्यञ्जननयतात्पर्यमुन्नीतं तत्कथं सङ्गच्छते ? शब्दाभावस्याप्रमाणत्वेन कस्याप्यर्थस्य तदविषयत्वात्, कस्यचिन्मते शब्दानुपलब्धेः शब्दाभावविषयप्रमाणत्वेऽपि तां विना तद्विषयं विलक्षणं ज्ञानं माऽजनि अवक्तव्यपदाद्वक्तव्यत्वाभावविषयकशाब्दबोधोत्पत्तौ किं बाधकम्, न हि भावविषयक एव शाब्दबोधो भवति न त्वभावविषयक इत्यत्र प्रमाणमस्ति पदज्ञानादिकार्यतावच्छेदककोटौ भावशाब्दत्वप्रवेशे गौरवात्, घटो नास्तीत्यादेर्घटाभावादिशाब्दबोधस्य सार्वजनीनत्वाच्च, तत्रापि नञ उपसर्गवद् द्योतकतया तात्पर्यग्राहकत्वमात्रमेव घटपदस्य घटप्रतियोगिके लक्षणाध्रौव्येऽभावान्तर्भावेनैव तस्या युक्तत्वादिति चेत्, न, "न न घट" इत्यत्रैकस्माद्घटपदाद्घटत्वघटाभावाभावत्वाभ्यामेकदा शक्तिलक्षणाभ्यां बोधासम्भवेन नञः पृथक् शक्तिकल्पनाऽऽवश्यकत्वात्, द्योतकत्वपक्षेऽपि घटो नास्तीत्यादिवाक्यरीत्यैव स्यादवक्तव्यो घट इत्यतोऽवक्तव्यत्वभोगानिरोधाच्च, तस्मान्नायं प्राञ्जलः पन्थाः,

किन्तु कथञ्चिदवक्तव्यत्वमिह "एकपदजन्यप्रातिस्विकधर्मद्वयावच्छिन्नविषयताकशाब्दबोधाविषयत्वम्," तद्बोधनं त्वर्थनये मानसोत्प्रेक्षोपस्थितखण्डशःप्रसिद्धपदार्थसंसर्गाग्रहमात्रात्कथञ्चित्संसर्गग्रहाद्वा सम्भवति, व्यञ्जननये तु तन्न सम्भवति "असतो णत्थि णिसेहो" इत्यादिभाष्यकृद्वचनादुक्तविशिष्टप्रतियोगिनोऽप्रसिद्ध्या तदभावस्याप्यसिद्धत्वात्पदार्थमर्यादया वाक्यार्थमर्यादया वा बोधयितुमशक्यत्वात्, न च स्यात्पदसमभिव्याहृतावक्तव्यपदात्प्रकृते खण्डशः शक्त्या बोधः सम्भवति, एकपदार्थयोः परस्परमन्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वात्, अन्यथा हरिपदादुपस्थितयोः सिंहकृष्णयोराधाराधेयभावसम्बन्धेनान्वयबोधप्रसङ्गादिति सूक्ष्मेक्षिकामनुसरता व्यञ्जननयेन प्रकृते नञ्व्यत्यासादेकपदाजनितप्रातिस्विकधर्मद्वयावच्छिन्नविषयताकशाब्दबोधविषयत्वं स्यादवक्तव्यत्वं वाच्यं, तच्च भङ्गद्वयार्थमादाय पर्यवस्यतीति व्यञ्जननये द्वावेव भङ्गाविति व्याख्यातृतात्पर्यं सुष्ठु घटामटाट्यते, देशकृताश्चतुर्थाद्याश्चत्वारो भङ्गास्तु व्यञ्जननयेन शुद्धेन देश्यतिरिक्तदेशाभावादेव नोद्भवनार्हा इति विभावनीयं सुधीभिरिति" तदिदं मीमांसितं सप्तभङ्गीलक्षणमहावाक्यं स्वार्थज्ञानपूर्वकं, वाक्यम्प्रति वाक्यार्थज्ञानस्य कारणत्वात्, तच्च ज्ञानं प्रमाणरूपश्चेत्तत्प्रभवं निरुक्तवाक्यं प्रमाणं भवति, नयरूपश्चेत्तत्प्रभवनिरुक्तवाक्यमपि नयरूपमित्येवं कारणद्वारकं प्रमाणवाक्यत्वं नयवाक्यत्वञ्चेति, एवं सकलादेश-

महिम्ना निरुक्तसप्तभङ्गीवाक्यं प्रमाणात्मकं ज्ञानं जनयति, विकलादेशमहिम्ना च वस्त्वंशावगाहिज्ञानस्वरूपं नयज्ञानं जनयतीत्यतः प्रमाणात्मकज्ञानजनकत्वात्प्रमाणवाक्यं, नयात्मकज्ञानजनकत्वान्नयवाक्यन्तदित्येवं यथा सप्तभङ्गी प्रमाणसप्तभङ्गी नयसप्तभङ्गीति द्वैविध्यं बिभर्ति, तथा सामान्यविषयकबोधजनकत्वात्सामान्यसप्तभङ्गी विशेषविषयकबोधजनकत्वाद्विशेषसप्तभङ्गीत्येवं द्वैविध्यमश्नुते, न चैवं विषयाणामानन्त्याद्विषयभेदप्रयुक्तसप्तभङ्गीभेदाश्रयणे अनन्तसप्तभङ्गीभेदप्रसङ्ग इति वाच्यम्, इष्टत्वात्, "जावइया वयणपहा, तावइया चेव हुंति नयवाया। जावइया नयवाया, तावइया चेव हुंति परसमया ॥" इति नयानां विषयभेदभिन्नानामानन्त्यात्तत्प्रभवाणां तज्जनकानाञ्च सप्तभङ्गीवाक्यानामपि प्रतिपाद्यभेदप्रयुक्तभेदभाजामानन्त्यस्य स्याद्वादवादिभिर्मुक्तकण्ठं भणनात् ।

ननु नयद्वयाभ्यां सप्तभङ्गीप्रवृत्तिर्भवति नत्वेकेन नयेन, तथा च सङ्ग्रहनयेन सामान्यावबोधकस्य प्रथमभङ्गस्य, व्यवहारनयेन विशेषावबोधकस्य द्वितीयभङ्गस्य, चोपस्थापने सति प्रवर्तमाना सप्तभङ्गी सामान्यविशेषोभयविषयिकैवेति चेत्, अत्र ऋजवः सप्तभङ्ग्याः प्रथमभङ्गो यद्विधिप्रधानकस्तेनैव विषयेण सप्तभङ्ग्या व्यपदेशो भवतीति यत्र सामान्यं प्रथमभङ्गप्रतिपाद्यस्तत्र सप्तभङ्गी सामान्यसप्तभङ्गीति गीयते,

यत्र च विशेषः प्रथमभङ्गप्रतिपाद्यः तत्र सप्तभङ्गी विशेषसप्तभङ्गीति व्यपदिश्यते इत्याहुः ।

वस्तुतः सङ्ग्रहनयत्वेनैकीकृतयोरपि परापरसामान्यविषयकयोः परापरसङ्ग्रहयोर्भेदोऽस्त्यवेति चैत्रः सत्त्वेनास्त्येवेति प्रथमभङ्गः, चैत्रो द्रव्यत्वेन नास्त्येवेति द्वितीयभङ्गः, इत्येवमपि सप्तभङ्गी सम्भवतीति तत्र चैत्रस्य यदस्तित्वं तत्सत्त्वलक्षणमहासामान्यस्वरूपमेव सर्वस्य वस्तुनः सदेकरूपत्वात्, सत्त्वास्तित्वयोरेकरूपत्वेऽपि सत्त्वेन चैत्रोऽस्तीति प्रतीत्यनुरोधात् सत्त्वस्यावच्छेदकत्वमस्तित्वस्यावच्छेद्यत्वं चैत्रस्य किं सर्वथाऽस्तित्वमुत कथञ्चिदस्तित्वमित्याकाङ्क्षानिवृत्त्यर्थमास्थीयते, एवञ्च प्रथमभङ्गः परसङ्ग्रहेण प्रवृत्तः सत्त्वलक्षणमहासामान्यस्य परसङ्ग्रहविषयत्वात्, चैत्रो द्रव्यत्वेन नास्त्येवेति द्वितीयभङ्गप्रतिपाद्यं चैत्रस्य यन्नास्तित्वं तच्चैत्रगतं यदवान्तरसामान्यं द्रव्यत्वं तद्रूपमेव, विधिरूपस्य द्रव्यत्वस्य कथं नास्तित्वात्मकनिषेधरूपत्वमिति नाशङ्क्यं, स्याद्वादिमते भावस्यैव भावाभावोभयस्वरूपत्वेन भावातिरिक्तस्याभावात्मनोऽनभ्युपगमेन चैत्रे यद्द्रव्यत्वं तदेव चैत्रगतमहासामान्यरूपास्तित्वाभवतीत्येतावता नास्तित्वमभिधीयते, चैत्रगतद्रव्यत्वतद्गतनास्तित्वयोरैक्येऽपि द्रव्यत्वेन चैत्रो नास्तीति प्रतीत्यनुरोधेन द्रव्यत्वस्यावच्छेदकत्वं नास्तित्वस्यावच्छेद्यत्वं नानुपपन्नम्, यद्यपि चैत्रस्य द्रव्यत्वं व्यवहारनयविषय इति

व्यवहारनयेन द्रव्यत्वेन चैत्रस्यास्तित्वं समस्तीति द्रव्यत्वेन चैत्रोऽस्तीति प्रतीत्यनुरोधेन चैत्रगतास्तित्वावच्छेदकत्वं द्रव्यत्वस्य, तथापि सङ्ग्रहनयमूलको यस्स्यादस्त्येव चैत्र इति प्रथमभङ्गः तत्प्रतिपाद्यं चैत्रगतास्तित्वं महासामान्यसत्त्वावच्छेद्यं, न तु द्रव्यत्वावच्छेद्यं, महासामान्यसत्त्वग्राहिपरसङ्ग्रहस्य द्रव्यत्वलक्षणापरसामान्यानभ्युपगन्तृत्वेन द्रव्यत्वावच्छेद्यत्वेनास्तित्वस्याप्यनभ्युपगन्तृत्वात्, एवञ्च द्रव्यत्वावच्छेद्यं यदस्तित्वं व्यवहारनयविषयः तत्सङ्ग्रहदृष्ट्याऽस्तित्वं न भवतीति तद्वस्तुगत्या पर्यायरूपत्वान्नास्तित्वमिति व्यवहारनयमूलकस्य स्यान्नास्त्येव चैत्र इति द्वितीयभङ्गस्य प्रतिपाद्यं चैत्रगतनास्तित्वं द्रव्यत्वावच्छेद्यं भवतीति, यथा च सङ्ग्रहनयविषयः सत्त्वेन महासामान्येन चैत्रस्यास्तित्वं तथा मैत्रादीनामप्यशेषाणां पदार्थानामिति सत्त्वेन सर्वं वस्त्वस्त्येवेति प्रथमो भङ्गः, एवं द्रव्यत्वादिना चैत्रस्य नास्तित्वलक्षणपर्यायो यथा व्यवहारनयविषयस्तथा मैत्रादीनामप्यशेषाणां पदार्थानामिति द्रव्यात्वादिना सर्वं वस्तु नास्त्येवेति द्वितीयो भङ्गस्समर्थितो भवति, निरुक्तस्यास्तित्वस्यैकस्य प्राधान्यविवक्षया प्रथमो भङ्गः निरुक्तस्य नास्तित्वस्यैकस्य प्राधान्यविवक्षया द्वितीयो भङ्गः निरुक्तास्तित्वनास्तित्वयोर्युगपत्प्राधान्यविवक्षायां युगपत्प्रधानीभूततदुभयप्रतिपादकस्य कस्यचिच्छब्दस्याभावात्तथाऽभिधेयपरिणत्यभावात्स्यादवक्तव्यमेव सर्वमित्येवं तृतीयो भङ्गः प्रवर्तते, अयं च भङ्गः

सङ्ग्रहनयान्न भवितुमर्हति, यस्य नयस्य यो विषयस्तमेव-विषयं प्राधान्येन स नयो विवक्षाविषयं कर्तुमर्हति, अस्तित्वस्य सङ्ग्रहनयविषयत्वेऽपि नास्तित्वस्य सङ्ग्रहनयाविषयत्वाद्युगपत्तदुभयप्राधान्यविवक्षा सङ्ग्रहनयान्न सम्भवति, एवं नास्तित्वस्य व्यवहारनयविषयत्वेऽपि निरुक्तस्यास्तित्वस्य व्यवहारनयाविषयत्वाद्युगपत्तदुभयप्राधान्यविवक्षा व्यवहारनयादपि न सम्भवतीति नायं भङ्गो व्यवहारनयादपि प्रवर्तितुमुत्सहते, ऋजुसूत्रनयस्तु न सङ्ग्रहनयाभिमतमस्तित्वमुररीकरोति न वा व्यवहारनयाभिप्रेतं नास्तित्वलक्षण-पर्यायमभिप्रैतीति सर्वथा स्वाविषयीभूतयोस्तयोर्युगपत्प्राधान्यविवक्षां कथं नाम स कर्तुमुत्सहते तथा च ऋजुसूत्रनयादप्ययं भङ्गो न भवेदेव यद्यपि, तथापि वर्त्तमानक्षणमात्रवृत्तित्वलक्षणसत्त्वमुररीकुर्वता शुद्धर्जुसूत्रेणासत्ख्यातिमभ्युपयताऽसत्ख्यातिबलादसतोः पराभिमतास्तित्वनास्तित्वयोर्युगपत्प्रधानीभूतयोर्विवक्षा कर्तुं शक्येति तथा विवक्षातो भवन्नयं भङ्ग ऋजुसूत्रनयप्रवर्तितः, निरुक्तसत्त्वासत्त्वोभयक्रमिकप्राधान्यविवक्षा सत्त्वासत्त्वाभ्युपगन्तृभ्यां सङ्ग्रहव्यवहारनयाभ्यां कर्तुं शक्येति सर्वं स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति तुरीयो भङ्गः सङ्ग्रहव्यवहारनयोभयप्रवर्तितः, सङ्ग्रहेण सत्त्वस्य विवक्षा, ऋजुसूत्रेण युगपत्प्रधानीभूतास्तित्वनास्तित्वोभयविवक्षा–ताभ्यां लब्धात्मलाभः स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सर्वमिति पञ्चमो भङ्गस्सङ्ग्रहर्जुसूत्रोभयनयसमुत्थः, व्यवहारे-

णासत्त्वस्य विवक्षा ऋजुसूत्रेण युगपत्प्रधानीभूतसत्त्वासत्त्वोभय-
विवक्षा–ताभ्यां जायमानः स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सर्व-
मिति षष्ठो भङ्गो व्यवहारर्जुसूत्रनयोभयमूलकः, सङ्ग्रहव्यवहार-
मूलकक्रमिकसत्त्वासत्त्वोभयप्राधान्यविवक्षाशुद्धर्जुसूत्रनयविजृ-
म्भितयुगपत्प्राधानीभूतसत्त्वासत्त्वोभयविवक्षाभिरुपजायमानः
स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव सर्वमिति सप्तमभङ्गः
सङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रनयैःप्रवर्तित इत्येवं सामान्यसप्तभङ्ग्यां नय-
त्रययोजनावद्विशेषसप्तभङ्ग्यामपि नयत्रययोजनाऽऽवश्यकी, यदा
चापरसङ्ग्रहविषयावान्तरद्रव्यत्वादि सामान्यरूपेण चैत्रादेर-
स्तित्वं विवक्ष्यते, द्रव्यत्वावान्तरचेतनत्वादिना चैत्रादेर्योऽ-
स्तित्वपर्यायो व्यवहारनयाभिप्रेतस्स द्रव्यत्वाद्यवान्तरसामा-
न्याभ्युपगन्त्रपरसङ्ग्रहदृष्ट्या नास्तित्वमेवेति तल्लक्षणं नास्तित्वं
चेतनत्वादिना विवक्षितं व्यवहारनयेन तदा तादृशास्तित्व-
प्रतिपादको द्रव्यत्वेनास्त्येव चैत्र इति प्रथमभङ्गोऽपरसङ्ग्रह-
नयसमुत्थः, तादृशनास्तित्वलक्षणपर्यायप्रतिपादकश्च चेत-
नत्वेन नास्त्येव चैत्र इति द्वितीयोभङ्गो व्यवहारनयसमुत्थः,
पूर्वोक्तदिशाऽत्रापि स्यादवक्तव्यं एव चैत्र इति तृतीयो भङ्ग-
श्शुद्धर्जुसूत्रनयप्रभवः, पूर्वोपदर्शितदिशाऽत्रापि तुरीयभङ्ग-
स्यापरसङ्ग्रहव्यवहारनयद्वयसमुत्थत्वं, पञ्चमभङ्गस्य सङ्ग्रह-
र्जुसूत्रनयद्वयसमुत्थत्वं, षष्ठभङ्गस्य व्यवहारर्जुसूत्रनयद्वय-
समुत्थत्वं सप्तमभङ्गस्यापरसङ्ग्रहव्यवहारर्जुसूत्रनयत्रयसमु-
त्थत्वमवसेयम्, चेतनत्वेन सर्वजीवानां सङ्ग्रहणादेकीकरणा-

चेतनत्वमपरसङ्ग्रहविषय इत्यादेरचेतनत्वे नास्त्येव चैत्र इति प्रथमभङ्गोऽपरसङ्ग्रहप्रभवः, स च सङ्ग्रहो जीवस्य सिद्ध-संसारिभेदेन द्वैविध्यं नाभ्युपैतीति न सिद्धसंसारित्वादिनाऽस्तित्वं तन्मते किन्तु व्यवहारनय एव, व्यवहारनयाभिमतं तथाऽस्तित्वं निरुक्तापरसङ्ग्रहदृष्ट्या नास्तित्वमेवेति कृत्वा संसारित्वेन नास्त्येव चैत्र इति द्वितीयो भङ्गो व्यवहारनय-समुत्थः, तृतीयभङ्गः पूर्ववदृजुसूत्रनयसमुत्थः, तुरीयादि-भङ्गानां पूर्वदिशा नयद्वयादिसमुत्थत्वं निभालनीयम्, यदि च महासामान्यस्य सत्त्वस्य साक्षाद्व्याप्यमेव द्रव्यत्वादिकम-परसङ्ग्रहविषयः तद्व्याप्यचेतनत्वादिश्च व्यवहारनयस्यैव विषयः, अन्यथा यद्यत्किञ्चिदपेक्षया सामान्यं तस्य सर्व-स्यापरसङ्ग्रहविषयत्वे, यन्न किञ्चिदपेक्षया सामान्यं तदन्त्य-विशेषात्मकं क्षणिकस्वरूपपर्यायस्वरूपं पर्यायार्थिकर्जुसूत्रादिनय-विषय एवेति नयान्तराविषयस्य व्यवहारनयविषयस्याभावाद्व्य-वहारनयस्यैवाभावः प्रसज्येतेति विभाव्यते, तदास्तु व्यवहार-नयस्यैव विषयश्चेतनत्वादिकम्, अवान्तरसामान्यविशेषाणां व्याप्यव्यापकभावमापन्नानामनेकविधत्वेन तद्ग्राहिणां व्यवहार-नयप्रभेदानामप्यस्त्यवान्तरवैलक्षण्यं व्यवहारनयत्वेन साजा-त्येऽपि, परसङ्ग्रहेण स्वविषयमहासामान्यसत्त्वेनैकीकृतानामपि द्रव्यगुणादीनामवान्तरद्रव्यत्वादिसामान्यलक्षणविशेषेणावह्री-यमाणत्वाद्विभज्यमानत्वाच्चद्विभागपटिष्ठव्यवहारनयविषयत्व-मिति कृत्वा द्रव्यत्वादीनामपि व्यवहारनयविषयत्वं चेतना-

चेतनलक्षणाशेषद्रव्याणां द्रव्यत्वेन रूपादि-ज्ञानादिलक्षणाशेषगुणानां गुणत्वेन च सङ्ग्रणात्सङ्ग्रहविषयत्वमिति कृत्वा द्रव्यत्वादीनामपरसङ्ग्रहविषयत्वमपीति व्यवहारनयविषयद्रव्यत्वादिविषयीकरणादपरसङ्ग्रहस्याशुद्धत्वं सङ्ग्रहनयविषयद्रव्यत्वादिविषयीकरणाद् द्रव्यत्वादौ प्रवर्तमानस्य व्यवहारस्याप्यशुद्धत्वं व्यवहाराविषये महासामान्यसत्त्वमात्रे प्रवर्तमानस्य परसङ्ग्रहस्यैव शुद्धत्वं क्षणमात्रस्थायित्वेनान्त्यविशेषमनभ्युपगम्य कतिपयकालस्थायित्वेनान्त्यविशेषमेवोररीक्रियमाणस्य व्यवहारस्य व्यवहारान्तरापेक्षया शुद्धत्वमीदृशीं नयमर्यादां समाश्रित्यापरसङ्ग्रहविषयेण द्रव्यत्वादिना चैत्रस्यास्तित्वे व्यवहारनयविषयेण चेतनत्वादिना चैत्रस्य नास्तित्वं, व्यवहारविशेषविषयेण चेतनत्वेन चैत्रस्यास्तित्वे तद्व्यवहारविलक्षणव्यवहारविशेषविषयेण संसारित्वेन चैत्रस्य नास्तित्वं, तथा व्यवहारविशेषविषयेण संसारित्वेन चैत्रस्यास्तित्वे तद्व्यवहारविलक्षणव्यवहारविशेषविषयेण मनुष्यत्वादिना चैत्रस्य नास्तित्वं व्यवहारविशेषविषयेण मनुष्यत्वादिना चैत्रस्यास्तित्वे तद्व्यवहारविलक्षणव्यवहारविषयेण ब्राह्मणत्वादिना नास्तित्वमित्येवं सामान्यविशेषभावापन्नविषयवैलक्षण्यसमाश्रयणप्रभवविवक्षावैचित्र्यनिमित्तकैकव्यवहारैकजातीयावान्तरविलक्षणनयभेदयोजनयाऽपि सामान्यसप्तभङ्गी-विशेषसप्तभङ्गीप्रवृत्तिस्संभवतीति, श्रीमद्भिर्यशोविजयोपाध्यायैरभिनवस्वमनीषया सर्वास्वर्थनयसमुत्थासु सप्त-

भङ्गीषु अवक्तव्यत्वप्रतिपादकेषु तृतीय-पञ्चम-षष्ठ-सप्तम-भङ्गेषु ऋजुसूत्रनययोजनोपदर्शितदिशा समादृता, अन्यैः पुनर्याभ्यां नयाभ्यामन्योन्यसंयुक्ताभ्यां प्रथमद्वितीयभङ्गयोः प्रवृत्तिस्ताभ्यामेव नयाभ्यां मिलिताभ्यां परस्परस्वविषय-सङ्घटनविवक्षासध्रीचीनाभ्यां भङ्गान्तराणामपि प्रवृत्तिः,

यतो वक्ता न ह्येकैकनयावलम्बी सप्तभङ्ग्यासम्भवति किन्तु सप्तनयावलम्बी स्याद्वाद्येव सप्तभङ्गीम्प्रयोक्तुमर्हति, स्याद्वादी च विवक्षितक्रमसङ्घटितस्वरूपमस्तित्वनास्तित्वोभयं प्रधानी-भूतमभ्युपगच्छन् तथाभूतार्थप्रतिपादकभङ्गोत्थापकं क्रमवि-वक्षोपनीतक्रमिकप्रधानीभूतास्तित्वनास्तित्वोभयविषयकत्वेन प्रत्येकमेकैकविषयकमपि नयद्वयं सम्मिलितमभिप्रैति तद्ब-लाच्च स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव च चैत्र इति भङ्गं यथा प्रयुङ्क्ते, तथा विवक्षितयौगपद्यसङ्घटितस्वरूपं प्रधानीभूतास्तित्वना-स्तित्वोभयस्वरूपं तथाऽभिधेयपरिणत्यभावादवक्तव्यभाव-मापन्नमभ्युपगच्छन् तथाभूतार्थप्रतिपादकभङ्गोत्थापकं युग-पद्विवक्षोपनीतयुगपत्प्रधानीभूतास्तित्वनास्तित्वोभयस्वरूपा वक्तव्यत्वविषयकत्वेन प्रत्येकमेकैकविषयकं तदविषयकमपि सम्मिलितं नयद्वयमभिप्रैति प्रत्येकावस्थायां तदविषयकत्वेन युगपत्प्रधानीभूततदुभयविवक्षां कर्तुमसमर्थत्वेऽपि सम्भावना-लक्षणोत्प्रेक्षाविशेषोपनीतसम्मेलनविशेषावस्थायां युगपत्प्र-धानीभूतास्तित्वनास्तित्वोभयविषयकत्वतो युगपत्प्रधानीभूत-तदुभयविवक्षाम्प्रतिसमर्थत्वेन तथा विवक्षातस्तथा सम्मि-

लितनयद्वयबलात्स्यादवक्तव्य एव चैत्र इति भङ्ग प्रयुङ्क्त इति ऋजुसूत्रनयानाश्रयणेऽपि नासम्भवस्तृतीयभङ्गस्येत्यभिप्रायः ॥

सप्तभङ्ग्या एकैकनयप्रभवत्वाभावे नयसप्तभङ्गीप्रमाणसप्तभङ्गीत्येवं सप्तभङ्ग्या द्वैविध्यं न भवेत्, किन्त्वेकस्य नयान्तरसव्यपेक्षस्य प्रमाणभावमापन्नस्य सप्तभङ्गीमूलत्वेन प्रमाणरूपैव सप्तभङ्गीति प्रमाणसप्तभङ्गीत्येकभेद एव सप्तभङ्ग्या इति तु नाशङ्क्यं यतः–

"कालात्मरूपसम्बन्धाः संसर्गोपक्रिये तथा ॥
गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥ १ ॥
इति" वचनसङ्गृहीतैः कालादिभिरष्टभिः द्रव्यार्थिकनयादेशादेकस्य प्रकृतस्यास्तित्वादिधर्मस्यान्यैरशेषैरपि धर्मैरभेदवृत्तिप्राधान्यात्पर्यायार्थिकनयादेशादभेदोपचाराद्वैकधर्मप्रतिपादनमुखेनाशेषधर्मप्रतिपादकत्वलक्षणं सकलादेशत्वं प्रत्येकं सप्तानामपि भङ्गानामाश्रीयते तदा सप्तापि भङ्गाः अनन्तधर्मात्मकवस्तुप्रतीतिलक्षणप्रमाजनकत्वेन प्रमाणमिति सप्तभङ्गसमाहारलक्षणा सप्तभङ्गी प्रमाणसप्तभङ्गीति गीयते.

कालादिभिरष्टभिः पर्यायार्थिकनयादेशाद्भेदवृत्तिप्राधान्याद्द्रव्यार्थिकनयादेशाद्भेदोपचाराद्वा प्रकृतस्यैकस्य धर्मस्य धर्मान्तरैस्समं भेद एवेति विभिन्नधर्मैकप्रतिपादकत्वमेव

प्रत्येकं भङ्गानामिति एकैकधर्ममात्रप्रतिपादकत्वलक्षणं विकलादेशत्वं सप्तानामपि भङ्गानामाश्रीयते तदा सप्तापि भङ्गा अस्तित्वनास्तित्वादिसप्तविधधर्ममात्रप्रतिपादका न त्वशेषधर्मप्रतिपादकाः सप्तापि धर्मा अनन्तधर्मात्मकस्य वस्तुनोऽशा एवेति "प्रकृतवस्त्वंशग्राही तदितरांशाप्रतिक्षेपी अध्यवसायविशेषो नय" इति नयलक्षणयोगिसप्तविधधर्मलक्षणवस्त्वंशप्रतिपत्तिजनकत्वेन निरुक्तसप्तभङ्गसमाहारलक्षणा सप्तभङ्गी नयवाक्यमिति गीयते, द्रव्यार्थिकनयादेशपर्यायार्थिकनयादेशतस्सप्तभङ्ग्यास्सकलादेशत्वविकलादेशत्वप्रयुक्तप्रमाणसप्तभङ्गीनयसप्तभङ्गीत्येवं भेदव्यवस्थितिः द्रव्यार्थिकनयपर्यायार्थिकनयस्वरूपप्रतिपत्तितः सुकरा, तथा प्रत्येकं भङ्गेषु सङ्ग्रहव्यवहारादिनययोजनाऽपि सङ्ग्रहादिद्रव्यार्थिकनयावान्तरभेद-ऋजुसूत्रादिपर्यायार्थिकनयावान्तरभेदज्ञानतः सुकरेति सामान्यतो विशेषतश्च सप्तभङ्गी स्वरूपप्रतिपत्तये सामान्यतो विशेषतश्च नयस्वरूपनिरूपणं प्राचीनसूरिप्रपञ्चितमेवोपदर्श्यते ।

तथाहि—"श्रुतप्रमाणप्रतिपन्नस्यानन्तधर्मात्मकवस्तुनोंऽशग्राही तदितरांशाप्रतिक्षेपी अध्यवसायविशेषो नयः इति" नयसामान्यलक्षणम्, श्रुतेत्याद्यंशाप्रतिक्षेपीत्यन्तस्यानुपादाने पूर्वस्य प्रकृतस्य तत्पदपरामर्श्यस्याभावात्तदितरांशाप्रतिक्षेपीत्यस्य स्थानेंऽशाप्रतिक्षेपीत्येव

वक्तव्यं भवेत् एवञ्च दुर्नयस्यापि स्वविषयीभूतांशाप्रतिक्षेपित्वेनाऽध्यवसायविशेषस्वरूपत्वेन चोक्तलक्षणालिङ्गितत्वं स्यात्तदुपादाने च प्रकृतांशस्य तत्पदपरामर्श्यस्य सद्भावात्तदितरांशाप्रतिक्षेपीत्यस्योपादातुं शक्यत्वेन स्वविषयांशातिरिक्तांशप्रतिक्षेपिणि दुर्नये तदितरांशाप्रतिक्षेपित्वाभावान्नातिव्याप्तिः, अध्यवसायविशेषेत्यत्राध्यवसायपदोपादानात्सप्तभङ्ग्यात्मकप्रमाणवाक्यप्रभवप्रदीर्घसन्तताध्यवसायैकदेशेंऽशग्राहिणि तदितरांशाप्रतिक्षेपिणि नातिव्याप्तिः वस्त्वंशस्य वस्तुत्वाभाववदध्यवसायैक देशस्याप्यध्यवसायत्वाभावात्, प्रकृतवस्त्वंशत्वव्यापकविषयशून्यत्वलक्षणविशेषत्ववदर्थकस्य विशेषपदस्योपादानाच्च रूपादिग्राहिणि रसाद्यप्रतिक्षेपिण्यपायादिप्रत्यक्षप्रमाणे नातिव्याप्तिः, प्रत्यक्षप्रमाणस्यानन्तधर्मात्मकवस्तुग्राहिणः प्रकृतवस्त्वंशत्वव्यापकविषयताकत्वेन तच्छून्यत्वाभावादिति, मुख्यतो ज्ञानलक्षणाध्यवसायविशेषस्यैव नयत्वं, नयजन्योपदेशे च नयपदोपचारान्नयव्यपदेश इति तत्रोक्तलक्षणस्यासत्त्वेऽपि नाव्याप्तिः, अलक्ष्ये लक्षणागमनस्याव्याप्तिरूपत्वाभावात् ।

निरुक्तलक्षणलक्षितश्च नयो द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकभेदेन द्विविधः तत्र "द्रव्यमात्रग्राही नयो द्रव्यार्थिकः" इति द्रव्यार्थिकनयस्य लक्षणम्, द्रव्यार्थिकनयो हि द्रव्यमेव तात्त्विकमभ्युपगच्छति, उत्पादस्याविर्भावमात्रत्वं विनाशस्य तिरोभावमात्रत्वं तन्मते, न पुनस्तदतिरिक्तावुत्पादविना-

शौ तत्सम्मतौ पर्यायमात्रग्राही पर्यायार्थिकः, अयं ह्युत्पाद-विनाशलक्षणपर्यायमात्रमभ्युपगच्छति, सजातीयक्षणपरम्परात एव प्रत्यभिज्ञानप्रमाणस्योपपत्तेः सजातीयक्षणपरम्परातिरिक्तं द्रव्यं नायमुररीकरोति, द्रव्यार्थिके द्रव्यमात्रग्राहित्वं नाम प्राधान्येन द्रव्यमात्राभ्युपगन्तृत्वं, पर्यायार्थिके पर्यायमात्र ग्राहित्वं नाम प्राधान्येन पर्यायमात्राभ्युपगन्तृत्वं, तेन द्रव्यार्थि-कस्य गौणतया पर्यायाभ्युपगन्तृत्वेऽपि पर्यायार्थिकस्य गौण-तया द्रव्याभ्युपगन्तृत्वेऽपि नोक्तलक्षणासंभवो न वा तयोर्दु-र्नयत्वापत्तिः, द्रव्यार्थिकस्य सर्वथा पर्यायप्रतिक्षेपित्वस्य पर्यायार्थिकस्य सर्वथा द्रव्यप्रतिक्षेपित्वस्य दुर्नयत्वापादक-स्यानभ्युपगमात्, पूज्यश्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणप्रभृ-तिसैद्धान्तिकमते-नैगमः सङ्ग्रहो व्यवहारः ऋजुसूत्रश्चेति चत्वारो भेदा द्रव्यार्थिकस्य, पर्यायार्थिकस्य तु शब्दः सम-भिरूढः एवम्भूतश्चेति त्रयोभेदाः, नव्यानां वादिमुख्यानां श्रीसिद्धसेनदिवाकराणां मते द्रव्यार्थिकस्य नैगमः सङ्ग्रहो व्यवहारश्चेति त्रयो भेदाः, पर्यायार्थिकस्य पुनः ऋजुसूत्रः शब्दः समभिरूढः एवम्भूतश्चेति चत्वारो भेदाः, तत्र सैद्धान्तिकाः-

"उज्जुसुअस्स एगे अणुवउत्ते एगं दव्वावस्सयं पुहुत्तं णेच्छइ" इत्ति

सूत्रप्रामाण्यादृजुसूत्रस्य द्रव्यार्थिकत्वमामनन्ति, श्रीसिद्धसेनदिवाकरास्तु अतीतानागत-परकीय-

भेदपृथक्त्वपरित्यागादृजुसूत्रेण स्वकार्यसाधकत्वेन स्वकीयवर्तमानवस्तुन एवाभ्युपगमान्नायं तुल्यांश-ध्रुवांशलक्षणद्रव्यमभ्युपगच्छति, अत एवासङ्कटितभूत-भाविपर्यायकारणस्वरूपद्रव्यत्वमपि नायं स्वीकरोति, उक्त-सूत्रं त्वनुपयोगांशमादाय वर्त्तमानावश्यकपर्याये द्रव्यपदोपचारमालम्ब्य प्रवृत्तं, पर्यायार्थिकेन मुख्यद्रव्य-पदार्थस्यैव प्रतिक्षेपात्, अध्रुवधर्माधारांशद्रव्यमपि नायमुपैत्यत ऋजुसूत्रो न द्रव्यार्थिक इति प्राहुः, इत्थं मतद्वयेऽपि नयस्योत्तरभेदाः, नैगमसङ्ग्रहव्यवहारर्जु-सूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूतभेदात्सप्त, नैगमस्य सामा-न्यग्राहिणः सङ्ग्रहे, विशेषग्राहिणो व्यवहारे चान्तर्भेदात्, षडेव नयाः, नैगमस्यातिरिक्तत्वेऽपि शब्दपदेनैव साम्प्रत-समभिरूढैवम्भूतानां त्रयाणां सङ्ग्रहान्नैगमसङ्ग्रह-व्यवहारर्जुसूत्रशब्दभेदात्पञ्चनयाः, नैगमस्यातिरिक्त-त्वाभावे साम्प्रतादीनां शब्दनयत्वेन सङ्ग्रहे च सङ्ग्रहव्य-वहारर्जुसूत्रशब्दभेदाच्चत्वारो नया इत्येवमुत्तरनयस-सङ्ख्याविषये पक्षा अवगन्तव्याः ।

एते च नयाः प्रदेश-प्रस्थक-वसतिदृष्टान्तैर्यथा-क्रमं शुद्धिभाजः, तत्र नैगमनयो धर्माधर्माकाशजीव-स्कन्धानां तद्देशस्य चेति षण्णां प्रदेशं स्वीकरोति, सङ्ग्र-हस्तु धर्माधर्माकाशजीवस्कन्धानां पञ्चानामेवप्रदेशमुररीकरोति

धर्मदेशस्य धर्मीयत्वेन तत्प्रदेशस्यापि धर्मीयत्वात् एवं धर्मादिदेशानामपि प्रदेशा अधर्मादिप्रदेशा एवावगन्तव्याः,

"दासेन मे खरः क्रीतो दासो मम खरोऽपि मे इति" न्यायात्,

व्यवहारस्तु यस्यैकस्यानेकसम्बन्धित्वं तस्यैवानेकसम्बन्धितया व्यपदेशो भवति यथा बहुमूल्यस्यैकस्य हिरण्यस्याविभक्तस्य भ्रातृपञ्चकस्वत्ववतः पञ्चानां भ्रातॄणां हिरण्यमिति व्यपदेशः, प्रदेशस्तु यो धर्मस्य तदन्य एवाधर्मस्य तथाकाशादेरित्येकस्य प्रदेशस्य धर्माधर्मादिपञ्चसम्बन्धित्वाभावात्पञ्चानां प्रदेशः इति व्यपदेशो न सम्भवति किन्तु पञ्चविधः प्रदेश इति मन्यते । ऋजुसूत्रस्तु मन्यते—पञ्चविधः प्रदेश इति वक्तुं न शक्यते, यतः पञ्चविधत्वस्य प्रत्येकं प्रदेशेऽन्वये धर्मास्तिकायप्रदेशः पञ्चविधः अधर्मास्तिकाय प्रदेशः पञ्चविधः आकाशास्तिकायप्रदेशः पञ्चविधः जीवास्तिकायप्रदेशः पञ्चविधः स्कन्धप्रदेशः पञ्चविधः इत्येवं प्रदेशस्य पञ्चविंशतिविधत्वं प्रसज्येतेत्यतो भाज्यः प्रदेशः स्याद्धर्मास्तिकायस्य प्रदेशः स्यादधर्मास्तिकायस्य प्रदेशः स्यादाकाशास्तिकायस्य प्रदेशः स्याज्जीवास्तिकायस्य प्रदेशः स्यात्स्कन्धस्य प्रदेश इति । शब्दनयस्तु ब्रूते प्रदेशप्रदेशिमद्भावस्य काल्पनिकत्वेन भजनीयत्वे कल्पना विकल्परूपेच्छैवेति धर्मास्तिकायप्रदेशत्वेन विकल्पितस्तथा विकल्पदशायां

यो धर्मास्तिकायस्य प्रदेश इत्येवं व्यपदेश्यस्स एव तदन्यथा विकल्पदशायां न धर्मास्तिकायस्य प्रदेश इत्येवं व्यपदेश्य इत्यतः स्याद्धर्मास्तिकायस्य प्रदेशः एतद्दिशा स्यादधर्मास्तिकायस्य प्रदेश इति भजना यथा ऋजुसूत्रसम्मता न वस्तुपरतन्त्रा किन्त्विच्छाप्रभवा विकल्परूपा पुरुषपरतन्त्रैव एवञ्च पुरुषेच्छाया नियन्तुमशक्यत्वान्न प्रतिनियतमुपादायैव भजनेति यं धर्मास्तिकायस्य प्रदेशं परिकल्प्य स्याद्धर्मास्तिकायस्य प्रदेश इति भजना, तमुपादाय स्यादधर्मास्तिकायस्य प्रदेश इत्याद्यापि भजना प्रसज्येतेत्यतो धर्माधर्माकाशप्रदेशानां धर्माधर्माकाशरूपतया धर्मे धर्म इति वा प्रदेशो धर्मः अधर्मेऽधर्म इति वा प्रदेशोऽधर्मः, आकाशे आकाश इति वा प्रदेश आकाश इत्येवमभिधेयम्, जीवानां स्कन्धानाञ्चानन्तत्वादधिकृतैकजीवप्रदेशस्य सकलजीवात्मकत्वमधिकृतैकस्कन्धप्रदेशस्य सकलस्कन्धात्मकत्वञ्च न सम्भवतीति जीवे जीव इति वा प्रदेशो जीवः स्कन्धे स्कन्ध इति व्यपदेशो न, किन्तु विवक्षितप्रदेशे सकलसन्तानैकदेशत्वविवक्षितसन्तानात्मकत्वप्रतिपादनाय जीवे जीव इति वा प्रदेशो नो जीवः, स्कन्धे स्कन्ध इति वा प्रदेशो नो स्कन्ध इत्येवमभिधेयम् । समभिरूढस्तु कथयति धर्मे प्रदेशः इत्यादिवाक्यात् कुण्डे बदर इत्यादिवाक्यादिव भेदप्रतीतिप्रसङ्गभयेन 'वने तिलका ब्राह्मणे श्रोत्रिय' इत्यादौ क्वचिदेवाभेदे सप्तमी प्रयोगसम्भवेऽप्यन्यत्राधाराधेयभावबोधिका सप्तमी भेदनियतेत्यतोऽ-

भेदप्रकारकबोधार्थं कर्मधारयसमासस्यैवाश्रयणीयत्वेन धर्मश्चासौ प्रदेशो धर्मप्रदेशः अधर्मश्चासौ प्रदेशोऽधर्मप्रदेश इत्याद्येव वक्तव्यमिति, एवम्भूतस्तु ब्रूते धर्मादीनां देशप्रदेशौ धर्मादिभिर्भिन्नावभिन्नौ वा, आद्ये धर्मस्य देशो धर्मस्य प्रदेश इति षष्ठ्यर्थस्य सम्बन्धस्यानुपपत्तिः भेदे सम्बन्धायोगात्, अन्यथा भिन्नत्वाविशेषादधर्मास्तिकायादिप्रदेशतयाऽभ्युपगतस्यापि धर्मस्य प्रदेश इति व्यवहारभाजनत्वं स्यात्, द्वितीये घटो घट इतिवद्धर्मः प्रदेश इति सहोक्त्यनुपपत्तिरतो देशप्रदेशकल्पनारहितमखण्डमेव वस्त्वभिधातव्यम्, ननु 'आकाशे विन्ध्याद्रिर्वर्तते हिमालयोऽपि,' इत्येवं लोके प्रतीयमानस्य तयोरसामानाधिकरण्यस्योपपत्तये यत्प्रदेशावच्छेदेनाकाशे विन्ध्याद्रिस्तत्प्रदेशावच्छेदेन न हिमालयो यत्प्रदेशावच्छेदेन तत्र हिमाचलो न तत्प्रदेशावच्छेदेन विन्ध्याचल इत्यस्योपगन्तव्यत्वेन विरुद्धयोर्विन्ध्यतदभावयोर्हिमतदभावयोर्विन्ध्यहिमयोश्चैकत्राकाशे सत्त्वोपपादनायाकाशस्य धर्मादेश्च देशप्रदेशसिद्धिः, तत्सम्बन्धिन एव तद्वृत्तिधर्मावच्छेदकत्वमिति नियमेन देशप्रदेशादेरवच्छेदकतया सिद्धस्सममाकाशादेस्सम्बन्धसिद्धिरपीति चेन्, न, आकाशे विन्ध्यादयो वर्त्तन्त इत्यस्यैवानभ्युपगमात्, तादात्म्यतदुत्पत्त्यन्यतरानुपपत्त्या परेण समं सम्बन्धस्यैवानभ्युपगमादिति ।

मगधदेशप्रसिद्धो धान्यमानविशेषः प्रस्थकः, तदर्थं वनगमन-दारुच्छेदन-क्षणनोत्किरण-लेखन-प्रस्थक-

पर्यायाविर्भावेषु यथोत्तरशुद्धा नैगमभेदाः, अतिशुद्धनैगमस्तु आकुट्टितनामानं प्रस्थकमाह, प्रस्थकहेतुकाष्ठानयनार्थं गच्छन् पुरुषः केनचित्किं करोषीति पृष्टः प्रस्थकं करोमीत्येव वर्त्तते, एवं क्षणनादिक्रियाकाले प्रस्थकपर्यायाविर्भावकालेऽपि च, तत्र वनगमनादिकं न प्रस्थकः, किन्तु परम्परया प्रस्थकनिमित्तम् , पारम्पर्येऽपि च विप्रकर्षसन्निकर्षतारतम्याच्छुद्धितारतम्यं नैगमाभिप्रायविशेषाणाम् , तत्र वनगमनादौ प्रस्थकत्वाभावेऽप्युपचारात्प्रस्थकव्यपदेश इत्यशुद्धता बोध्या, प्रस्थकपर्यायनिष्पत्त्यनन्तरं निर्णीतप्रामाण्यकान्यप्रस्थकमितधान्यान्यूनाधिकावस्थानपरीक्षणतः प्रस्थक इति नामकं यदापामरप्रसिद्धं तत्प्रस्थकमनुपचरितं गृह्णन् नैगमाभिप्रायोऽतिविशुद्ध इति। व्यवहारेऽप्युक्तदिशैव प्रस्थके भावनाऽवसेया। सङ्ग्रहस्तु नाशुद्धः किन्तु शुद्ध एव ततो यथा नैगमव्यवहारौ परम्परया प्रस्थककारणे वनगमनादौ प्रस्थकलक्षणकार्योपचारं कृत्वा प्रस्थकव्यपदेशं कुरुतः तथा तत्र नायं प्रस्थकव्यपदेशं करोति, निष्पन्नेऽपि प्रस्थकस्वरूपे धान्यमापनलक्षणस्वकार्याकरणकाले प्रस्थकोऽयमिति न व्यपदिशति, किन्तु धान्यमापनविशेषलक्षणक्रियाकरणवेलायामेव प्रस्थकोऽयमिति स्वीकरोति, असाधारणतदर्थक्रियाकारित्वस्यैव तदात्मकत्वप्रयोजकत्वेन धान्यमापनकार्याकरणकाले यथा न तत्र प्रस्थकव्यपदेशस्तथा तत्र घटादिकार्यजलानयनादिकार्यकारित्वस्याप्यभावेन घटाद्या-

त्मकत्वाभावाद् घटादिव्यपदेशप्रसङ्गोऽपि न भवतीति। ऋजु-सूत्रस्तु मापकस्य काष्ठनिर्मितप्रस्थकस्याभावे परिच्छेद्यस्य माप्यस्य धान्यस्याभावे चैतत्परिमितं धान्यमित्याकारकपरिच्छेदलक्षणमानोपपत्तिर्न भवतीत्यतो निष्पन्नस्वरूपोऽर्थक्रियाहेतुः प्रस्थकः तत्परिच्छिन्नं धान्यमित्युभयं प्रस्थक इत्याह करणत्व-विवक्षा—कर्मत्वविवक्षाभेदादेकस्यापि धान्यस्योभयरूपानुप्रवेशतः प्रस्थकेन धान्यं मीयत इत्यस्योपपत्तिरिति। प्रस्थकविषये समानाभिप्रायाश्शब्दसमभिरूढैवम्भूताख्यास्त्रयोऽपि शब्दनयाः प्रस्थकेन धान्यं मीयते इत्याकारकधान्यमाननिश्चयलक्षणप्रयोजनाभिज्ञस्वरूपप्रस्थकाधिकारज्ञगतात्प्रस्थकनिर्माणकर्तृरूपप्रस्थकर्तृगताद्वा प्रस्थकोपयोगादतिरिक्तं प्रस्थकं नाङ्गीकुर्वन्ति किन्तूक्तोपयोग एव प्रस्थक इत्यामनन्ति।

वसतिनिदर्शनेन नैगमादीनां विशुद्धितारतम्यं यथा वसतिराधारता, सा च यथोत्तरशुद्धानां नैगमभेदानां लोके तिर्यग्लोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे तद्दक्षिणार्धे मध्यखण्डे पाटलिपुत्रे देवदत्तगृहे तन्मध्यगृहे चावसेया, अतिशुद्धनैगमस्तु वसन् वसतीत्याह, इदमत्रैदम्पर्यम्—देवदत्तो वसतीत्युक्ते, कुत्र वसतीति जिज्ञासायां नैगमाभिप्रायविशेषाश्रयणेन लोके देवदत्तो वसतीति विपुलाधारमुपादायोत्तरप्रवृत्तिः, क्रमेणोत्तरोत्तरसङ्कुचिताधारावलम्बनेन विशुद्धविशुद्धतरनैगमाभिप्रायविशेषतस्तिर्यग्लोके देवदत्तो वसतीत्याद्युत्तरप्रवृत्तिः

अतिशुद्धनैगमभिप्रायविशेषेण तूपचारामिश्रितेन विद्यमाननिवासानुभवनसमानकालीनतदाधारत्वावलम्बनतो वसन् वसतीत्युत्तरप्रवृत्तिरिति, यद्यप्याधारताऽऽधारस्वरूपा संयोगस्वरूपा वा गृहकोण इव लोकेऽप्येकक्षेत्रतयाऽविशिष्टेति किमत्र विशुद्धितारतम्यं, न ह्यत्र प्रस्थकन्यायवद्गौणमुख्यविषयकृतोविशेषोऽस्तीति, तथापि स्थूलदृष्टौ विशेषानवभासेऽपि सूक्ष्मेक्षिकायां विशेषोऽवभासत एव, यतो देवदत्तस्य गृहकोणक्षेत्रेण यस्संयोगस्स न पराभिमतो गुणः, किन्तु पर्याय एव, तद्रूपेण परिणतस्य गृहकोणक्षेत्रस्य बह्वाकाशव्यापित्वाल्पाकाशव्यापित्वलक्षणविरुद्धधर्माध्यासतोऽखण्डक्षेत्राल्लोकादितस्संयोगविशेषरूपेण परिणतात्पृथक्कृतस्य विशुद्धिप्रकर्षापकर्षसम्भवात्, कृत्स्नलोके निरुपचरितेऽवसतो देवदत्तस्योपचारतो लोकपदात्तद्देशोपस्थितौ सत्यामेव लोके वसामीत्यत्रान्वयोपपत्तिः, वृक्षे कपिसंयोग-इत्यादावपि वृक्षपदस्य तद्देशे उपचारत एवान्वयोपपत्तिरित्युपचाराश्रयणेनान्वये विशुद्ध्यपकर्षः, उपचारानाश्रयणेनान्वये तु विशुद्ध्युत्कर्षः, प्रयोगे तु क्व इत्याद्याकाङ्क्षाबाहुल्याबाहुल्यकृतं विशुद्ध्यविशुद्धिवैचित्र्यं, लोके वसतीत्युक्तौ लोके क्व वसतीत्याकाङ्क्षा समुपजायते तन्निवृत्त्यर्थं तिर्यग्लोके वसतीत्युक्तावपि तिर्यग्लोके क्व वसतीत्याकाङ्क्षा भवत्येव, तन्निवृत्त्यर्थं जम्बूद्वीपे वसतीत्युक्तावपि क्वेत्याकाङ्क्षा जायतएव, एवमग्रेऽपि, एवञ्च प्रथमतो लोके वसतीत्युक्तौ निराकाङ्क्षबोधं यावद्यावत्य

उत्तरोत्तरक्रमेण क्वेत्याद्याकाङ्क्षाः, ततः क्रमेण तिर्यग्लोके वसतीत्यादावल्पीयस्य एव ता इति यदपेक्षया यत्र क्वेत्याद्याकाङ्क्षा बाहुल्यं तत्र तदपेक्षयाऽविशुद्धिः, यत्र यदपेक्षया क्वेत्याद्याकाङ्क्षा न्यूनसङ्ख्याकाः तत्र तदपेक्षया विशुद्धिः, वसन् वसतीत्यत्र तु क्वेत्याकाङ्क्षाया एवाभावात्तथाभूत नैगमाभिप्राये न किञ्चिदपेक्षयाऽविशुद्धत्वमिति सर्वतो विशुद्धत्वं तस्यावसेयमिति, व्यवहारेऽप्ययमेव मार्गोऽवसेयः पाटलिपुत्रवासिनः पाटलीपुत्रादन्यत्र गतस्य यः पाटलीपुत्रेऽयं वसतीति व्यवहारः स बहुकालप्रतिबद्धतद्गतगृहकुटुम्बस्वामित्वाद्यर्थे वासित्वपदोपचाराद्भवतीत्यशुद्धः अतिशुद्धस्तूपचारेणामिश्रितो वसन् वसतीति व्यवहारोऽतिशुद्धः, तदभिप्रायेण तु पाटलीपुत्रादन्यत्र गते पुरुषे नाद्य सोऽत्र वसतीति व्यवहार इति। सग्रङ्हस्तूपचारं नाश्रयते तेन संस्तारकेन सहैव संस्तारकारूढस्य संयोगो न गृहादिनेति संस्तारकारूढ एव वसतीति सोऽभिमन्यते, तन्मते मूले वृक्षः कपिसंयोगीत्यस्यापि मूलाभिन्नो वृक्षः कपिसंयोगीत्येवार्थो न तु मूलावच्छेदेन वृक्षः कपिसंयोगीत्यर्थः इति। ऋजुसूत्रस्तु येष्वाकाशप्रदेशेषु क्षणिकेषु क्षणिकस्य देवदत्तादेर्यदैवावगाढो वर्त्तमानसमये तदैव तेषु तस्य वासमभ्युपैति नातीतानागतसमययोः, संस्तारके तद्वसतिस्तु गृहकोणादावपि तद्वसत्यभ्युपगमापत्तिभयान्नाभ्युपेया, संस्तारकावच्छिन्नव्योमप्रदेशेष्वपि न तद्वसतिः किन्तु तेषु संस्तारकस्यैव वसतिः, संस्ता-

रकगृहकोणादौ तद्वसतीति व्यवहारस्तु प्रत्यासत्तिदोषप्रभवभ्रान्ति-निबन्धन इति। शब्दसमभिरूढैवम्भूताख्यास्त्रयः शब्द-नयाः पुनः अन्यत्रान्यस्य सम्बन्धाभावात्स्वात्मन्येव वसति-मभ्युपगच्छन्तीति, एवमुक्तनिदर्शनैस्तेषां यथाक्रमं विशु-द्धिरवधार्या ।

लक्षणेन च लक्ष्यस्येतरभिन्नत्वेनावगतिर्भवतीत्ये-तदर्थमेतेषां लक्षणान्युपदर्श्यन्ते, तत्र सामान्यविशेषो-भयाभ्युपगन्तृव्यवसायविशेषत्वं नैगमत्वमिति नैगमस्य लक्षणं न सम्भवति भेदाभेदोभयोऽभ्युपगन्तृव्य-वसायविशेषस्वरूपे नैगमविशेषेऽव्याप्तेः, सामान्यविशेषो-भयाभ्युपगन्तृव्यवसायविशेषादिरूपे नैगमेऽव्याप्त्या च भेदाभेदोभयाभ्युपगन्तृव्यवसायविशेषत्वादिकमपि नैगमस्य लक्षणं न भवत्येव, तथा सामान्यविशेषोभय-भेदाभेदोभयनित्यानित्योभयाद्यभ्युपगन्तृत्वञ्च प्रत्येकं न क्वापीत्यसम्भवदोषग्रस्तत्वादेव लक्षणं न युज्यते किन्तु सामान्यविशेषोभयाभ्युपगन्तृव्यवसा-यविशेषवृत्तिनयत्वन्यूनवृत्तिजातिमत्त्वं नैगमस्य लक्ष-णम्, सामान्यमात्राभ्युपगन्तृव्यवसायविशेषलक्षणे सङ्ग्रहेऽ-तिव्याप्तिवारणार्थं विशेषस्याभ्युपगमविषयतयोपादानम्, विशे-षमात्राभ्युपगन्तृव्यवसायविशेषलक्षणे व्यवहारेऽतिव्याप्ति-निरासार्थं सामान्यस्याभ्युपगमविषयतयोपादानम्, नयत्व-

न्यूनवृत्तित्वस्य जातिविशेषणतयाऽनुपादाने सकलनयवृत्तिनयत्वजातिमादाय व्यवहारनयादावतिव्याप्तिरिति तद्वारणाय नयत्वन्यूनवृत्तित्वस्य जातिविशेषणतयोपादानम् , यत्किञ्चिन्नैगमव्यवहारान्यतरत्वादिकमादाय व्यवहारेऽतिव्याप्तिवारणाय जात्युपादानं, नैगमत्वजातिमादाय सर्वत्र नैगमे लक्षणसमन्वयः। अत्र गौणतया विशेषाभ्युपगन्तृत्वे सति मुख्यतया यः सामान्याभ्युपगमः यश्च गौणतया सामान्याभ्युपगन्तृत्वे सति मुख्यतया विशेषाभ्युपगमस्तदुभयवृत्तित्वमेव सामान्यविशेषोभयाभ्युपगन्त्रध्यवसायवृत्तित्वमित्यनेन विवक्षितं, तेन यः कणादाभिमतो गौणतया विशेषानभ्युपगन्तृत्वस्वतन्त्रसामान्यप्राधान्याभ्युगमो यश्च गौणतया सामान्यानभ्युपगन्तृत्वस्वतन्त्रविशेषप्राधान्याभ्युपगमस्तदुभयमादाय दुर्नयनैगमवृत्तिजातिविशेषमादाय न दुर्नयात्मके नैगमेऽतिव्याप्तिः। सङ्ग्रहत्वस्य गौणतया विशेषाभ्युपगन्तृत्वे सति मुख्यतया सामान्याभ्युपगन्तरि सङ्ग्रहे वृत्तित्वेऽपि गौणतया सामान्याभ्युपगन्तृत्वे सति मुख्यतया विशेषाभ्युपगन्तरि नये न वृत्तित्वं, व्यवहारत्वस्य गौणतया सामान्याभ्युपगन्तृत्वे सति मुख्यतया विशेषाभ्युपगन्तरि नये वृत्तित्वेऽपि गौणतया विशेषाभ्युपगन्तृत्वे सति प्राधान्येन सामान्याभ्युपगन्तरि नये न वृत्तित्वमिति न सङ्ग्रहत्व-व्यवहारत्वजातिमादाय सङ्ग्रहव्यवहारयोरतिव्याप्तिः। यद्यपि कस्यचिन्नैगमस्य गौणतया विशेषाभ्युपगन्तृत्वे सति प्रधानतया सामान्याभ्युपगन्तृत्वमेव

कस्यचित्पुनः गौणतया सामान्याभ्युपगन्तृत्वे सति प्रधानतया विशेषाभ्युपगन्तृत्वमेव, तथापि यो नैगमविशेषः गौणतया यत्किञ्चिद्विशेषं प्रधानतया यत्किञ्चित्सामान्यञ्च स्वीकरोति तथा गौणतया यत्किञ्चित्सामान्यं प्रधानतया यत्किञ्चिद्विशेषञ्चाभ्युपैति तं नैगमविशेषमुपादाय नैगमत्वजातेरुक्तजातिस्वरूपतया ग्रहणसम्भवेन तादृशजातिमत्त्वस्य सर्वत्र नैगमे सत्त्वान्न कुत्राप्यव्याप्तिः प्रमाणस्य प्रधानतयैव सामान्यविशेषोभयाभ्युपगन्तृत्वं न त्वेकस्य गौणतयाऽपरस्य मुख्यतयाऽभ्युपगन्तृत्वं ततो न प्रमाणत्वं निरुक्तसामान्यविशेषोभयाभ्युपगन्तृवृत्ति न वा नयत्वन्यूनवृत्तितज्जातिरपीति न प्रमाणेऽतिव्याप्तिरिति बोध्यम् ।

अयञ्च नैगमो नाम–स्थापना–द्रव्य–भावाख्यान् चतुरोऽपि निक्षेपानभ्युपैति, तत्र यस्य कस्यचिद्वस्तुनो घट इति नाम क्रियते स नामघटः, स्वर्गाधिपत्यादिलक्षणेन्द्रपदप्रवृत्तिनिमित्तरहितोऽपि गोपालदारकादिरिन्द्रोऽयमित्येवं सङ्केतितो नामेन्द्रः, घट इति नामापि नामघटः, एवं इन्द्र इति नामापि नामेन्द्र इति नामनिक्षेपः । यत्किमपि वस्तु घटाकारं घटाकाररहितं वाऽयं घटाकार इत्येवं स्थाप्यते स स्थापनाघटः, एवं काष्ठप्रस्तरादिनिर्मिता इन्द्रोपेन्द्रादिप्रतिमा इन्द्रोऽयमुपेन्द्रोऽयमित्येवं स्थापिता स्थापनेन्द्रः स्थापनोपेन्द्रः इति स्थापनानिक्षेपः । यञ्च मृद्द्रव्यं घटरूपेण परिणमिष्यति

अनुभूतघटपरिणामं वा तन्मृद्द्रव्यं घटकारणत्वाद् घटोऽय-
मित्येव निक्षिप्यमाणं द्रव्यघटः । एवं यो जीवः पूर्वजन्मनि
इन्द्रोऽभूत् परत्र चेन्द्रो भविष्यति स इन्द्रोऽयमित्येवं निक्षि-
प्यमाणो द्रव्येन्द्र इति द्रव्यनिक्षेपः । यस्य वस्तुनो यदसाधा-
रणस्वरूपं तत्तस्य भाव इति पृथुबुध्नोदराद्याकारः कम्बुग्रीवा-
दिमान् पदार्थः घटोऽयमित्येवं सङ्केतितो भावघटः, एवं
स्वर्गाधिपत्यमनुभवन् सहस्राक्षः इन्द्रोऽयमित्येवं सङ्केतितो
भावेन्द्र इति भावनिक्षेपः । नामनिक्षेपाभ्युपगन्ता नयोऽपि
नामनिक्षेप इति नामनिक्षेपाभ्युपगन्तृनैगमनयविशेषमते—
शब्दार्थयोस्तादात्म्यमेव सम्बन्ध इत्यर्थस्य नामरूपतेति,
अर्थाभिधानप्रत्ययास्तुल्यनामधेया इति वचनप्रामा-
ण्यादेकशब्दवाच्यत्वेन शब्दार्थयोस्तादात्म्यमिति घट इति
नामाऽपि घट एव, तुल्यपरिमाणत्वेन घटरूपार्थेन समं घट-
परिमाणसमपरिमाणकस्य वस्तुनोऽभेदेन घटाकारोऽपि घट
एव, मुख्यार्थमात्राभावादेव तत्र तत्प्रतिकृतित्वम्, परिणाम-
परिणामिभावसम्बन्धस्यात्यन्तभेदेऽनुपपत्त्या मृत्पिण्डादि-
द्रव्यघटोपि घट एव, पृथुबुध्नोदराद्याकारस्य कम्बुग्रीवादिमतो
भावघटस्य घटत्वं तु सर्वानुमतमेवेत्येवं चत्वारोऽपि निक्षेपा
नैगमनयस्य सम्मताः—जत्थय जं जाणिज्जा निक्खेवं
निक्खिवे निरवसेसं जत्थवि य ण जाणिज्जा, चउ-
क्कयं णिक्खिवे तत्थ" त्ति वचनप्रामाण्यान्निरुक्तनिक्षे-
पचतुष्टयस्य सर्ववस्तुव्यापित्वमवसेयम्, यत्र यत्र व्यभिचार-

स्तदन्यत्वे सति वस्तुत्वस्य व्यापकं निक्षेपचतुष्टयं, तेनानभिलाप्यभावेषु,नामनिक्षेपाप्रवृत्तावपि न क्षतिरिति केचिदाहुः, अन्ये तु निर्विशेषितवस्तुत्वस्य व्यापकं निक्षेपचतुष्टयम् , अनभिलाप्यभावेष्वपि केवलिप्रज्ञारूपमेव नामास्तीति, अत्र केवली सर्वं जानातीत्यनभिलाप्यमपि केवलिप्रज्ञागोचर इति केवलिप्रज्ञारूपं नामाऽपि स्ववाच्यविषयतया तत्र वर्तत इति कृत्वा नामनिक्षेपस्तत्र सम्भवतीति नामनिक्षेपस्य सर्ववस्तुव्याप्तिः, जीवे द्रव्यनिक्षेपाव्याप्तिरित्यपि नास्ति यतो य इदानीं मनुष्यस्सन् देवो भविष्यति स एव भाविदेवजीवपर्यायकारणत्वाद् द्रव्यजीव इति आदिष्टद्रव्यत्वकघटादिपर्यायकारणत्वान्मृदादिरेव द्रव्यद्रव्यमिति द्रव्येऽपि द्रव्यनिक्षेपस्सम्भवतीत्याहुः, तदपरे न क्षमन्ते, यतः नैगमनयमते पौद्गलिकस्य शब्दस्यैव नामतया स्वीकारेण केवलिप्रज्ञाया आत्मनश्चैतन्यलक्षणगुणरूपत्वेन तामुपादायानभिलाप्यभावेषु नामनिक्षेपव्याप्तिर्न सम्भवति, केवलिप्रज्ञेत्येवं रूपो यश्शब्दस्तस्य स्ववाच्यविषयत्वसम्बन्धोऽपि न संज्ञासंज्ञिसम्बन्धो नामतद्वतोर्वाच्यवाचकभावलक्षणसाक्षात्सम्बन्धस्यैव निक्षेपनियामकत्वात् , देवजीवकारणत्वान्मनुष्य जीवस्य द्रव्यजीवत्वाभ्युपगमे सिद्ध एव भावजीवो भवेत् , एवमादिष्टद्रव्यहेतुद्रव्यस्य द्रव्यद्रव्यत्वोपगमे भावद्रव्यं न किञ्चिद्भवेदिति, गुणपर्यायवियुक्तः प्रज्ञास्थापितो द्रव्यजीव इति मतमपि न समीचीनं, सतां गुणपर्यायाणां बुद्ध्या-

पनयनस्य कर्तुमशक्यात्वात्, अर्थपरिणतेर्ज्ञानानधीनत्वात् एके सूरयो जीवशब्दार्थज्ञस्तत्रानुपयुक्तो जीवशब्दार्थज्ञस्य शरीरं वा जीवरहितं द्रव्यजीव इति नाव्यापिता नामादीनामिति मेनिरे तैरपि नाम्नोऽव्यापित्वं न परिहृतम्। प्रधानतया द्रव्यामात्राभ्युपगमप्रवणत्वेन द्रव्यार्थिकस्य नैगमस्य कथं नामादिनिक्षेपचतुष्टयाभ्युपगमन्तृत्वं, गौणतया पर्यायाभ्युपगन्तृत्वेन भावनिक्षेपसहत्त्राभ्यगमे पर्यायार्थिकानां शब्दनयानामपि गौणतया द्रव्याभ्युपगन्तृत्वान्नामादिचतुष्टयाभ्युपगन्तृत्वं स्यात्, तथाच "**भावं चिय सद्दणया सेसा इच्छंति सव्वणिक्खेवे**"त्ति भाष्यव्यवस्था दुर्घटा स्यादिति नाशङ्कनीयं, अविशुद्धनैगमभेदानां नामाद्यभ्युपगमप्रवणत्वेऽपि विशुद्धनैगमभेदस्य द्रव्यविशेषणतया पर्यायाभ्युपगमात्तत्र भावनिक्षेपोपपत्तेः अत एवाह—भगवान् श्रीभद्रबाहुः-"**जीवो गुणपडिवन्नो णयस्स दव्वट्ठियस्स सामाइयं**"ति, इतराविशेषणत्वरूपप्राधान्येन पर्यायानभ्युपगन्तृत्वादेव न तस्य पर्यायार्थिकत्वं प्रसज्यते, शब्दादीनां पर्यायार्थिकनयानां पुनर्नैगमवदविशुद्धयभावान्न नामाद्यभ्युपगन्तृत्वमिति, एवमन्याऽत्र पूर्वपक्षोत्तरपक्षप्रवणाप्रक्रिया ग्रन्थान्तरतोऽवसेया। सङ्ग्रहस्य नैगमाद्युपगतार्थसङ्ग्रहप्रवणाध्यवसायविशेषत्वं लक्षणम्, अत्र नैगमाद्युपगतार्थेत्युपादानासङ्ग्रहप्रवणे सामान्यनैगमे नातिव्याप्तिः, सङ्ग्रहप्रवणेत्यत्रसङ्ग्रहपदेन विशेषविनिर्मोकाऽशुद्धविषयविनिर्मोकान्यतरद्विवक्षितं,

तथा च नैगमनयाभ्युपगतार्थः सामान्यं विशेषश्च तत्सङ्ग्रहो विशेषपरित्यागेन सामान्योररीकारस्तत्प्रवणाऽध्यवसायविशेषत्वं सामान्यमात्रग्राहिणि सङ्ग्रहे समस्तीति तत्र लक्षणसमन्वयः, एवं नैगमादीत्यादिपदग्राह्यो व्यवहारः तदुपगतार्थो विशेषः तत्सङ्ग्रहोऽशुद्धविषयविनिर्मोकस्तत्प्रवणाध्यवसायविशेषत्वं प्रस्थकस्थले वनगमनदारुच्छेदनादीनामशुद्धविषयाणां प्रस्थकत्वेन नैगमव्यवहारोपगतानां परित्यागेन मापनक्रियोपहित-प्रस्थकाभ्युपगन्तरि सङ्ग्रहे समस्तीति तत्रापि लक्षणसमन्वयः, तत्प्रवणत्वं नात्र तज्जनकत्वं, किन्तु तन्नियतबुद्धिव्यपदेश-जनकत्वं, तेन विशेषविनिर्मोकाशुद्धविषयविनिर्मोकाद्यने-कार्थस्वरूपस्य नैगमाद्युपगतार्थसङ्ग्रहस्य नाऽध्यवसायविशेष-स्वरूपसङ्ग्रहनयजन्यत्वमिति तज्जनकत्वस्य सङ्ग्रहनयेऽ-भावेऽपि नासम्भवः, सङ्ग्रहनयेन विशेषविनिर्मोकाशुद्धविषय-विनिर्मोकादिनियतबुद्धिव्यपदेशयोस्सम्भवेन तज्जनकत्वस्य सङ्ग्रहनये सम्भवात्, तथा च विशेषविनिर्मोकाशुद्धविषयवि-निर्मोकाद्यन्यतमात्मकनैगमाद्युपगतार्थसङ्ग्रहनियतबुद्धिव्यप-देशजनकाऽध्यवसायविशेषत्वं सङ्ग्रहत्वमिति सङ्ग्रहसामान्य-लक्षणे न कोऽपि दोषः पदमादधातीति, अयं हि घटादीनां भवनानर्थान्तरत्वात्तन्मात्रत्वमेव स्वीकुरुते, घटादिविशेष-विकल्पस्त्वविद्योपजनित एवेत्यभिमन्यते, सर्वस्य भवनात्म-कत्वे भवनस्य महासामान्यसत्तालक्षणस्यैकत्वेन तदात्मकं जगदप्येकमेवेति घटपटादिभेदो न भवेदित्यापादनं त्वत्रेष्टा-

पत्तिरूपत्वादेव न दोषावहम्, वास्तवस्य घटपटादिभेदस्या-भावेऽपि रज्जौ सर्पभ्रमनिबन्धनसर्पस्येवाविद्याजनितस्यानिर्वचनीयस्य तस्यास्त्येव सम्भवः इत्याद्या औपनिषदादीनां युक्तयस्सङ्ग्रहनयमूलिका अवसातव्याः, सङ्ग्रहनयोऽपि नामादीन् चतुरोऽपि निक्षेपानभ्युपगच्छति, नाम्नि स्थापनामन्तर्भावयन्त्वयं स्थापनां नाभ्युपगच्छतीति ये त्वाहुः ते– "नाम आवकहियं, ठवणा इत्तरिआ वा होज्जा आवकहिया वा होज्जा" इत्यनेन नाम्ना यावत्कथिकत्वं यावद्द्रव्यभावित्वलक्षणं स्थापनाया इत्वरिकत्वं स्थापनावतस्सत्त्वे सत्येव विनाशित्वं लक्षणं, निरुक्तलक्षणं यावत्कथिकत्वञ्चेत्येवमनयोर्विशेषं किं न पश्यन्ति, न पश्यन्त्येव, पाचक–याचकादिनाम्नामप्ययावत्कथिकत्वेन यावत्कथिकत्वस्य नाम्नोऽव्यापकत्वात्, सूत्रे तु स्थूलभेदमात्रकथनम्, नाम पदप्रकृतिरूपं, स्थापना त्वाकृतिरूपमिति विशेषप्रतिबोधनमपि तान्प्रति न कर्तुं शक्यं, नाम्नः पदैकस्वभावत्वे गोपालदारके नामेन्द्रत्वाभावापत्तेः, यत्तु नामेन्द्रत्वं द्विविधम्-एकमिन्द्र इति पदत्वं तच्च नाम्नि द्वितीयमिन्द्रपदसङ्केतविषयत्वं तच्च पदार्थे इति तत्तु तेषामनुकूलमेव, व्यक्त्याकृतिजातीनां पदार्थत्वेनेन्द्रस्थापनाया इन्द्राकृतिरूपाया अपीन्द्रपदसङ्केतविषयत्वात्, नाम्नि भावनिक्षेपप्रवेशो मा प्रसाङ्क्षीदित्येतदर्थं भावभिन्नत्वे सतीत्येतावन्मात्रं तत्रोपादेयम्, मत्त्वाकृतिभिन्नत्वे सतीत्यपि, ते

त्वेवं प्रतिबोधनीयाः, योऽयं स्वर्गाधिपे सहस्राक्षे इन्द्रपद-सङ्केतस्तदन्य एव नामेन्द्र गोपालदारके इन्द्रपदसङ्केत इति, यदिन्द्रपदसङ्केतविशेषविषयत्वं नामेन्द्रत्वं गोपालदारके तदिन्द्रपदसङ्केतविशेषविषयत्वं नास्त्येवेन्द्रप्रतिकृताविति नाम्नि स्थापनानिक्षेपान्तर्भावासम्भवात्, यदि चेन्द्रपदस्य मुख्य-सङ्केतो भावेन्द्र एव, गोपालदारकादौ तूपचारलक्षण एव, सङ्केत इत्युपचारात्मकेन्द्रपदसङ्केतविषयत्वं यथा गोपाल-दारकादौ तथाऽऽकृतावपीति तद्रूपेण नाम्नि स्थापनाया अन्तर्भाव इति विभाव्यते, तथा द्रव्येऽपीन्द्रे पर्यायकारणे इन्द्र-पदस्योपचारलक्षणस्सङ्केतो भवत्येवेत्युपचारात्मकेन्द्रपदसङ्के-तविषयत्वेन नाम्नि द्रव्यनिक्षेपोऽप्यन्तर्भवेदिति द्रव्यनिक्षे-पानभ्युपगन्तृत्वमपि सङ्ग्रहस्य प्रसज्येत, तस्माद्यादृच्छिक-सङ्केतविशेषग्रहणमप्रामाणिकमेव, किन्तु पित्रादिकृतसङ्केत-विशेषग्रहणमेव तत्र कर्त्तव्यं, स च सङ्केतविशेषो गोपालदार-कादावेवेन्द्रपदस्य, नेन्द्राकृताविति, न नाम्नि स्थापनाया-अन्तर्भावः येषु स्वस्वपित्रादिभिरिन्द्रपदसङ्केतः क्रियते ते च बहव इति तेषां यन्नामेन्द्रत्वेन सङ्ग्रहव्यापार इति मन्तव्यं, यदृच्छया सङ्ग्रहस्वीकारे तु नाम्नोऽपि भावकारणतया द्रव्येऽन्तर्भाव आपद्येत, द्रव्यस्य भावकारणत्वं तावत्सुप्रतीतमेव, नामापि चात्यन्तभक्तिनिर्भरमानसेनाभ्यस्यमानं कालान्तरे भावस्वरूपावाप्तिनिबन्धनं भवत्येव कस्यापि भावकारणत्वेन नामद्रव्ययोरैक्याध्यवसायलक्षणसङ्ग्रहव्यापारोऽपि वक्तुं

शक्यत एव, द्रव्यं भावरूपेण परिणमत इति परिणामि, भावः परिणाम इत्यनयोः परिणामिपरिणामभावसम्बन्धः, नाम वाचकं भावो वाच्य इत्यनयोर्वाच्यवाचकभावसम्बन्ध इत्येवं भावेन सह विभिन्न सम्बन्धेन सम्बद्ध्यमानत्वाद् द्रव्यनाम्नो विशेष इति यदि, तदा निरुक्तसम्बन्धद्वयव्यतिरिक्ततुल्यपरिणामत्वाख्यसम्बन्धेन भावेन सहस्थापनायास्सम्बद्ध्यमानत्वात्स्थापनानाम्नोऽप्यस्त्येव विशेष इति नाम्नि न स्थापनाया अन्तर्भावः। उपचारं स्वीकरोति नैगम इति देशप्रदेशयोर्देशत्वाविशेषेऽप्युपचारतो भेदकल्पना सम्भवतीति युज्यते तन्मते षण्णां प्रदेश इति वाचो युक्तिः। सङ्ग्रहनय उपचारं नेच्छतीति देशप्रदेशयोर्देशत्वाविशेषे सत्यप्युपचारनिमित्तकभेदकल्पनाभावाद्युज्यते तत्र तस्य पञ्चानामेव प्रदेशस्वीकारः, प्रकृते तु स्थापनानिक्षेपविभागो नोपचारत इति स्थापनानिक्षेपस्य सङ्ग्रहनये स्वीकारेऽप्यनुपचरितत्वलक्षणविशेषो नापनोदितो भवतीति। व्यवहारस्य तु लोकव्यवहारोपयिकाध्यवसायविशेषत्वं लक्षणम् , अध्यवसायविशेषस्य लोकव्यवहारोपयिकत्वं च सामान्यानभ्युपगमपुरस्सरविशेषाभ्युपगन्तृत्वादुपपद्यते, अत एव विशेषेणावह्रियते निराक्रियते सामान्यमनेनेति व्यवहार इति निरुक्तिरुपपद्यते–"वच्चइ विणिच्छियत्थं, ववहारो सव्वदव्वेसु" इति सूत्रं व्यवहारस्य सामान्यनभ्युपगमपुरस्सरविशेषाभ्युपग-

न्तृत्वे प्रमाणं, विनिश्चितार्थप्राप्तेः सामान्यानभ्युपगमे सति विशेषाभ्युपगमादेव भावात्, जलाहरणाद्युपयोगिनो घटादिविशेषानेवायमङ्गीकरोति न तु सामान्यं, अर्थक्रियाऽकारिणस्सामान्यस्य शशशृङ्गकल्पत्वात्, घटोऽयं पटोऽयं द्रव्यमित्याद्यनुगतप्रतीतेरन्योपोहत एवोपपत्तेः, "लौकिकसम उपचारप्रायो विस्तृतार्थो व्यवहारः" इति तत्त्वार्थभाष्यं त्वत्र विशेषप्रतिपादनपरम, तच्चेत्थं—यथाहि लोको निश्चयतः पञ्चवर्णेऽपि भ्रमरे कृष्णवर्णत्वमेवाभ्युपगच्छति तथाऽयमपीति लौकिकसमः कुण्डिका स्रवति पन्था गच्छतीत्यादौ बाहुल्येन गौणप्रयोगादुपचारप्रायः, विशेषप्रधानत्वाच्च विस्तृतार्थ इति, अयमपि सकलनिक्षेपानुररीकरोति, स्थापनां नेच्छत्ययमिति तु कस्यचिद्युक्तिरिक्तं वचोमात्रम्, इन्द्रप्रतिमायामिन्द्रोऽयमिति व्यवहारस्य लोकानामविगानेन प्रतीयमानत्वात्, बाधकाभावेनास्य भ्रान्तत्वायोगात्, यदि च स्थापनायां नामादिनिक्षेपव्यवहारो भवेत् तदा तत्साङ्कर्यादसङ्कीर्णस्थापनानिक्षेपत्वं न भवेदपि न चैवम्, तस्माद्व्यवहारस्य लोकव्यवहारानुरोधित्वमभ्युपगच्छता तस्य स्थापना निक्षेपाभ्युपगन्तृत्वं स्वीकरणीयमेवेति । ऋजुसूत्रनयस्य प्रत्युत्पन्नग्राह्यध्यवसायविशेषत्वं लक्षणम् ,तत्र "पच्चुप्पण्णग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो" इति सूत्रं प्रमाणम्, प्रत्युत्पन्नग्राहित्वं च यत्र यत्र भावत्वं तत्र तत्रातीतानागतकालसम्बन्धाभाव इत्येवं यद्वाव्रत्व-

स्यातीतानागतकालसम्बन्धाभावव्याप्यत्वं तदभ्युपगन्तृत्वं, तेन कालत्रयाभ्युपगन्तरि नैगमादिनये वर्त्तमानक्षणलक्षणप्रत्युत्पन्नग्राहित्वसद्भावेऽपि नातिव्याप्तिः, भावानां वर्त्तमानक्षणसम्बद्धानां विरोधेनातीतानागतसम्बन्धो न भवति, विकल्पात्मकज्ञानस्य वासनाप्रभवस्यातीतानागताकारस्य भ्रमात्मकत्वादेव न ततो भावानामतीतानागतकालसम्बद्धत्वसिद्धिः, विषयजन्यञ्च प्रत्यक्षं नातीतानागताकारद्वयशालीति न ततोऽतीतत्वानागतत्वयोस्सामानाधिकरण्यसिद्धिरिति, "सतां साम्प्रतानामर्थानामभिधान-परिज्ञानमृजुसूत्रः" इति तत्त्वार्थभाष्याभिप्रेतमृजुसूत्रलक्षणं व्यवहारातिशायित्वं तदतिशयप्रतिपत्तये, अतिशयश्चेत्थमवसेयः-व्यवहारो हि व्यवहारानङ्गत्वाद्यदि सामान्यं नेच्छति तर्हि स्वदेश एवार्थक्रियाकारित्वलक्षणसत्त्वस्य भावेन परकीयार्थस्य स्वदेशसत्त्वाभावेनासत्त्वमेव, एवं वर्त्तमानक्षणलक्षणस्वकाल एवार्थ क्रियाकारित्वलक्षणसत्त्वस्य भावेनातीतानागतकालयोर्निरुक्तसत्त्वाभावेनासत्त्वमेव, एवं परकीयार्थाभिधानज्ञानयोरपि सदर्थाभिधायकत्वाभावसदर्थविषयकत्वाभावावेत्यभिमान एव व्यवहारतोऽतिशय इति, अस्यापि चत्वारो निक्षेपा अभिमता इति प्राचां मतम्, द्रव्यनिक्षेपं नेच्छत्ययमिति वादिसिद्धसेनमतानुसारिणः, तत्र-"उज्जुसुअस्स एगे अणुवउत्ते एगं दव्वावस्सयं पुहुत्तं णेच्छइ" इति सूत्रविरोधोऽपरिहरणीय एव, अनु-

पयोगांशमादाय वर्त्तमानावश्यकपर्याये द्रव्योपचारादुक्तसूत्र-
विरोधपरिहारस्तु नव्यानां न युक्तः, उक्तसूत्रस्योपचरितार्थ-
त्वाभावेनोपचरितद्रव्यनिक्षेपप्रदर्शनपरत्वाभावात् । नैगमः
सङ्ग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रः शब्द इति पञ्चनया
इति मते शब्दनयत्वेन सङ्गृहीतानां साम्प्रत–समभिरूढै-
वम्भूतानां त्रयाणामपि "यथार्थाभिधानं शब्दः" इत्येकं
लक्षणम्, भावमात्राभिधानप्रयोजकाध्यवसायविशे-
षः शब्द इति तत्फलितम्, यथार्थाभिधानत्वस्य यथाश्रुत-
स्य नैगमादिनये भावेऽपि भावमात्राभिधानप्रयोजकाध्यवसा-
यविशेषत्वस्य तत्राभावान्नातिव्याप्तिः, तत्र–"नामादिषु
प्रसिद्धपूर्वाच्छब्दादर्थे प्रत्ययः साम्प्रतः" इति साम्प्र-
तनयस्य लक्षणम्, प्रतिविशिष्टवर्त्तमानपर्याया-
पन्नेषु नामस्थापनाद्रव्यभावेषु गृहीतसङ्केतस्य शब्द-
स्य भावमात्रबोधकत्वपर्यवसायी योऽध्यवसायविशे-
षस्तद्वृत्तिनयत्वव्याप्यजातिमदध्यवसायत्वं साम्प्र-
तनयत्वमिति पर्यवसितम्, तेन साम्प्रतनयः कश्चि-
ल्लिङ्गभेदेनार्थभेदग्राहकः कश्चित्सङ्ख्याभेदेनार्थभेद-
ग्राहकः, कश्चित्पुरुषादिभेदेनार्थभेदादिग्राहक इत्येवं
बहुविधेषु साम्प्रतनयेषु शब्दस्य भावमात्रबोधकत्वपर्यवसायी
योऽध्यवसायो न भवेत्तस्मिन्नपि निरुक्तजातिमदध्यव-
सायविशेषत्वस्य सत्त्वान्नाव्याप्तिः, भावमात्रबोध-
कत्वपर्यवसायिनोः समभिरूढैवम्भूतयोरतिव्याप्तिवा-

रणायाध्यवसायविशेषे समभिरूढभिन्नत्वमेवम्भूतभिन्नत्वञ्च विशेषणं देयम्, साम्प्रतस्यैव शब्द इति संज्ञान्तरमवलम्ब्य सम्प्रदाये–" विशेषिततरऋजुसूत्राभिमतार्थग्राही अध्यवसायविशेषः शब्दः" इति लक्षणम्, अत्र–'इच्छइ विशेसियतरं, पच्चुप्पुण्णं णओ सद्दो' इति सूत्रं प्रमाणम्, तरप्रत्ययोपादानाद्विशेषिततमे समभिरूढे ततोऽपि विशेषिततमे एवम्भूते च नातिव्याप्तिः तदुक्तं–" विशेषिततरः शब्दः प्रत्युत्पन्ननयाश्रितः (आश्रयोनयः)। तरप्पत्ययनिर्देशाद्विशेषिततमेऽगतिः ॥ ३३ ॥ ऋजुसूत्राद्विशेषोऽस्य भावमात्राभिमानतः। सप्तभङ्ग्यर्पणाल्लिङ्ग–भेदादेवार्थभेदतः ॥ ३४ ॥ इति नयोपदेशे, एतद्विशेषभावना श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायैर्नयरहस्यप्रकरणे इत्थं कृता, तथा हि—" ऋजुसूत्राद्विशेषः पुनरस्येत्थं भावनीयः यदुत संस्थानादिविशेषात्मा भावघट एव परमार्थः सन्, तदितरेषां तत्तुल्यपरिणत्यभावेनाघटत्वात्, घटव्यवहारादन्यत्रापि घटत्वसिद्धिरिति चेत्, न, शब्दाभिलापरूपव्यवहारस्य सङ्केतविशेषप्रतिसन्धाननियन्त्रितार्थमात्रवाचकतास्वभावनियम्यतया विषयतथात्वेऽतन्त्रत्वात्, प्रवृत्त्यादिरूपव्यवहारस्य चासिद्धेः, घटशब्दार्थत्वाविशेषे भावघटे घटत्वं नापरत्रेत्यत्र किं नियामकमिति चेत्, अर्थक्रियैवेति गृहाण। अतएवात्रानुपचरितं घटपदार्थत्वम्, अन्यत्र तूपचरितमिति गीयते विशेषः। अथवा

ऋजुसूत्रस्य प्रत्युत्पन्नो विशेषितः कुम्भ एवाभिमतः, अस्य तु मत ऊर्ध्वग्रीवत्वादिस्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः कुम्भः कुम्भ इति भण्यते, इदन्त्वकुम्भत्वाद्यवच्छेदेन स्वशिष्यनिष्ठस्वपर्यायावच्छिन्नतत्त्वसत्ताबोधप्रयोजकप्रकृतवाक्येच्छारूपगुर्वर्पणयाऽयमूर्ध्वग्रीवत्वादिना कुम्भ एव कुम्भः, ऊर्ध्वग्रीवत्वादिना कुम्भ एवेत्यादिवाक्यप्रयोगात्, इत्थमेवोद्देश्यसावधारणप्रतीतेर्वादान्तरोत्थापितविपरीताभिनिवेशनिरासस्य च सिद्धेः। [प्रथमो भङ्गः] इदमेव भङ्गान्तरेऽप्यर्पणप्रयोजनं बोध्यम्। पटादिगतैस्त्वक्त्राणादिभिः परपर्यायैरसद्भावेनार्पितोऽकुम्भो भण्यते, कुम्भे कुम्भत्वानवच्छेदकधर्मावच्छिन्नाकुम्भत्वसत्त्वात्, नन्वेवं कुम्भत्वानवच्छेदकप्रमेयत्वावच्छेदेनाप्यकुम्भत्वापत्तिरिति चेत्, नानाधर्मसमुदायरूपकुम्भत्वे प्रमेयत्वस्याप्यवच्छेदकत्वात् ॥ [द्वितीयो भङ्ग] तथा सर्वोऽपि घटः स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यामार्पितोऽवक्तव्यो भण्यते, स्वपरपर्यायसत्त्वासत्त्वाभ्यामेकेन केनापि शब्देन सर्वस्यापि तस्य युगपद्वक्तुमशक्यत्वात्, अथैकपदवाच्यत्वं घटस्य स्वपर्यायावच्छिन्नत्वोपरागेणापि नास्तीति तदवच्छेदनाप्यवाच्यत्वापत्तिः, वस्तुतः स्वपर्यायावच्छिन्नस्यैकपदवाच्यत्वेनावक्तव्यत्वाभावे वस्तुतः कथञ्चिदुभयपर्यायावच्छिन्नस्याप्येकपदवाच्यत्वेन तथात्वापत्तेः, अन्यथा परपर्यायावच्छिन्नस्याप्यवक्तव्यत्वापत्तेः, विधेयांश एकपदजन्यस्वपरपर्यायोभयावच्छिन्नप्रकारकशाब्दबोधाविषयत्वमेवावक्तव्यत्वमिति न दोष

इति चेत्, न, उभयपदजन्यस्याप्येकपदजन्यत्वाऽव्यभिचारात्, कुम्भ-नञ्पदाभ्यामकुम्भत्वबोधके द्वितीयभङ्गे परपर्यायाव-च्छेदेनाप्यवक्तव्यत्वोल्लेखापत्तेः, प्रकृतेऽप्येकेन तदुभयादि-साङ्केतिकपदेन बोधसम्भवाद्बाधाश्च। अथ 'स्वपरपर्यायोभया-वच्छिन्नैकविधेयताकशाब्दबोधाविषयत्वमेवावक्तव्यत्वम्' । द्वितीयभङ्गे च कुम्भ-नञ्पदाभ्यामपि तात्पर्यवशादेकविधे-यकबोधस्यैवोद्देश्यत्वान्नातिप्रसङ्गः, उभयादिपदाच्च बुद्धिस्थ-शक्तादुभयविधेयकबोधस्यैवोद्देश्यत्वन्न बाध इति चेत्, न, अप्रसिद्धेः, विकल्पबलात्कथञ्चित्प्रसिद्धावप्यनापेक्षिकत्वेन तत्र स्यात्पदप्रयोगानुपपत्तेः तथा चापेक्षिकविशेषविश्रान्तवक्तव्यत्व-प्रतिपक्षावक्तव्यत्वासिद्धौ वक्तव्यत्वविषयस्याष्टमभङ्गस्यापत्तेः, अवक्तव्यत्वप्रतिपक्षस्य विशेषविश्रान्तत्वादेव नाष्टमभङ्गापत्ति-रिति हि सम्प्रदाय इति चेत्, न, प्रकृतविधिनिषेधसंस-र्गावच्छिन्नैकविधेयताकशाब्दबोधाविषयत्वरूपस्यावक्तव्यत्वस्य स्वपरपर्यायोभयावच्छेदेन तृतीयभङ्गोपस्थित्या दोषाभावात्, अवच्छिन्नान्तोपादानादवक्तव्यत्वैकविधेयतामादाय न बाध इति दिक् [तृतीय भङ्ग] एकस्मिन्देशे स्वपर्यायसत्त्वेना-परस्मिश्च परपर्यायासत्त्वेन विवक्षितो घटोऽसन्श्च भण्यते, एकस्मिन् धर्मिणि देशभेदेन भिन्नतया विवक्षिते एकवाक्या-दुभयबोधतात्पर्येण तथाबोधात्। [चतुर्थो भङ्गः] एकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सत्त्वेनार्पितोऽन्यत्र तु देशे स्वपरोभयपर्यायैः सत्त्वासत्त्वाभ्यामर्पितः कुम्भोऽवक्तव्यश्च भण्यते, देशभेदेनैकत्र

सत्त्वावक्तव्यत्वोभयबोधनतात्पर्यैकवाक्येन तथाबोधात् ॥ [पञ्चमो भङ्गः] एकदेशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितोऽन्यस्मिंस्तु स्वपरपर्यायैः सत्त्वासत्त्वाभ्यामेकेन शब्देन वक्तुमभिप्रेतोऽकुम्भोऽवक्तव्यश्च भण्यते, देशभेदेनैकत्रासत्वावक्तव्यत्वोभयबोधनतात्पर्यैकवाक्येन बोधात् ॥ [षष्ठो भङ्गः] तथैकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितोऽन्यस्मिंस्तु परपर्यायैरसद्भावेनार्पितोऽपरस्मिंस्तु स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यमेकेन शब्देन वक्तुमिष्टः कुम्भोऽकुम्भोऽवक्तव्यश्च भण्यते, देशभेदेनैकत्र त्रयबोधनतात्पर्यैकवाक्येन तथाबोधादिति विशेषः । [सप्तमो भङ्गः] तथा च बभाषे भाष्यकरः—अहवा पच्चुप्पन्नो, रियसुत्तस्साविसेसिओ चेव । कुंभो विसेसिययरो सब्भावाईहिं सद्दस्स ॥ २२३१ ॥ सब्भावाऽसब्भावोभयप्पिओ सपरपज्जओभयओ ॥ कुंभाकुंभाऽवत्तव्वोभयरूवाइभेओ सो " ॥ २२३२ ॥ इति विशेषावश्यके । अत्र कुम्भा कुम्भेत्यादिगाथार्द्धेन षट् भङ्गाः साक्षादुपात्ताः सप्तमस्त्वादिशब्दात् , तथा हि कुम्भोऽकुम्भोऽवक्तव्यः कुम्भश्चाकुम्भश्च कुम्भश्चावक्तव्यश्च अकुम्भश्चावक्तव्यश्चेति त्रिविध उभयरूपः, आदिशब्दसङ्गृहितश्च कुम्भोऽकुम्भोऽवक्तव्यश्चेति सप्तभेदो घट इति, अत्र च सकलधर्मिविषयत्वात्त्रयो भङ्गा अविकलादेशाः, चत्वारश्च देशावच्छिन्नधर्मिविषयत्वाद्विकलादेशा इति । यद्यपीदृशसप्तभङ्गपरिकरितं सम्पूर्ण वस्तु स्याद्वादिन एव सङ्गिरन्ते, तथापि ऋजुसूत्रकृता-

भ्युपगमापेक्षया एतदन्यतरभङ्गाश्रित्याभ्युपगमाच्छब्दनयस्य विशेषिततरत्वमदुष्टमिति सम्प्रदायः। अथवा लिङ्गवचनसङ्ख्यादिभेदेनार्थभेदाभ्युपगमादृजुसूत्रादस्य विशेषः, अयं खल्वेतस्याशयः-यदि ऋजुसूत्रेण "पलालं न दहत्यग्निर्भिद्यते न घटः क्वचित। नासंयतः प्रव्रजति भव्योऽसिद्धो न सिद्ध्यति ॥१॥" इत्यादावभिनिवेशः तर्हि विकाराविकाराद्यर्थकक्रियानामादिपदानां सामानाधिकरण्यानुपपत्त्या किं न तथाकल्पने अभिनिविश्येतेति अस्य चोपदर्शिततत्त्वो भावनिक्षेप एवाभिमतः ।५॥ समभिरूढस्य तु असंङ्क्रमगवेषणपरोऽध्यवसायविशेषत्वं लक्षणम्,अत्र-"वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू णए समभिरूढे" त्ति सूत्रं, "सत्स्वर्थेष्वसङ्क्रमः समभिरूढः" इति तत्त्वार्थभाष्यञ्च प्रमाणम्, एतत्पर्यवसितञ्च संज्ञाभेदनियतार्थभेदाभ्युगन्त्रध्यवसायविशेषत्वं समभिरूढत्वमिति, एवम्भूतोऽपिसंज्ञाभेदेनार्थभेदमभ्युपगच्छतीति तत्रातिव्याप्तिवारणायोक्तलक्षणे एवम्भूतान्यत्वे सतीति विशेषणं देयम्, अस्याभिप्रायः श्रीमद्भिरुपाध्यायैरित्थमुपवर्णितः-"अयं खल्वस्याभिमानः-यदुत यदि शब्दो लिङ्गादिभेदेनार्थभेदं प्रतिपद्यते तर्हि संज्ञाभेदेनापि किमित्यर्थभेदं न स्वीकुरुते, अनुशासनबलाद्घटकुटादिशब्दानामेकत्र सङ्केतग्रहादिति चेत् , ऋजुसूत्रेणेव तेनान्यथागृहीतोऽपि सङ्केतो विशेषपर्यालोचनया किमिति न परित्यज्यते, अथ येन रूपेण यत्पदार्थबोधस्तेनैव

रूपेण तत्पदशक्तिः, भवति च घटपदादिव कुटपदादपि घटत्वेनैवार्थबोध इति घट–कुटपदयोः पर्यायत्वमेव युक्तमिति चेत्, न, घटन–कुटनादिविभिन्नक्रियापुरस्कारेणैव घट कुटादिपदेभ्योऽर्थबोधात्, तेषामर्थभेदनियमादसमानाधिकरणपदत्वापेक्षया लाघवाद्भिन्नपदत्वावच्छेदेनैव भिन्नार्थत्वकल्पनात् पर्यायपदाप्रसिद्धेः, व्युत्पत्त्यर्थबोधं विनाऽपि दृश्यते पदार्थबोध इति चेत्, न, अन्यत्र विपरीतव्युत्पन्नात्तदसिद्धेः, हन्त ? एवं पारिभाषिकशब्दस्यानर्थकत्वमापन्नमिति चेत्, आपन्नमेव, किं हन्तेति पूत्कारेण ?। तदुक्तं–तत्र "पारिभाषिकी नार्थतत्त्वं ब्रवीति" इति। अथ–अर्थबोधकत्वमात्रं यदि पदस्वभावः, तदा यदृच्छाशब्दसङ्केतादपि तदभिव्यक्तेः किं वैषम्यमिति चेत्, न, पदानां व्युत्पत्तिनिमित्तोपकारेणैवार्थबोधकत्वस्वाभाव्यात्, यदृच्छासंकेतोपप्लवादस्वभावभूतस्यैव धर्मस्य ग्रहेण वैषम्यात्। अथ नानार्थकपदेऽर्थसंक्रमवदर्थेऽपि पदसंक्रमः किं न स्यादिति चेत्, न, अर्थस्येव पदस्यापि क्रियोपरागेण भेदादर्थासंसंक्रमस्वीकारात्। 'हरी' इत्यादौ च पदसारूप्येणैवैकशेषः नत्वर्थसारूप्येणेति दिक्" इति, अयमपि भावनिक्षेपमेव स्वीकरोति। एवम्भूतनयस्वरूपस्पष्टप्रतिपत्तये नयरहस्यप्रकरणगतस्तत्प्रतिपादकग्रन्थ एवोल्लिख्यते "व्यञ्जनार्थविशेषान्वेषणपरोऽध्यवसायविशेष एवम्भूतः," "वंजण-अत्थ-तदुभए एवंभूओ विसेसेइ" इति सूत्रम्, "व्यञ्जनार्थयोरेवम्भूत इति तत्त्वार्थ-

भाष्यम्, तत्त्वं च पदानां व्युत्पत्त्यर्थान्वयनियतार्थबोधकत्वाभ्युपगन्तृत्वम्, नियमश्च कालतो देशतश्चेति न समभिरूढातिव्याप्तिरपि, अयं खल्वस्य सिद्धान्तः- यदि घटपदव्युत्पत्त्यर्थाभावात्कुटपदार्थोऽपि न घटपदार्थः, तदा जलाहरणादिक्रियाविरहकाले घटोऽपि न घटपदार्थोऽविशेषादिति, नन्वेवं प्राणधारणाभावात् सिद्धोऽपि न जीवः स्यादिति चेत्, एतन्नये न स्यादेव, तदाह भाष्यकारः-एवं जीवं जीवो संसारी पाणधारणाणुभवो। सिद्धो पुणरजीवो जीवणपरिणामरहिओ ॥ २२५६ ॥ इति विशेषावश्यके. अत जीवो नोजीवोऽजीवो नोऽजीव इत्याकारिते नैगम-देशसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्र-साम्प्रत-समभिरूढा जीवं प्रत्यौपशमिकादिभावपञ्चकग्राहिणः, तन्मते व्युत्पत्तिनिमित्तजीवनलक्षणौदयिकभावोपलक्षितात्मत्वरूपपरिणामभावविशिष्टस्य जीवस्य भावपञ्चकात्मनः पदार्थत्वादित्यमी पञ्चस्वपि गतिषु जीव इति जीवद्रव्यं प्रतियन्ति, नोजीव इति नोशब्दस्य सर्वनिषेधार्थपक्षेऽजीवद्रव्यमेव, देशनिषेधार्थपक्षे च देशस्यानिषेधाज्जीवस्यैव देशप्रदेशौ, अजीव इति नकारस्य सर्वप्रतिषेधार्थत्वात्पर्युदासाश्रयणाच्च जीवादन्यत् पुद्गलद्रव्यादिकमेव। नोऽजीव इति, सर्वप्रतिषेधाश्रयणे जीवद्रव्यमेव, देशप्रतिषेधाश्रयणे चाजीवस्यैव देशप्रदेशौ। एवम्भूतस्तु जीवम्प्रत्यौदयिकभावग्राहकः, तन्मते क्रियाविशिष्टस्यैव पदार्थत्वादिति, अयं जीव इत्याकारिते भवस्थमेव

जीवं गृह्णाति, न तु सिद्धम्, तत्र जीवनार्थानुपपत्तेः, नोजीव इति चाजीवद्रव्यं सिद्धं वा, अजीव इति चाजीवद्रव्यमेव, नोऽजीव इति च भवस्थमेव। जीवदेशप्रदेशौ तु सम्पूर्णग्राहिणाऽनेन न स्वीक्रियेते, इत्यस्माकं प्रक्रिया। केचित्तु (दिगम्बराः) एवम्भूताभिप्रायेण सिद्ध एव जीवो भावप्राणधारणात्, न तु संसारी इति परिभाषन्ते, तदाहुः—"तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणा अ। ववहारा सो जीवो णिच्छयदो दु चेदणा जस्स"॥३॥ इति, द्रव्यसंग्रहे॥ न च द्विचेतनाशाली संसार्यपि जीव एवेति वाच्यं, शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणस्य सिद्धेनैव धरणात्, न च संसारिचैतन्यमपि निश्चयतः शुद्धमेव, उपरागस्य तेन प्रतिक्षेपात्, तदुक्तम्—"मग्गणगुणठाणेहि अ, चउदसय हवंति तह असुद्धणया। विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा उ (हु) सुद्धणया॥१३॥इति द्रव्यसंग्रहे।" इतीति वाच्यम्, एकीकृतनिश्चयेन तथा ग्रहणेऽपि पृथक्कृतनिश्चयभेदेन तदग्रहणादिति तच्चिन्त्यम्, एवम्भूतस्य जीवं प्रत्यौदयिकभावग्राहकत्वात्, न चास्य क्रियाया एव प्रवृत्तिनिमित्वात्, धात्वर्थ एव भावनिक्षेपाश्रयणे शुद्धधर्मग्राहकत्वमप्यनाबाधमिति वाच्यम्, यादृशधात्वर्थमुपलक्षणीकृत्येतरनयार्थप्रतिसन्धानं तादृशधात्वर्थप्रकारकजिज्ञासयैव प्रसङ्गसङ्गत्यैवम्भूताभिधानस्य साम्प्रदायिकत्वात्, अन्यथा तत्रापि निक्षेपान्तराश्रयणेऽनवस्थानात् प्रकृतमात्रापर्यवसानादद्वैते शून्यतायां वा पर्यवसानात्, किञ्चैतादृगुपरितनैवम्भूतस्य

प्राक्तनैवम्भूताभिधानपूर्वमेवाभिधानं युक्तम् , अन्यथाऽप्राप्तका-लत्वप्रसङ्गात् , तस्माद्व्यवहाराद्यभिमतव्युत्पत्त्यनुरोधेनौदायिक-भावग्राहकत्वमेवास्य सूरिभिरूक्तं चैतदिति स्मर्तव्यम् , न चेन्द्रियरूपप्राणानां क्षायोपशमिकत्वात्कथमेवम्भूतस्यौदयिक-भावग्राहकत्वमित्याशङ्कनीयम् , प्राधान्येनायुष्कर्मोदयलक्षण-स्यैव जीवनार्थस्य ग्रहणात् , उपहतेन्द्रियेऽप्यायुरुदयेनैव जीव-ननिश्चयात् , ननु यदि जीवं प्रत्यौदयिकभाव एव गृह्यत एव-म्भूतेन, कथन्तर्हि भावप्राणयोगाद्भवतामपि सिद्धस्य जीवत्वं श्रीमलयगिरिप्रभृतिभिरुक्तमिति चेत् ? भावपञ्चकग्राहिनैग-माद्यभिप्रायेणेति गृहाण, अत एव प्रज्ञापनादौ जीवनपर्याय-विशिष्टतया जीवस्य शाश्वतिकत्वमभिदधे । यदि पुनः प्रस्थ-कन्यायाद्विशुद्धतरनैगमभेदमाश्रित्य प्रागुक्तस्वग्रन्थगाथा व्याख्यायते परैः, तदा न किञ्चिदस्माकं दुष्यतीति किमल्पी-यसि दृढतरक्षोदेन, सिद्धोऽप्येतन्नये सत्त्वयोगात्सत्त्व, अतति सततमपरापरपर्यायान्गच्छतीत्यात्मा च स्यादेव,अस्याप्युपदर्शि-ततत्त्वो भावनिक्षेप एवाभिमतः" इति, नामा—स्थापना—द्रव्य—भावान्यतमापेक्षयाऽस्तिनास्तित्वादिसप्तधर्मबोधजनन्यां सप्त-भङ्ग्यां पदानां नामस्थापनाद्रव्यभावान्यतमविषयशक्तिग्राहक-तया नामस्थापनाद्रव्यभावनिक्षेपाणामुपयोगः, नैगमसङ्ग्रहव्य-वहारर्जुसूत्राणामर्थनयानामर्थनयसमुत्थसप्तभङ्ग्यामुपयोगः,सा-म्प्रतसमभिरूढैवम्भूतानां शब्दनयानाञ्च शब्दनयसमुत्थसप्त-भङ्ग्यामुपयोग इति सप्तभङ्गीनिरूपणे प्रक्रान्ते प्रासङ्गिकं नय-निक्षेपनिरूपणं नायुक्तमिति बोध्यम् ॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

सेयं मानसमुद्भवा मितिमतौ हेतुस्वभावं गता,
भङ्गं भङ्गमुदीरिता जिनमताभिज्ञैः प्रमाणात्मिका ।
नीत्युत्था नयबोधजन्मनिरता नीतिस्वभावा मता,
आभ्यां वादरणे पराभिभवतो वादीजयी निर्भयः ॥ १ ॥
यस्यां यन्नययोजनाबलभवो भङ्गो भवेदादिम-
स्तन्नीतिप्रतिपक्षनीतिघटना जातो द्वितीयो भवेत् ।
तन्नीतिद्वययोजनोपजनितः भङ्गास्स्युरन्ये यथा,
स्थानं सङ्कटितास्तु तन्नयभवा सा सप्तभङ्गी मता ॥ २ ॥
तत्तद्भङ्गनिविष्टशब्दघटना नामादिनिक्षेपजा,
तस्मादेव परिस्फुटार्थमननं निक्षेपविद्भिर्मतम् ।
सापेक्षांशसमन्वयोऽपि नयतो भाव्यो विरोधापहो,
धर्मास्सप्त तदेव चैकनिलये स्युस्सङ्गता नान्यथा ॥ ३ ॥
योंऽशो यन्नयगोचरीकृततनुर्भङ्गे समुद्भासते,
भिन्नांशप्रविविक्ततावगतये यत्तन्निमित्तं भवेत् ।
तन्नीत्यैव समर्थनं ननु मतं तस्याप्यसङ्कीर्णता,
चैवं स्यात्प्रतिभङ्गगा नयकृता तत्सप्तभङ्गी मिता ॥ ४ ॥
सर्वज्ञेतरवक्तृके तु वचने नो कुत्र दोषान्वयः,
सन्तः के तदपाकृतौ न प्रवणाः सन्ति कृपासागराः ।
स्याद्वादामृतलेशतो गुणततेरत्र प्रपोषो महान् ,
नाभ्यर्थ्याः कृतिनोऽत्र शोधनविधौ ते तत्प्रयत्नास्स्वयम् ॥५॥
श्रीमन्तो जिनदर्शनोदयरतास्सत्कल्पभूनन्दनाः,
विज्ञानामलपद्मजामृतलसल्लावण्यशास्त्राङ्कुराः ।

त्वां नो तीर्थसमुन्नति प्रभृतिके कस्तूरसा श्लाघते,
इत्यादिस्तुतिगोचरा मतिमतां नित्यं शिवानन्ददाः ॥६॥
भूपालैः प्रणता विशिष्टमतिभिश्शिष्यप्रशिष्यैर्नुताः,
व्याख्यानैर्मितिनीतितत्त्वसुभगैर्धर्मपथोद्योतकाः ।
तीर्थोद्धारपरायणाः सुकृतिनामग्रेसरैः पूजिताः,
सूरीणां मुकुटाः जयन्ति भुवने श्रीनेमिसूरीश्वराः ॥ ७ ॥
तत्पट्टेऽमितधीधनाश्रय उदयश्रीमानमन्दप्रभः,
सूरीशोऽसमशक्तिबुद्धिकलितानैकान्तशास्त्रव्रजः ।
सिद्धान्तोदधिपारगो जिनमतश्रद्धाऽद्वितीयालयः,
शिष्याध्यापनकर्मठो विजयते व्याख्यानवाचस्पतिः ॥ ८ ॥
तत्पट्टे गुणनन्दनोऽनुपमया बुद्ध्याप्रगल्भोऽखिले,
तन्त्रे गूढरहस्यवेदनपटुः स्याद्वादविद्याचणः ।
श्रीमान्नन्दनसूरिरासप्रवरे नेम्याख्यसूरीश्वरे,
भक्तोऽनन्यतया सुकल्पननिधिर्जीयाच्चरित्रैकभूः ॥ ९ ॥
तच्छिष्येण तदात्ततत्त्वमतिना सिद्धान्तसेवात्मिका,
मीमांसेयमुदीरिता मुनिशिवानन्देन भङ्गोज्वला ।
श्रीमद्भिर्गुरुभिः समिद्धकृपया दृष्टाविशुद्धान्वया,
भूयाद्बालसुखावबोधफलिका मोदप्रदा धीमताम् ॥ १० ॥
जीवद्वीरसुबिम्बयुङ् मधुमतीद्रङ्गे सुरङ्गमहा—
राज्येराजति सूरिचक्रमुकुटश्रीनेमिसूरिप्रभोः ।
वर्षे वैशरशून्यशुन्यनयने श्रीविक्रमादित्ये,
मीमांसा जयतात् कृताऽऽश्विनासिते राकादिनेशारदे ॥११॥

इति सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जगद्गुरु-शासनसम्राट्-सूरि-
चक्रचक्रवर्ति-प्रभूततीर्थोद्धारक-सन्दृब्धानेकग्रन्थ-
कदम्बप्रौढप्रभावाऽऽबालब्रह्मचारि-तपागच्छा-
धिपति भट्टारकाचार्य-महाराजाधिराज
श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वर-पट्टालङ्कार-
सिद्धान्तवाचस्पति-न्यायविशारद
श्रीमद्विजयोदयसूरिपुरन्दर पट्टपूर्वा-
चलदिनमणिन्यायवाचस्पति-
सिद्धान्तमार्तण्ड-शास्त्र-
विशारद-कविरत्न-प्रौढ-
प्रतिभा-प्रभाव
श्रीविजयनन्दनसूरिशेखरा-
न्तिषदणु-मुनि-
शिवानन्दविजय
विनिर्मितमिदं
सप्तभङ्गी-
मीमांसाप्र-
करणम् ॥
॥ समाप्तम् ॥

श्रीनिक्षेपमीमांसाप्रकरणम्

रचयिता
प्राच्य-नव्यन्यायनिष्णातः
मुनिश्री शिवानन्दविजयजी

अर्हम् ।

॥ श्रीकदम्बाचलतीर्थेशमहावीराय नमः ॥

॥ सर्वलब्धिसंपन्नाय श्रीगौतमगणभृते नमः ॥

सकल-स्वपरसमयपारावारपारीण--सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सूरिचक्रचक्रवर्ति-शासनसम्राट्-जगद्गुरु-तीर्थसंरक्षणैकप्रवण-प्रभूततीर्थोद्धारक-विद्यापीठादिप्रस्थान-पञ्चकसमाराधक--तपोगच्छाधिपति--भट्टारकाचार्य-वर्य-श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरपट्टालङ्कारान्तेवासि सिद्धान्तवाचस्पति-न्यायविशारदाचार्य श्रीविजयोदय-सूरि-पट्टालङ्करान्तेवासि-न्यायवाचस्पति-सिद्धान्त-मार्तण्ड--शास्त्रविशारद--कविरत्नाचार्यश्रीविजयनन्दनसूरिशिष्यरत्नमुनिश्रीशिवानन्दविजयप्रणीता-

॥ श्री निक्षेपमीमांसा ॥

ऐन्द्रश्रेणीनतं वीरं, प्रमाणनयदर्शिनम् ।
विशुद्धसर्वनिक्षेपं, नौमि कादम्बतीर्थेशम् ॥ १ ॥
वर्त्तमानगणाधीशं, सर्वतन्त्रस्वतन्त्रकम् ।
विजयनेमिसूरीशं, प्रौढसाम्राज्यशालिनम् ॥ २ ॥
उदयसूरिनामानं, सर्वराद्धान्तवेदिनम् ।
श्रीमन्नन्दनसूरीशं, न्यायशास्त्रविशारदम् ॥ ३ ॥
एतान् पूज्यान्नमस्कृत्वा, शिवानन्दाभिधोमुनिः ।
कुर्वे निक्षेपमीमांसां, नयविचारगर्भिताम् ॥ ४ ॥

यद्यपि तत्त्वार्थाधिगमे कर्तव्ये अधिगमविषयास्तत्त्वार्थाः प्रथममुपदेष्टव्याः, विषयनिरूप्यं हि ज्ञानमधिगमशब्दप्रतिपाद्यं विषयोपदर्शनमन्तरेण दुरधिगममतो जीवाजीवादयस्तत्त्वार्थाः प्रथमतोऽभिहिताः, न चाधिगमोपायमन्तरेण तेषामधिगमस्संभवतीत्यधिगमोपायभूतं प्रमाणं नयश्चाभिधातव्यं निक्षेपस्तु न तत्त्वं तन्त्रान्तरीयैस्सर्वथाऽनादृतस्वरूप एव, न चाधिगमोपायभूतप्रमाणनयापेक्षित इति कथमकस्मादेव तत्त्वस्वरूपतदधिगमोपायभूतप्रमाणनयस्वरूपोपदर्शनान्तराल एव निरूपणीयभावमुपगच्छति, यदि चास्य तत्त्वस्वरूपत्वं, तदा तत्त्वपरिगणनप्रवणसूत्रेऽस्यापि सन्निवेशो युक्तः, यदि वा तत्त्वार्थाधिगमोपायभूतस्सोऽभिमतस्तदा प्रमाणनयसमकक्षतया प्रमाणनययोरधिगमसाधनत्वेनोपदर्शके सूत्रेऽस्योपक्षेपो युक्तो भवेत्, यदि तु तत्त्वतदधिगमोपायविलक्षणमपि तत्त्वव्याख्यानाङ्गतयोपदेशार्होऽयं तदा सन्त्यन्यान्यपि तत्त्वव्याख्यानाङ्गानि तन्निरूपणप्रवणसूत्रसन्निधापितस्वरूप एवायं भवितुमर्हति, अथापि तत्त्वार्थप्रतिपादकपदशक्तिग्रहणप्रवणवचनसन्दर्भस्वरूप एवायं निक्षेपोऽनेन विना कस्यापि पदस्य स्वस्वप्रतिनियतार्थगोचरशक्तिग्रह एव न सम्भवति ततः प्रतिनियतार्थशक्त्यधिगतये निरूपणीयतामञ्चत्ययं, ततः तत्त्वशास्त्रप्रतिपाद्यं तत्त्वार्थोपदर्शकसूत्रादपि प्रथममस्य सूत्रणं न्याय्यं, निक्षेपं शक्तिग्राहकलक्षणमन्तरेण तत्त्वार्थप्रतिपादकसूत्रतोऽपि प्रतिनियतस्वार्थप्रतिपादनासम्भवात्, यदि च तत्त्-

त्पदशक्तिग्राहककोशादितो निक्षेपमन्तरेणापि तत्तत्सूत्रार्थ-प्रतिपत्तिस्सम्भवतीति विभाव्यते तर्हि कोशादित एव व्याख्यानान्तरमप्युपपद्यत इत्यानर्थक्यमेवास्य, तथापि, अतत्त्वेन तत्त्वव्यवस्थायास्तत्तत्तत्त्वप्रतिपादकपदशक्तिग्रहस्य प्रकरणादिवशोपजाताऽप्रतिपत्तिसंशयविप्रतिपत्तिव्यवच्छेदफलकयथास्थानविनियोगस्य चानुपपत्तेस्तत्त्वनीगितिनिबन्धनयोः प्रमाणनययोरिव जीवपदं नामजीवे स्थापनाजीवे द्रव्यजीवे भावजीवे च शक्तमित्येवं शक्तिग्राहकस्य शब्दार्थरचनाविशेषलक्षणस्य निक्षेपस्य जीवनामकनृपादिवर्णने प्रसङ्गाज्जीवः स्वमन्त्रिणा सार्द्धमित्यादिवाक्ये जीवपदेन जीवनाम्नो नृपविशेषस्यैव ग्रहणं न तु सत्त्वमात्रस्वरूपस्य भावजीवस्य, तथा बुद्ध्युपरचितसंस्थानविशेषानुकारजीवप्रतिकृतिप्रतिष्ठोपजातमाहात्म्यजीवप्रतिमादर्शनप्रसङ्गे जीवं द्रष्टुमेते गच्छन्तीत्यदौ जीवपदेन स्थापनाजीवस्यैव ग्रहणं न तु भावजीवादेः, तथा यो मनुष्य आयत्यां देवो भविष्यति स भाविदेवावस्थाजीवकारणत्वाद्द्रव्यजीवस्तदुपवर्णनप्रसङ्गे तं जीवं द्रष्टुमिच्छामि यो देवत्वमवाप्स्यतीत्यादिवाक्ये जीवपदेन द्रव्यजीवस्यैव जीवविशेषस्य ग्रहणं न तु नामजीवादेः, एवं उपयोगलक्षणो जीवः उपयोगो जीवस्य लक्षणमित्यादिवाक्ये जीवपदेन भावजीवस्यैव ग्रहणं, न तु नामजीवादेरित्येवमप्रस्तुतार्थापाकरणप्रस्तुतार्थव्याकरणप्रयोजनकस्य तत्त्वार्थस्वरूपत्वमेव, शक्तिग्राहकशब्दार्थरचनाविशेषलक्षणस्यास्य तन्त्रान्तरीयैर्निक्षे-

पशब्देनानभिधानेऽप्यादरणं समस्त्येव, "व्यक्त्याकृतिजातयः पदार्थाः" इत्येवमभ्युपगच्छद्भिर्गौतमीयैर्द्रव्यस्थापनाभावनिक्षेपाः अभ्युपगताः, यतो व्यक्तिर्द्रव्यम् , आकृतिः स्थापना, जातिर्भाव इत्येवं निरुक्तनिक्षेपत्रयाभ्युपगमस्तेषां स्पष्टं प्रतीयते, घटमुच्चारयतीत्यत्र घटनाम्नो घटशब्दार्थत्वाभावे घटाद्यर्थानामुच्चारणकर्मत्वाभावात्तद्वाक्यं नान्वयबोधं प्रमात्मकं जनयेदिति तत् प्रामाण्यान्यथानुपपत्त्या नाम्नोऽपि पदार्थत्वं स्वीकरणीयमेवेति, वैयाकरणैर्नाम्नः स्ववाच्यत्वं स्वीकृतमेवेति न निक्षेपस्य नामादिचतुष्टयरूपतया स्याद्वादिभिरभ्युपगतस्य तन्त्रान्तरीयैस्सर्वथाऽनादृतस्वरूपत्वम् , तत्त्वार्थाधिगमोपायभूतेन प्रमाणेन नयेन चावश्यमपेक्षितव्य एव निक्षेपः, यतः श्रुतप्रमाणं तावच्छक्तिग्रहादेवोपयोगस्वरूपमुपजायत इति कारणतयैव तत्रापेक्षणीयो निक्षेपः, शब्दरूपस्यापि श्रुतस्य शक्तिग्रहसहकृतस्यैव शाब्दप्रमाजनकत्वात्प्रामाण्यं नान्यथेति सहकारिविधया तस्यापि निक्षेपाऽपेक्षा, स्याद्वादकेवलज्ञाने सकलार्थविभासने इति वचनात्किंचिद्विभ्युपेतस्य श्रुतलक्षणवाक्यस्यैवानन्तधर्मात्मकवस्तुविषयकज्ञानलक्षणप्रमाजनकत्वेन प्रामाणं, तज्जनितस्यैव शाब्दबोधस्यानन्तधर्मात्मकवस्तुविषयकत्वेन प्रामाण्यमिति वस्तुगत्या स्याद्वादप्रभवशाब्दज्ञानकेवलज्ञानयोरेव प्रामाण्यम् , ज्ञानान्तरस्य च नानन्तधर्मग्राहित्वमिति नानन्तधर्मात्मकवस्तुग्राहित्वमिति तल्लक्षणं प्रामाण्यं संङ्गतिमङ्गति, शास्त्रे च प्रत्यक्षपरोक्षभेदेन प्रमाणस्य

द्वैविध्यम्, तत्र प्रत्यक्षस्य सांव्यवहारिकपारमार्थिकभेदेन द्विविधत्वम्, तत्रापि सांव्यवहारिकस्येन्द्रियानिन्द्रियजभेदेन द्वैविध्यम्, पारमार्थिकस्यापि सकलविकलभेदेन द्वैविध्यं तत्र सकलस्य केवलज्ञानस्यैकविधत्वमेव। विकलस्य तु अवधिमनःपर्यवभेदेन द्वैविध्यम्, परोक्षस्य च स्मरणप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदेन पञ्चविधत्वम्, सर्वेषां च प्रत्यक्षप्रभेदानां परोक्षप्रभेदानां च प्रामाण्यमनुमतम्, तदर्थं प्रमाणतयाऽभिमतेषु सर्वेषु ज्ञानेषु साक्षात्परम्परया वा स्याद्वादसंस्कारोऽपेक्षणीयः, स्याद्वादसंस्कारबलादेव च प्रतिनियतधर्मप्रकारेण वस्तुग्राहिण्यपि ज्ञाने तद्वस्तुगतास्सर्वेऽपि धर्माः प्रतिभासन्ते, एतावाँस्तु विशेषो यद्धर्मादीनां तत्तज्ज्ञानासाधारणकारणेन्द्रियादिबलात्प्रतिभासनं तत्तद्धर्माकारोल्लेखशालितया तज्ज्ञानस्यानुभवनं, स्याद्वादसंस्कारावभासितानां च धर्माणां तु तत्र प्रतिभासनेऽपि न तत्तदाकारोल्लेखः। खण्डनखाद्ये च स्थैर्यसाधकप्रत्यभिज्ञास्वरूपोपवर्णनप्रसङ्गे स्याद्वादसंस्कारबलाच्छाब्दबोधानात्मकेऽपि प्रत्यभिज्ञाने सप्तभङ्गीपरिदृष्टधर्मावभासनं पूज्यपादैः श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायैरुपपादितम्, एतावता स्याद्वादसंस्कारपरिकर्मितमतीनां प्रमातॄणां यद्यत्प्रत्यक्षात्मकं परोक्षात्मकं वा प्रमाणं तदनन्तधर्मात्मकवस्तुविषयकत्वात्प्रमाणमिति सिद्धं भवति, तथा च तत्तत्पदप्रतिनियतार्थगोचरशक्तिग्राहकत्वान्निक्षेपस्य यथाश्रुतप्रमाणापेक्ष्यत्वं तथा प्रमाणान्तरापेक्ष्यत्वमपि, प्रमाणान्तराणामपि स्याद्वादसंस्का-

शेषजातानन्तधर्मग्राहकत्वस्वभावानां शक्तिग्रहापेक्षया अव-श्यम्भावात्, तथा नयापेक्ष्यत्वमपि निक्षेपस्य, यतोऽनन्त-धर्मात्मकवस्तुग्राहिणः प्रमाणादेवानन्तधर्मात्मनो वस्तुनः सिद्धिः किन्तु अनन्तधर्मेषु परस्परविरुद्धा अपि धर्माः सन्निविष्टाः यथा भेदाभेदौ नित्यत्वानित्यत्वे सत्त्वा-सत्त्वे सामान्यविशेषावित्येवमादयस्तेषां च विरोधोन्मूल-नसमर्थापेक्षाभेदोपनायकनयाश्रयणमन्तरेण नाविरुद्धतयाऽवग-तिर्भवितुमर्हति जाग्रति च तेषां विरोधे जायमानमपि ज्ञान-माहार्यं संशयात्मकं वा भवेत्, अतोऽनन्तधर्मात्मकवस्त्वंश-भूततत्तद्धर्मस्यापेक्षाभेदेन ग्राहको नयोऽभ्युपगतः, अनन्तध-र्मात्मकस्य वस्तुनः प्रमाणान्तरपरिच्छेद्यत्वेऽपि यच्छ्रुतप्रमाण-परिच्छिन्नानन्तधर्मात्मकवस्त्वंशावगाहिप्रमात्रभिप्रायस्यैव न-यत्वमभिमतं तेन तत्तत्प्रतिनियतनिमित्तापेक्षया तत्तद्धर्मावबो-धकशब्दप्रभवज्ञानस्यैव नयत्वमुन्नीयते, अत एव श्रुतप्रमाणांशा एव नयाः, यद्यपि प्रत्यक्षादिप्रमाणकारणादप्येकांशग्राहिणो नयस्य यस्स्वभावस्स तस्याप्यभ्युपेय एव, अन्यथा प्रमाणानां कारणभेदेन प्रत्यक्षादिभेदाभ्युपगमो नयानां च विषयभेदकृत एव भेद इति कथं स्यात्, एवञ्च शब्दसमुत्थस्य नयस्य शक्ति-ग्राहकनिक्षेपप्रभवत्वं स्वीकरणीयमेवेति नयापेक्ष्यत्वमपि निक्षे-पस्य सिद्धं भवति, यथा च निक्षेपः प्रमाणेनापेक्षणीयो नयेन च, तथा प्रमाणनयावपि निक्षेपेणापेक्षणीयौ तत्र

प्रमाणविषयोऽनन्तधर्मात्मकं वस्त्विति वस्तुनो यावन्तो धर्माः प्रत्येकं तत्तद्धर्मविशिष्टं वस्तु तत्तद्धर्मो वा तद्वस्त्वभिधायकतच्छब्दवाच्य इत्येवं निक्षेपस्वरूपव्यवस्थायां साक्षात्परम्परया वा सर्वस्यापि पदार्थस्य सर्वेऽपि धर्माः एकस्यापि वस्तुनो भवन्त्येवेति निक्षेपानामानन्त्यमेव,तदाश्रयणेनैव "सर्वे शब्दाःसर्वार्थवाचकाः" इति,किन्त्वेवं कल्पनायां प्रसिद्धाप्रसिद्धपदविभागो दुर्घट आपद्येतेत्यतस्सर्वनयसङ्ग्राहिणि भगवत्प्रवचने जघन्यतोऽपि निक्षेपचतुष्टयमभिमतम्, प्रमाणेन यथा जघन्यतो निक्षेपचतुष्टयं शक्तिसङ्कोचेन, तथा नयेन ततोऽपि शक्तिसङ्कोचनो नामादिनिक्षेपत्रयं द्रव्यास्तिकनयस्य, भावनिक्षेप एव पर्यायास्तिकनयस्य, केषाञ्चिन्मते सङ्ग्रहव्यवहारनयौ स्थापनावर्जान्त्रीन्निक्षेपानभ्युपगच्छतः इत्यादि, तथा च यस्मिन्नये यद्रूपवस्तु तन्नयतस्तत्रतद्वस्तुवाचकपदशक्तिग्राहको निक्षेपः प्रवर्तत इति, इत्थं च प्रमाणनयाभ्यामपेक्षणीयत्वान्निक्षेपस्तन्निरूपणात्प्राक् निरूपणार्ह इति, निक्षेपस्य तत्त्वस्वरूपत्वेऽपि शक्तिग्राहकशब्दात्मकरचनाविशेषस्वरूपत्वेन शब्दात्मकत्वं शब्दस्य च पौद्गलिकतया धर्माधर्माकाशपुद्गलात्मकचतुर्भेदलक्षणाजीवपदार्थान्तर्भूतपुद्गलपदार्थान्तर्भूतत्वेनाजीवतत्त्वकथनमेव तत्कथनमिति न पृथक्त्वतया तत्त्वपरिगणनप्रवणसूत्रेऽस्य सन्निवेशः ।

एवमेव तत्त्वाधिगमोपायभूतयोः प्रमाणनययोस्तत्त्वरूपत्वेऽप्युपयोगस्वरूपत्वेनोपयोगलक्षणो जीव इत्येवं लक्ष-

णलक्षितं जीवतत्त्वान्तर्भूतत्वेन न पृथक्त्वस्वरूपत्वेन तत्त्व-परिगणनप्रवणसूत्रे सन्निवेशः, जीवाजीवादितत्त्वानां नाम-स्थापनादिरूपतया चतुर्धाऽवस्थानमित्येवं तत्त्वावान्तरभेद-प्रपञ्चनरूपस्य निक्षेपस्य तत्त्वविवरणाङ्गत्वमेव न तु तत्त्वा-धिगमोपायत्वम्, तत्त्वाधिगमे सोऽपि विषयविधया सन्नि-विष्ट इति विषयतया तत्त्वाधिगमम्प्रति तादात्म्येन विषय-विधया तस्य कारणत्वमलभ्य तत्त्वाधिगमोपायत्वेऽपि कथ-म्भावाकाङ्क्षयेतिकर्तव्यतयैव तत्त्वाधिगमोपायत्वं न तु करणाकाङ्क्षया करणतया प्रमाणनययोरिव तथात्वमतो न प्रमाणनययोरधिगमकरणतयोपदर्शनप्रवणसूत्रेऽस्योपक्षेपः।

निर्देशस्वामित्वादिकं सत्संख्याक्षेत्रादिकञ्च यद्व्याख्याङ्गं तेन सहास्य व्याख्याङ्गत्वसामान्यलक्षणसारूप्यसद्भावेऽपि तत्त्व-स्वरूपप्रपञ्चनरूपोऽयं तद्वैशिष्ट्यावधारणप्रवणधर्मसमर्थनादिरूपं च निर्देशादिकमित्येवं वैलक्षण्यसद्भावान्निर्देशादिप्ररूपकसूत्रे सत्संख्याद्युपदर्शकसूत्रे च नास्याभिधानं किन्तु पृथक्सूत्रसूत्र-णीयत्वमेव।

"शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद्व्यव-हारतश्च। वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥ १॥" इति

वचनान्नैकस्मादेव शक्तिग्रहः किन्त्वनेकानि शक्ति-ग्राहकाणि, ततश्च शक्तिग्राहकनिक्षेपानुपस्थितावपि सामा-

न्यतो जीवाजीवादिपदानां शक्तिग्राहकान्तरादपि शक्तिग्रहः सम्भवत्येव, जीवाजीवादितत्त्वप्रतिपादकं सूत्रं तावत्तत्त्वोद्देशसूत्रमेव, उद्देशश्च नाममात्रेण वस्तुसङ्कीर्तनमेव तत्र नामजीवत्वस्थापनाजीवत्वादीनां जीवत्वाद्यवान्तरधर्माणामनवगमेऽपि जीवत्वादिसामान्यधर्मेण जीवादौ कोशादितो गृहीतसङ्केतिकाज्जीवादिपदादेव जीवादिपदार्थोद्देशस्सम्भवतीति न नामजीवत्वाद्यवान्तरधर्मावच्छिन्ने जीवादिपदशक्तिग्राहकस्य निक्षेपस्यावश्यकत्वमिति तत्त्वोद्देशसूत्रात्प्रथमत एव निक्षेपसूत्रसूत्रणस्य नावश्यकत्वम्, किन्तूद्देशसूत्रसूत्रितजीवादिसामान्यज्ञानसञ्जातावान्तरधर्मजिज्ञासाविषयीभूतावान्तरधर्मावच्छिन्नावगमप्रवणतत्तद्धर्मावच्छिन्नशक्तिग्रहनिदाननिक्षेपसूत्रणम्, इत्थं व्याख्याङ्गतया समर्थितात्मनो निक्षेपस्य शक्तिग्राहककोशादितो गतार्थत्वान्निष्प्रयोजनत्वेनानिरूपणीयत्वं तदास्याद्यदि निक्षेपतो यथा नामजीवस्थापनाजीवद्रव्यजीवभावजीवेषु जीवपदस्य परस्परासङ्कीर्णशक्तिप्रतिपत्तिस्तथा कोशादितोऽपि भवेत्, न चैवम्, यदि कश्चिद्विपश्चिज्जैनागमाध्ययनादिनाऽवधारितनिक्षेपचतुष्टयस्वरूपोऽभिनवस्वविरचितकोशे जीवो नामाकृतिद्रव्यभावजीवेष्विति, एवमजीवादिशब्द इत्येवमभिदध्यात्, तेन च वचनेन नामजीवादिषु जीवादिपदशक्तिग्रहः सम्भवति, तदाप्यागमे निक्षेपनिरूपणस्य मूलतयाऽवस्थानमायातमेव, तथा च कोशः कथं स्वोपजीव्यमागमगतनिक्षेपनिरूपणस्य निष्प्रयोजनभावमानयेत्, अपि च जीवपदस्य

नामजीवे शक्तिं तथाविधकोशादवगच्छन्नपि पुमान् यः खलु नामजीवशब्दवाच्यः स जीवशब्द वाच्य इत्येवमवधारयेत्, प्रकृतार्थनिरपेक्षनामार्थान्यतरपरिणतिर्नामनिक्षेप इत्येवं लक्षणलक्षितं नामनिक्षेपमजानानः प्राणधारणलक्षणजीवनरहितस्य कस्यचिद्वस्तुनः केनचिदयं जीवपदवाच्य इत्येवं जीवपदसङ्केतमात्रेण प्राणिवाचकजीवशब्देनात्मादिपर्यायशब्दानभिधेया परिणतिर्नामजीव इति नावधारयत्येव, तथा जीवपदस्य स्थापनाजीवे शक्तिं तथाविधकोशादवबुद्ध्यमानोऽपि यः खलु स्थापनाजीवशब्दवाच्यः स जीवशब्दवाच्य इत्येवं सामान्यतोऽवधारयितुं शक्नुयात्, यत्तु वस्तु तदर्थवियुक्तं तदभिप्रायेण चित्रादौ तादृशाकारमक्षादौ च निराकारं स्थाप्यते चित्राद्यपेक्षयेत्वरं नन्दीश्वरचैत्यप्रतिमाद्यपेक्षया च यावत्कथिकं स स्थापनाजीव इत्येवं लक्षणलक्षितं स्थापनानिक्षेपमजानानो जीवनरहितं जीवोऽयमवगन्तव्यमित्यभिप्रायेण स्थापितं जीवाकारसदृशाकारं तदाकाररहितं वा वस्तु स्थापनाजीवोऽयमिति नावधारयत्येव तदनवधारणे चात्र जीवशब्दो वाचकतया प्रवर्तत इत्यपि कथं जानीयात्, तथा जीवपदस्य द्रव्यजीवे शक्तिं तथाविधकोशाज्जानन्नपि पुमान्, यः खलु द्रव्यजीवशब्दवाच्यः स जीवशब्दावाच्य इत्येवमेवावधारयेत्, भूतस्य भाविनो वा भावस्य कारणं यन्निक्षिप्यते स द्रव्यनिक्षेप इत्येवं लक्षणलक्षितं द्रव्यनिक्षेपमनवबुद्ध्यमानः भाविदेवजीवपर्यायकारणं मनुष्यपर्यायपन्नं जीवं द्रव्यजीवमिति नावगच्छत्येव, तथा

जीपदस्य भावजीवे शक्तिमुक्तकोशान्निश्चिन्वन्नपि पुमान् यः खलु भावजीवशब्दवाच्यः स जीवशब्दवाच्य इत्येवमेव निश्चिनुयात, विवक्षितक्रियानुभूतिविशिष्टं स्वतत्त्वं यन्निक्षिप्यते स भावनिक्षेप इत्येवं लक्षणलक्षितं भावनिक्षेपमनवधार्यमाणः प्राणधारणलक्षणजीवनक्रियामनुभवन् जीवो भावजीव इति नावधारयत्येवेत्यतो न कोशादितो निक्षेपस्य गतार्थता ।

ननु स्वर्गाधिपस्य शक्रस्य वाचकं यदिन्द्रपदं तस्य स्वर्गाधिपो भावेन्द्रो वाच्य इति भावेन्द्र इन्द्रपदशक्य इत्येवं भावनिक्षेपस्तत्र शक्तिग्राहकः, गोपालदारके सङ्केतितं यदिन्द्रपदं तस्य नामेन्द्रो गोपालदारको वाच्य इति नामेन्द्र इन्द्रपदशक्य इत्येवं नामनिक्षेपस्तत्र शक्तिग्राहको भवतु नाम, किन्तु गोपालदारके पित्रादिना इन्द्रनामैव सङ्केतितं न तु तद्व्यतिरिक्तं नाम तत्र सङ्केतितं समस्ति, तथा च तत्र भावनिक्षपादिप्रवृत्तिः कथं, भावेन्द्र इन्द्रपदवाच्य इत्येवं भावनिक्षेपो गीर्वाणनाथस्य भावेन्द्रस्येन्द्रपदशक्तिग्राहको न तु गोपालदारकस्य यदसाधारणस्वरूपं तस्येन्द्रपदशक्यत्वग्राहको येन तदपेक्षया भावनिक्षेपोऽयं भवेत्, तथा स्थापनेन्द्र इन्द्रपदशक्य इत्येवं प्रवर्त्तमानस्तत्र स्थापनानिक्षेपः स्वर्गाधिपस्येन्द्रस्य या सद्भूता स्थापनाऽसद्भूता वा तस्या इन्द्रपदशक्तिग्राहक इति भावेन्द्राकृत्यपेक्षया स्थापनानिक्षेपोऽयं न तु गोपालदारकस्य या प्रतिकृतिस्तस्या इन्द्रपदशक्तिग्राहक इति न तदपेक्षया

स्थापनानिक्षेपोऽयं, एवं द्रव्येन्द्र इन्द्रपदशक्य इत्येवं प्रवर्त्तमानस्तत्र द्रव्यनिक्षेपो यो मृत्वा स्वर्गाधिपो भविष्यति, स्वर्गाधिपो भूत्वेदानीं मानवभवमलङ्करोति स द्रव्येन्द्र इति तस्येन्द्रपदशक्तिग्राहक इति स्वर्गाधिपापेक्षयैव द्रव्यनिक्षेपोऽयं न तु यो गोपालदारको भविष्यति भूतो वा तस्य गोपालदारककारणीभूतस्य तत्कार्यस्य वा शक्तिग्राहक इति न गोपालदारकापेक्षया द्रव्यनिक्षेप इति चेद्, उच्यते, गोपालदारकस्याधुनिकेन्द्रपदसङ्केतविषयीकृतस्य स्वर्गाधिपेन्द्रापेक्षया नामेन्द्रत्वमेतावतैवोच्यते 'इदिङ' ऐश्वर्ये इति धात्वर्थैश्वर्यविशेषस्य स्वर्गाधिपगतस्य गोपालदारकेऽभावात्तस्य भावेन्द्रत्वासम्भवात्, परन्तु गोपालदारकस्य पुरुषविशेषस्य यदसाधारणस्वरूपं तदेव तस्य भावस्तद्रूपं प्रवृत्तिनिमित्तमुररीकृत्य तत्र पित्रादिभिरिन्द्रेति नाम प्रयुज्यते तदसाधारणधर्मविशिष्ट इन्द्रपदवाच्य इत्येवं भावनिक्षेपो गोपालदारकेऽसाधारणधर्मलक्षणभावपुरस्कारेण शक्तिग्राहकतया प्रवर्त्तमानो गोपालदारकेन्द्रापेक्षया भावनिक्षेपः, तस्य गोपालदारकस्य यदिन्द्रेति नाम तदुपजीवनेन यः कश्चित् स्वपुत्रादेरिन्द्रोऽयमित्येवं सङ्केतं करोति सङ्केतितश्च पुरुषो गोपालदारकगताऽसाधारणधर्मलक्षणभावात्मकेन्द्रार्थवियुत इति कृत्वा गोपालदारकापेक्षया नामेन्द्र इति व्यपदिश्यत इत्येवं गोपालदारकेन्द्रापेक्षयाऽपि नामनिक्षेपप्रवृत्तिर्न दुर्घटा, तथा गोपालदारकेन्द्रस्य या प्रतिकृतिस्तामुपादाय यमिन्द्रपदवाच्य इत्येवं यस्स्थापनानिक्षेपस्स गोपालदारकप्रति-

कृताविन्द्रपदशक्तिग्राहकः तद्बलात्तत्रापीन्द्रोऽयमिति व्यपदेशः प्रवर्तते, व्यवहरन्ति च लोका—इन्द्रं द्रष्टुं वयं गच्छामः, तत्र किं स्वर्गाधिपस्य प्रतिबिम्बं द्रष्टुं यूयं गच्छथ इति जिज्ञासायां येयं गोपालदारकस्येन्द्रस्य प्रतिकृतिरस्मिन्मन्दिरे तदीयैर्निर्मिता तां द्रष्टुं गच्छामो न तु स्वर्गाधिपस्येन्द्रस्येति भवतीत्थं तस्यापि स्थापनानिक्षेपस्य प्रवृत्तिः, स एवेन्द्रो भवान् भावी भूतो वा यश्च गोपजः इत्येवं कथानकपद्ये गोपालजस्य यः पूर्वभवीयपर्यायो भाविभवीयपर्यायो वेन्द्रशब्देन कथ्यते स द्रव्येन्द्रो गोपालपुत्रेन्द्रापेक्षयैवेति तत्र शक्तिग्राहको निक्षेपो द्रव्यनिक्षेपो गोपालदारकापेक्षया प्रवृत्तिमासादयत्येव ।

नन्वेवमपि ये भावाः केवलज्ञानैकसमधिगम्याः शब्दानभिलाप्यास्तेषु नामनिक्षेपस्याननुमतत्वेऽपि द्रव्याकृतिभावनिक्षेपानामनुमतत्वमेव तच्च शक्तिग्राहकशब्दरूपरचनाविशेषस्य निक्षेपस्वरूपत्वे न स्यादेव, यस्य हि वाचकं किञ्चिन्नाम समस्ति तद्वाचकाव्यवहितपूर्ववर्तितया स्थापनाद्रव्यभावपदानां योजनाया तदुपस्थाप्येषु तद्वाचकपदस्य शक्तिग्राहकवर्णादिविन्यासः कर्तुं शक्यते येषां तु वाचकमेव नास्ति तेषां न सम्भवत्येवोक्तस्वरूपो निक्षेप इति चेत्, तेषामाकृतिः सद्भूताऽसद्भूता वा, द्रव्यंपूर्वपरिणामरूपमुत्तरपरिणामरूपं वा भावश्च स्वासाधारणस्वरूपोऽर्थक्रियाकारी समस्त्येव त एते निक्षेपविषया आकृतिद्रव्यभावास्सन्त्येवेत्यतो भवन्ति ते निक्षेपस्वरूपयोग्याः केवल

स्ववाचकनामविशेषाभावादेव तेषु शक्तिग्राहकतया वर्णावली न व्यवहारपद्धतिमवतरति, नाम तु स्वरूपत एव तेषां नास्ती-त्यतो नामनिक्षेपस्यैव निक्षेपरूपाभावप्रयुक्तोऽभावो न त्वा-कृत्यादीनां, यदि तु केवलिप्रज्ञैव तेषां नाम, तदा तदादाय नामनिक्षेपप्रवृत्तिवत्स्थापनानिक्षेपादिप्रवृत्तिरपि सुघटैव तदा-श्रयणेनैव ते व्याख्यातुं शक्याः। ऋजवस्तु व्याख्याङ्गतयैव निक्षेपा अभ्युपगताः, ये च न पदाभिधेयास्तेषां स्वरूपो-पदर्शकं पदमेव व्याख्येयं नास्ति ततो नास्ति तत्र व्याख्यानं तदभावे तदङ्गानां निक्षेपाणामभावोऽपि न क्षतिम्मावहती-त्याहुरिति बोध्यम्, इत्थं निरूपणीयभावमञ्चतां पूर्वाचार्यै-स्तेषु तेषु ग्रन्थेषु प्ररूपितानामपि निक्षेपाणां किञ्चिद्वैशिष्ट्य-प्रतिपत्तये मयाऽपिकिञ्चिन्निरूपणमधिक्रियते तथाहि—

ननु प्रमाणनयपरिच्छेद्यानां तत्त्वानां विशेषतोऽधिगमाय व्याख्याङ्गतया निक्षेपास्समये नामस्थापनाद्रव्यभावभेदेन चत्वारो निर्दिष्टाः—

तत्र निक्षिप्यन्ते—स्थाप्यन्ते इति निक्षेपा इति निरुक्तिरपि तत्र तत्रादृता, । एतावतेदन्तावन्निक्षेपत्वमिति विशेषतो नाव-धारयितुं शक्यते। न च कर्म्मप्रत्ययान्त निक्षिप्यन्त इत्यनेन-निक्षेपकर्मत्वं कण्ठत एवोक्तं तदपि स्थाप्यन्त इत्यनेन स्थापना कर्मत्वरूपतया निष्टङ्कितमतो नानवधारणाऽऽश्लेशोऽपीति वा-च्यम्, नहि पर्यायसहस्रोक्तावपि स्वरूपतो घटत्वस्य घटपद

प्रवृत्तिनिमित्तस्यापरिच्छेदे घटपदादर्थविशेषावगतिः, एवं को निक्षेपः का वा स्थापना इत्येवं जाग्रति संशये निक्षेपकर्मत्वं स्थापनाकर्मत्वमित्यादिपर्यायान्तरघटितवचनसहस्रेणाप्यसंदिग्धासाधारणस्वरूपप्रतिपत्तेरनुदयात् ।

न च सङ्केतविशेषसम्बन्धेन निक्षेपपदवत्त्वमेव निक्षेपत्वं शास्त्रकाराणां नामस्थापनाद्रव्यभावेषु निक्षेपपदस्य सङ्केतो विद्यत इति सुघटं निक्षेपस्यावधारणमिति वाच्यम्, नामादिषु चतुर्षु प्रवृत्तिनिमित्तस्यैकस्यावधारणं विना सङ्केतस्यैव कर्त्तुमशक्यत्वात् ।

न च हर्यादिपदवन्नानार्थक एवायं निक्षेपशब्द इति नामत्वादि प्रत्येकमस्य प्रवृत्तिनिमित्तमिति तत्तद्रूपावच्छिन्ने निक्षेपपदस्य सङ्केतः कर्त्तुं शक्यत इति वाच्यम्, व्याख्याङ्गत्वाविशेषे सत्सङ्ख्यादिषु न निक्षेपपदस्य सङ्केतो नामादिषु च सङ्केतः कृतः इत्यस्य विनिगमकमन्तरेण नियन्तुमशक्यत्वात् ।

यथा च घटपटादिपदानामनादिकालतो लोकव्यवहारशास्त्रानुस्यूतानां सङ्केतः प्रतिनियतार्थगोचरोऽनादिकालत एवागतो न पर्यनुयोगपात्रं, न चैवं निक्षेपपदसङ्केतः, तस्यार्हतसिद्धान्त एव सुदृढनिरूढत्वादतो भवितव्यं केनचिद्विनिगमकेनेति चेत्, अत्रोच्यते, यथा वाक्यरचनाम्प्रति वाक्यार्थज्ञानत्वेन कारणत्वेन सन्नेव घट इति वाक्यम्प्रति सन्घट इति सुनय-

(नय) रूपवाक्यार्थज्ञानस्य, स्यात्सन्घट इति वाक्यम्प्रति स्यात्सन्घट इति प्रमाणरूपवाक्यार्थज्ञानस्य च कारणत्वमिति वाक्यविशेषरूपव्याख्याम्प्रत्यपि प्रमाणनययोः कारणत्वमेतच्च व्याख्यास्वरूपाप्रविष्टतयैव तन्निष्पादकत्वमिति न व्याख्याङ्गताव्यपदेशमर्हति, विशेषणभावप्रतिपादनमुखेन प्रवर्त्तमानवाक्यसन्दर्भरूपव्याख्यानस्य यद्विशेष्यस्वरूपाविर्भावकं यच्च विशेषणस्वरूपोपदर्शकं तद्व्याख्यानस्वरूपघटकतया (व्याख्यानविषयिताव्यापकविषयिताकतया) अवयविरूपसन्निविष्टावयववदङ्गीभाव विभर्ति, तत्र विशेषणस्वरूपाविर्भावकतया सत्सङ्ख्यादीनामङ्गतया व्याख्यानद्वारता, नामादीनां तु न विशेषणस्वरूपाविर्भावकतया, किन्तु कर्मधारयसमासैकनिविष्टविशेष्यभावापन्नवस्त्वभिधायकपदमात्राव्यवहितपूर्ववर्त्तितया विशेष्यस्वरूपविशेषविवेचनलक्षणविशेष्यस्वरूपाविर्भावकतया, एवञ्च कर्मधारयवृत्तिसमभिव्याहाराश्रयविशेष्यभावापन्नवस्त्वभिधायकपदमात्राव्यवहितपूर्ववर्त्तिवस्तुत्वव्यापकधर्मावच्छिन्नाशक्तविशेष्यवस्तुस्वरूपविशेषाविर्भावनप्रत्यलं वचनत्वं निक्षेपत्वमिति निक्षेपस्य सामान्यलक्षणम् ।

इदञ्च लक्षणं नामस्थापनाद्रव्यभावेषु समनुगतम्, तथाहि—नामघट इत्यादिस्वरूपे निक्षेपे कर्मधारयवृत्तिः समभिव्याहारो नामघटत्वादिः तदाश्रयो यद्विशेष्यभावापन्नवस्त्वभिधायक-

मात्रस्य घटादिपदादेरव्यवहितपूर्ववर्त्ति तन्नामपदादि तद्वस्तुत्व-व्यापकसत्त्वादिधर्मावच्छिन्नाशक्तं सत् विशेष्यवस्तुस्वरूप-विशेषाविर्भावनप्रत्यलमपि यतो विशेष्यवस्तु घटादि तस्य तस्य यः स्वरूपविशेषो नामघटादिः तदाविर्भावनप्रत्यलत्वं घटाद्यव्यवहितपूर्ववर्त्तिनामपदे समस्ति तथाभूतं वचनं नामपदं तत्त्वं नामपदे समस्तीति लक्षणसमन्वयः। एवं स्थापनाद्रव्य-भावेष्वपि, नामघट इत्यादौ कर्मधारयसमास एव नामनिक्षेप-प्रवृत्तिरिति बोधयितुं कर्मधारयवृत्तिसमभिव्यहाराश्रयेत्युक्तम्, मृद्घट इत्यत्र मृत्पदस्य न निक्षेपत्वमित्यावेदयितुं विशेष्य-भावापन्नवस्त्वभिधायकपदमात्राव्यवहितपूर्ववर्तीत्यत्राशेषार्थकस्य मात्रपदस्य निवेशः, नहि नाम्न इव मृत्पदस्याशेषविशेष्य-पदाव्यवहितपूर्ववर्त्तिता, तत्त्वादीनां विशेष्यवाचकपदत्वे तदव्यवहितपूर्ववर्त्तित्वस्य मृत्पदेऽभावात्, वस्तुत्वव्यापकधर्मा-वच्छिन्नाशक्तेति विशेषणात् सद्घटादिघटके सत्पदे न निक्षेप-त्वप्रसङ्गः एवं ज्ञेयघटादावपि. विशेष्यवस्तुस्वरूपविशेषाविर्भाव-नप्रत्यलमित्यनेन अन्यत्र कर्मधारये यथा विशेष्यवाचकपदा-व्यवहितपूर्ववर्त्तिविशेषणपदेन विशेष्यतावच्छेदकधर्मभिन्नप्रकार-तावच्छेदकावच्छिन्नो बोध्यते नैवमत्र किन्तु विशेषणविशेष्यप-दाभ्यां सम्भूयैकविशेष्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नस्यैवावबोधः।

यद्यपि नामनिक्षेपादिर्वचनविशेषोऽज्ञत्वादेव न कस्यचिद-र्थस्याभ्युपगन्ता प्रतिक्षेप्ता वा तथापि नामनिक्षेपाभ्युपगन्ता-

नयोऽपि नामनिक्षेप उच्यते, स वस्तुमात्रस्य नामस्वरूपत्वमभ्युपगच्छति, प्रमाणयति चात्रानुमानमिदम्, – अर्थो नामस्वरूपः, नामप्रतीतौ सत्यामेव प्रतियमानत्वात्, नाम्ना सहैव प्रतीयमानत्वाद्वा, नामस्वरूपवत्, यत्प्रतीतौ सत्यामेव यत्प्रतीयते तत्तत्स्वरूपं यथामृत्प्रतीतौ सत्यामेव प्रतीयमानो घटो मृत्स्वरूपमेवेति सामान्यव्याप्तिः. न चार्थस्य नामरूपत्वं पदार्थस्य यत्कार्यं तत्तन्नाम्नोऽपि स्यादित्यग्न्यादिशब्दोच्चारणे मुखदाहादिकं स्यादर्थावस्थानदेशे गुमगुमायमानता च स्यात्, रत्नादिशब्दोच्चारणादेव रत्नादिप्राप्तौ न तदर्थं प्रयासान्तरं कोऽप्यातिष्ठेदिति वाच्यम्, यथाहि–घटस्य मृद्रूपत्वे घटस्य कार्यं जलाहरणादि मृत्कार्यं भवति नहि तन्मृदो व्यतिरिक्तादेव जातं येन मृत्कार्यं न स्यात, एवं घटरूपार्थस्य घटनामरूपत्वे घटकार्यमपि घटनामकार्यं भवत्यैव, यथा च घटस्य पूर्वकाले उत्तरकाले च मृद एव सत्त्वेन घटकालेऽपि तस्या एव सत्त्वं घटस्य तु तदवस्थास्वरूपतयैव सत्त्वं न तु स्वातन्त्र्येण, तथा सति मृद्व्यतिरेकेणापि तदुपलब्धिः स्यात्, अतो मृत्सत्ता व्यतिरिक्तसत्ताकत्वाभाव एव घटस्य, एतदभिप्रायेणैवोच्यते––

"आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा"

इति तथैव घटरूपार्थस्य पूर्वकाले उत्तरकाले च घटनाम्न एव सत्त्वेन घटरूपार्थकालेऽपि च घटनाम्न एव सत्त्वं घटरूपार्थस्य

तु तदवस्थारूपतयैव सत्त्वं, न तु स्वातन्त्र्येण, तथा सति नामावगमव्यतिरेकेणापि तदवगमः प्रसज्येत, अतो नामसत्ताव्यतिरिक्तसत्ताकत्वाभाव एवार्थस्य, एतदभिप्रायेणैव चोच्यते " व्यक्तौ नष्टेऽपि नामैतन्नृवक्त्रेष्वनुवर्त्तते । तेन नाम्ना निरूप्यत्वाद्व्यक्तं तद्रूपमुच्यते " इति, यच्च नामोच्चारणकालेऽर्थकार्यमापादित तत्तदा स्याद्यदि यद्यत्कार्यं तत्तस्य सर्वास्ववस्थासु भवतीति नियमः स्यात्, न चैवं, तथा सति घटरूपार्थस्य जलाहरणादिकार्यं न कदाचिदपि विरमेत, योग्यता तु सहकारिपुरस्कारेण यथा घटरूपार्थस्य, तथा तदात्मकावस्थालक्षणादिसहकारिपुरस्कारेण नाम्नोऽपि, तथा च तत्सहकारिसम्पादनार्थमायासान्तरमपि न निष्फलम्, न ह्यर्थावस्थानदेशे गुमगुमायमानताप्रसङ्गोऽपि तदवस्थायां सूक्ष्मरूपेणैत्रावस्थानस्याभ्युपगम्यत्वात्, न चैवमुक्तदिशा दोषपरिहारेऽर्थरूपतैव शब्दस्यास्तु शब्द एवार्थाद्व्यतिरिक्तो मास्त्विति वाच्यं, यथा हि तद्घटरूपार्थविरहकाले तद्घटनाम्नः सत्त्वमित्यनुगामित्वं तस्य, नैवं तद्घटनामविरहकाले तद्घटरूपार्थस्य सत्त्वमित्यर्थस्याननुगामित्वाच्छब्दस्य चानुगामित्वात, अनुगाम्यननुगामिनोर्मध्येऽनुगामिसत्तैवाद्दता भवत्यनुगामिनः—यथा रज्जुसर्पमालादिष्वनुगामिन इदमर्थस्येत्येवं नीत्या नामनिक्षेपमतं परिष्कर्तुं सुकरम्, नामनिक्षेपाच्चाविर्भावो भर्तृहरिमतस्य, तन्मते चानाद्यनक्षरं शब्दब्रह्मैवोंकारस्वरूपं जगत उपादानम्, उपादेय।योपादानस्वरूपतयोपादानसत्तैवोपादेयसत्तेति सर्वस्य

वस्तुनः शब्दरूपता, तन्मते ज्ञानमात्रमेव शब्द सङ्कटितमूर्त्यैवाभासते निर्विकल्पकमपि किमपीत्येवमव्यक्तशब्दाकाराकारुषितमेव संवेद्यते अत एवोक्तं—

" न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके, यः शब्दानुगमादृते ।
अनुविद्धमिव ज्ञानं, सर्वं शब्देन भासते ॥ १ ॥
वाग्रूपता चेदुत्क्रामे,-दवबोधस्य शाश्वती ।
न प्रकाशः प्रकाशेत, सा हि प्रत्यवमर्शिनी ॥२॥ इति

एवं स्थापनानिक्षेपाभ्युपगन्ता नयोऽपि स्थापनानिक्षेपः, स च सर्वस्य वस्तुनः आकाररूपतां शास्ति, प्रमाणयति चानुमानम् , तथाहि—घटादिकं वस्तु पृथुबुध्नोदराद्याकाररूपं, तद्ग्रहणे सत्येव गृह्यमाणत्वात् , तद्ग्रहणमन्तरेणागृह्यमाणत्वाद्वा, अत्रापि व्याप्तिदृष्टान्तादिकं पूर्ववद्भावनीयम् इदमस्यैदम्पर्यम् ,—न हि घटादिकं नाम घकारोत्तराकारोत्तरटकारोत्तरात्वरूपानुपूर्वीरूपस्वाकारमन्तरेण क्वचिदपि प्रतीताववभासते, वाक्यमपि नीलो घट इत्यादिरूपं स्वन्तनीलादिपदोत्तरस्वन्तघटादिपदत्वरूपाकाङ्क्षास्वरूपाकाराकारुषितमेवावभासते, एवं प्रकरणपरिच्छेदाध्यायादिकं, किं बहुना एकोऽप्यकारादिर्वर्णः स्वव्यञ्जकलिप्यादिप्रतिनियतारोपिताकाराकारुषित एव बालानां प्रतीतिपथमधिरोहति, भाषावर्गणापुद्गलारब्धस्तु विभिन्नाकारमन्तरेणासङ्कीर्णस्वभावतया प्रतीतिपथं कथमारोहेत् ? द्रव्यमपि मृदादिगुणपर्यायविकलं

कदापि नोपलभ्यते, उपलम्भे वा स्वलक्षणमेवासौ जह्यात्, अत एवाचार्यदेशीयः द्रव्ये द्रव्यनिक्षेपस्य द्रव्यद्रव्य इत्येवंरूपस्य शून्यतामभ्युपगच्छति, गुणपर्यायसहितश्च पर्यायाकृतिरूपतयैवात्रभासते, सावयवानां च पुद्गलद्रव्याणामवयवसन्निवेशविशेषरूपाकृतिरूपतयैवोपलम्भ इति तेषामाकृतिरूपता निराबाधैव परमाणोरप्यन्यादृश आकारो वस्तुत्वादेव पक्षधर्मताबलादास्थेयः धर्माधर्माकाशजीवानां सप्रदेशत्वादाकृतिरूपतयैवावभासः, प्रदेशास्तु तदीयाः प्रदेशिवियुता न भवन्त्येवेति प्रदेश्याकृतिस्वरूपसन्निविष्टैव तेषां, गुणाश्च स्वाश्रयद्रव्याजहद्वृत्तय इति तदाकारेणैवाकारवन्तः, नीलाद्याकारप्रतीतिविषयत्वाच्च नीलाद्याकारवन्तः, सामान्यविशेषौ च न स्वतन्त्रौ किन्तु वस्तुस्वरूपसन्निविष्टाविति वस्तुनो घटादेः साकारत्वात्तावप्याकृतिरूपतां स्वीकुरुतः, न च ज्ञानस्य साकारोपयोगरूपत्वात्साकारत्वेऽपि दर्शनस्य निराकारोपयोगरूपत्वान्नाकृतिरूपतेति वाच्यं, तत्र निराकारत्वं नाम नाकाररहितत्वं किन्तु सामान्यविषयत्वमेवेति विशेषाकाररहित्येऽपि सामान्याकारता तत्राप्यस्त्येव अन्यथा वस्तुत्वव्यापकाकाररूपत्वाभावे वस्तुत्वमेव तस्य न स्यात्, उत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणसत्त्वमप्याकारमुपादायैव घटते, यथा सुवर्णं कुण्डलाकारतयोत्पन्नमङ्गदाकाररूपेण विनष्टं स्वस्वरूपाकारेण स्थितमिति, अर्थक्रियाकारित्वलक्षणं सत्त्वमप्याकाररूपतायामेव घटते, नहि मृद्द्रव्यं पिण्डस्थासकोशाद्याकारतामनासाद्य घटरूपोपादेयकार्यं विधातु-

मलम् , घटोऽपि पृथुबुध्नोदराद्याकृति रूप एव जलाहरणाद्यर्थक्रियानिमित्ततामासादयति, यस्यापि वस्तुनो विशेषतः कश्चिदाकारो न शृङ्गग्राहिकया निर्देष्टुं शक्यते तदप्यसद्भूतस्थापनामलम्ब्यैव व्यवहारवीथीमवतरति, यथा गणनाव्यवहारे निर्धारितामुकसङ्ख्यकपणाणककार्षापणरूप्यकादेः धान्यादिमूल्यदानादिना निश्शेषतो विविच्योपयोगम्प्रदर्श्यविशिष्टाभावावगतये० एतादृशाकार एव स्थाप्यत इत्येवं स्थापनानिक्षेपः परिष्कर्त्तुं शक्यः यतदभिप्रायमाश्रित्यैवोच्यते--

" कुलालव्यापृतेः पूर्वो, यावानंऽशः स नो घटः।
पश्चाच्च पृथुबुध्नादि-मत्त्वे युक्ताऽस्य कुम्भता ॥१॥"

इति, एतन्मूलकश्च नैयायिकादीनामवयविवाद इत्थं प्रसाध्याङ्को भवति, तथाहि—अवयवव्यतिरिक्तोऽवयवी तैरिष्टो द्रव्यरूपतया परन्तु समवायिकारणत्वलक्षणं पारिभाषिकमेव द्रव्यत्वं तैरुपगतं न तु पूर्वापरपर्यायानुगामिस्थिरभावलक्षणं, द्रवति ताँस्तान्पर्यायानागच्छतीति व्युत्पत्त्यवधृत स्वरूपं पारमार्थिकद्रव्यत्वमूर्ध्वतासामान्यापरपर्यायम , पारिभाषिकद्रव्यरूपताऽप्यस्य तदा स्यादवयविरूपतायां यदि यावदवयवगुरुत्वादधिकं गुरुत्वमत्र नमनोन्नमनादिकार्यानुमेयं स्यात् , यतोऽवयविसत्ताकालेऽप्यवयवसत्ता पृथक्तयाऽवयविवादे स्वीकृताऽस्ति, आकृतिरूपतायां तु गुणे गुणानङ्गीकारान्न तत्रातिरिक्तगुरुत्वादिकम् , उक्तन्यायेनैव कपालकपालिकादीनामपि न द्रव्यरूपता नामरूपता च नामार्थयोस्तादात्म्याति-

रिक्तशक्तिलक्षणसम्बन्धाभ्युपगमपराहता, मृत्त्वसुवर्णत्वादिसाङ्कर्यादेकं घटत्वं जातिरूपं द्रव्यरूपे मृद्घटादौ नाभ्युपगन्तुं शक्यं मृत्त्वव्याप्यं घटत्वमन्यदन्यच्च सुवर्णत्वव्याप्यं घटत्वमित्येवं नानारूपं घटत्वमिति कल्पनञ्च साधकाभावादेव न सम्भवति, अनुगतप्रतीतिनिमित्ततयैव च जातिकल्पनं मृद्घटसुवर्णघटपाषाणघटादिषु अयं घटोऽयं घट इत्यनुगतप्रतीतिर्नानुगतोक्तेन केनापि घटत्वेनेत्यवयवसन्निवेशरूपसंस्थानविशेषवृत्त्येव घटत्वमिति तदाश्रयः संस्थानविशेष एव घटो न द्रव्यम्, जलाहरणाद्यर्थक्रियासमर्थत्वमपि तस्यवेति।

भावरूपत्वमपि तस्यैव, अर्थक्रियासामर्थ्यावच्छेदकरूपवत एव भावत्वात्, अनया दिशा कपालकपालिकादीनामप्याकृतिरूपताऽवसेया, सूक्ष्मेक्षिकायां परमाणुप्रचयसन्निवेशविशेषरूपतायामेव घटादेः पर्यवसानम्।

नामस्थापनानिक्षेपद्वयमूलकश्च वेदान्तिनां जगतो नामरूपात्मकतावादः, यदुक्तम्—"सच्चित्सुखात्मकं ब्रह्म, नामरूपात्मकं जगत्" इति न चैवं निक्षेपद्वयाभ्युपगमे स्याद्वाद इव तयोर्निमित्तभेदापेक्षया विरोधपरिहारेणावस्थानस्य स्वीकरणे एकान्तवादताहानिरिति वाच्यं, नामनयेन हि नामतादात्म्येन नामरूपताऽभ्युपगता, वेदान्तिना तु नामनिरूप्यत्वेन नामरूपताऽऽदृता नाम्नश्चार्थेन सह न तादात्म्येन सम्बद्धता किन्तु वाच्यवाचकभावेन एवेति, तत्रापि वस्तुगत्या नामनिक्षेपप्रवेशो नास्तीति वाच्यम्, स्याद्वादे तु सम्बन्धमा-

ब्दस्य भेदसम्वलिताभेदलक्षणकथञ्चित्तादात्म्यसम्बन्धनियतत्वा- भ्युपगमात्, न च शब्दार्थयोर्भेदे निमित्तस्वस्वासाधारणरूपं समस्ति ततो भेदोऽस्तु. अनुगामि तु किमप्यभेदनिमित्तं नालोक्यते, सत्त्वप्रमेयत्वादेरनुगामिनो निमित्तत्वे घटशब्दस्य पट- रूपार्थेन सहाभेदः स्यादिति वाच्यं, तुल्यनामधेयत्वस्यातिप्रङ्गा- नापादकस्याभेदनिमित्तत्वात्, वस्तुतो वाच्ये वाच्यताशक्तिः, वाचके च वाचकताशक्तिः, तादृशशक्तिद्वयपिण्डितरूपो नूँसहाकार एव वाच्यवाचकभावलक्षणसम्बन्धोऽपि वाच्य- वाचकाभ्यामभिन्न इति वाच्योत्पत्तिकाले वाच्यताशक्त्यात्मना उत्पद्यते स वाचकोत्पत्तिकाले वाचकताशक्त्यात्मनेति तदभिन्ना- भिन्नस्य तदभिन्नत्वमिति नियमेन नामाभिन्नोक्तसम्बन्धाभिन्न- त्वादर्थस्य नामाभिन्नत्वमिति स्याद्वादे नामनिक्षेपाभिमत नामार्थतादात्म्यं घटत एव, वेदान्त्यभिमतजगत्स्वरूपे च स्था- पनानिक्षेपाभिमताऽऽकृतितादात्म्यं स्वरूपत एवोत्पद्यत इति ध्येयम् ।

द्रव्यनिक्षेपाभ्युगन्ता नयोऽपि द्रव्यनिक्षेपः स च सर्वस्य वस्तुनो द्रव्यरूपतामेवाभ्युपगच्छति प्रमाणयति च—घटादिकं वस्तु मृदादिद्रव्यरूपमेव तद्व्यतिरेके- णानुपलभ्यमानत्वात्, यद्यद्व्यतिरेकेण नोपलभ्यते तत्तद्रूपं यथा घटस्य स्वरूपं घटरूपमिति, अत्रापि घटादिकार्यस्य जला- हरणादेर्मृत्पिण्डाद्यवस्थायां न प्रसङ्गः तत्तदवस्थाविशेषभावा-

पन्नस्यैव तत्तद्द्रव्यस्य तत्तदवस्थाकार्यकारित्वाभ्युपगमात्, न चावस्थाऽवस्थातुरन्या, तत्त्वे तस्येयमवस्थेति प्रतीयमानसम्बन्धस्यैवाघटनात्, नत्वभेदे षष्ठ्यर्थसम्बन्धानुपपत्तिः घटस्य स्वरूपं राहोः शिर इतिवदुपपत्तेः, न च भेदेऽपि राज्ञः पुरुष इतिवत्सम्बन्धोपपत्तिरिति साम्प्रतम्, राजानमन्तरेण पुरुषोपलब्धिवन्मृदाद्यन्तरेण घटाद्युपलब्धेरभावात्, यत्र यदनुगामि तत्र तद्द्रव्यमित्येवं सर्वत्र द्रव्यस्वरूपं प्रतिपत्तव्यम्, वर्त्तमानत्वेनाभिमतो घटादिः वर्त्तमानकालेऽपि न वर्त्तते पूर्वापरकालावृत्तित्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा द्रव्यम्, अनेन त्रिकालावृतित्वे आविर्भावस्य शशशृङ्गादिवदलीकत्वन्तस्य सिध्यति अत एवोक्तम्—

" न व्यक्तेः पूर्वमस्त्येव, न पश्चाच्चापि नाशतः।
आदावन्ते च यन्नास्ति, वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ॥१॥
अव्यक्तादीनि भूतानि, व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव, तत्र का परिदेवना ॥२॥
अदर्शनादापतितः पुनश्चादर्शनं गतः।
नासौ तव न तस्य त्वं वृथा का परिदेवना ॥३॥" इति

द्रव्यनिक्षेपप्रभवः परिणामवादः सत्कार्यवादपर्यवसायी साङ्ख्यस्य, विवर्तवादश्चानिर्वचनीयतावादपर्यवसन्नो वेदान्तिनः, साङ्ख्यस्य च परिणामवादो न जैनाभ्युपगतपरिणामवादादभिन्नः, यदेवानुगामि द्रव्यं सुवर्णादि तदेव कटकादिपूर्वपरिणामं परित्यज्य कुण्डलादिरूपेण परिणमते तदवस्थाया-

मपि सुवर्णादिरूपं समस्त्येव, इत्येवं परिणामवादो जैनस्य, साङ्ख्यस्य तु प्रकृतिर्बुद्धिरूपेण परिणमते बुद्धिरहंकाररूपेणे-त्येवं पूर्वपूर्वस्योत्तरोत्तररूपेण परिणाम इति, न च बुद्धिदशायां प्रकृतेः स्वरूपेणावस्थानम् , यतः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, सा कथं सत्त्वादिगुणोपचयापचयावस्थायां बुद्ध्यादि-रूपायां स्यात् , न चैवं सति पूर्वापरपर्यायानुगामित्वाभावाद् द्रव्यरूपताऽपि प्रकृतेर्विलीयेत ततश्च द्रव्यनिक्षेपमूलकत्वं भज्ये-तेति वाच्यं, त्रिगुणस्वरूपतामात्रमुपादायैव तत्र द्रव्यरूपतोप-गमात् , त्रिगुणरूपता चान्त्यविकृतावपि, यत उक्तम् ,— "यथैकैव स्त्री रूपयौवनलावण्यकुलशीलसम्पन्ना स्वामिनं सुखा-करोति तत्कस्य हेतोः?, तम्प्रति सत्त्वगुणसमुद्भवात् , सपत्नी-र्दुःखाकरोति तत्कस्य हेतोः?, ताः प्रति तस्या रजोगुणसमुद्भ-वात् , जनान्तरमविन्दमानं मोहयति तम्प्रति तस्यास्तमोगुण-समुद्भवात् " इति, वेदान्त्यभ्युपगतवादोऽपि न जैनपरि-णामवादसमशीलः, तत्र यद्यपि जगतो मायापरिणामरूपतात्वा-दस्समस्ति परिणामश्चोपादानसमसत्ताकोपादेयाविर्भाव इति परिणामरूपतामात्रेण तावन्मात्रे साम्यमाभासते तथापि साङ्-ख्यदर्शितदिशा परिणम्यपरिणमनभावोऽत्रापि, परमाणुवादमुर-रीकृत्य च जैनस्य परिणामवादो नैवं वेदान्तिनः ।

अयमभिप्रायः यद्यपि पञ्चीकरणप्रक्रियया सूक्ष्मतन्मात्राणां स्थूलभूतरूपपरिणामे अन्योन्यसम्मेलनापेक्षा मायावादेऽपि विद्य-ते, तथापि मायाया यत्प्रथमतो विजातीयसूक्ष्मतन्मात्रारूपेण स्वन्यूनपरिणामवता परिणमनं न तत्र सजातीयान्तरसम्मेलने

विभजनापेक्षा, जनानां तु परमाणोः प्रथमतः स्कन्धात्मना-परिणमने सजातीयान्तरसम्मेलनस्य स्कन्धान्तर्गतस्य तु अप्रदेशाणुरूपतया परिणमने विभागस्य नियमेनापेक्षणादिति, विवर्त्तस्तु उपादानविषमसत्ताककार्यापत्तिरूपोऽत्यन्तं विविक्तः

विवर्त्तवादे च ब्रह्मेव जगद्रूपेणावभासते रज्जुरिव सर्पमालाद्यात्मना, तथा च कल्पितस्य जगतोऽधिष्ठानभूतब्रह्मसत्तातिरिक्तसत्ताकत्वाभाव एव ब्रह्मानुवेधः (ब्रह्मणो जगति नानारूपेऽनुगमनम्) तत एव च द्रव्यरूपता ब्रह्मणः, न च नैयायिकाभिमतसत्तासम्बन्धात् सत्त्वं घटादेः कुतो नेति प्रष्टव्यम्, सन्घटः सन्घट इत्यादिप्रतीतिरेव सत्तासाक्षिणी, सा चातिरिक्तसत्ता सत्सम्बन्धकल्पनागौरवाद्बिभ्यन्ती सत्स्वरूपब्रह्मतादात्म्यमेव घटादीनामवगाहते, एवमिष्टो घट इत्यादिप्रतीत्यानन्दस्वरूपब्रह्मतादात्म्यं, ज्ञातो घट इत्यादिप्रतीत्या चैतन्यलक्षणब्रह्मतादात्म्यं च भासत इत्यनुगामिसच्चिदानन्दात्मकरूपत्रययोगो जगति ब्रह्मौपाधिकः, नामरूपात्मकाविद्यकरूपद्वययोगस्तु स्वतः, अत एवोक्तपञ्चरूपात्मकं जगद् गीयते, तद्विवेकायोक्तम्—

"सच्चित्सुखात्मकं ब्रह्म, नामरूपात्मकं जगत।" इति,

भावनिक्षेपाभ्युपगन्ता नयोऽपि भावनिक्षेपः, स च सर्वस्य वस्तुनो भावरूपतामेवानुशास्ति प्रमाणयति च—सर्वं वस्तु भावस्वरूपं भावरूपतामुपादायैव कार्यकारित्वात् भावस्वरूपवदित्यनुमानम्, अस्यायमभिप्रायः,—नहि शतक्रत्व

उच्चार्यमाणमपि घटनाम जलाहरणादिकार्यं विदधातुमलम्, न वा इन्द्रनामसङ्केतितो नामेन्द्रो रथ्यापुरुषादिः स्वर्गसाम्राज्यमनुभवति, घटोऽस्ति, घटमानय, घटेन जलमाहरतीत्यादौ सर्वत्र व्यवहारे भावघटस्यैवापामरं प्रतीत्युपपत्तेः, न च नाम्नाऽप्यर्थप्रतीतिरूपं कार्यं भवत्येवेति वाच्यं, भावानवबोधात्, योऽयं मृत्पिण्डदण्डचक्रकुलालादिकारणचक्रनिष्पन्नो भावस्तस्यैव नामस्थापनाद्रव्यभावतश्चतुर्धा विजनमनुयोगद्वारतयाऽऽश्रीयते, तत्रैवमुच्यते भावघट एव घटकार्यतया लोकप्रसिद्धाया जलाहरणाद्यर्थक्रियाया निष्पादने पटुरिति स एव मुख्यो घटः, नाम घटादयस्तदात्मतामासादयत एव तादृशार्थक्रियाकारिणो नान्यथेति, अर्थप्रतीतिस्तु यन्नामकार्यतयोपदर्श्यते तत्रापीयमेव गतिः, यतो घटरूपार्थप्रतीतिकार्यकारित्वाद् घकारोत्तराकारोत्तरटकारोत्तरात्वरूपानुपूर्व्यवच्छिन्नं, यश्च पकारोत्तराकारोत्तरटकारोत्तरात्वरूपानुपूर्व्याद्यवच्छिन्नं पटादिरूपार्थप्रतीतिकारि तदपि घटनामेति नाम्ना सङ्केतितं तन्नामनाम, अर्थो वा यः कश्चित्तथा सङ्केतितो नामनामेति मन्तव्यः, उक्तनाम्नश्च चित्रादौ स्थापितोऽक्षराकारः स्थापनानाम, तन्नाम्नश्च पूर्वं वर्त्तमाना भाषावर्गणा या तन्नामरूपेण परिणमिष्यति सा द्रव्यनामेति, एवं विभज्यमाने घटनामस्वरूपे भावनामैव घटार्थप्रतीतिरूपकार्यनिष्पादने क्षममिति तदेव सत्, नामनामादयस्तु तद्रूपताश्रयणेनैवोक्तप्रतीतिकारिणः, एवमाकृतिद्रव्ययोरपि भावनीयम्, भावनिक्षेपमूलकं च सौगतदर्शनम्,

यतस्तन्मते पूर्वोत्तरपर्यायानुगामि द्रव्यं नास्त्येव सर्वस्यैव क्षणिकतयैवाभ्युपगमात्, स्वलक्षणस्यार्थस्य शब्दगोचरत्वं नास्त्येवेति नार्थप्रतिपादकतयाऽभिमतं नामापि तत्र विद्यते, अयमभिप्रायः—न हि तन्मते घटपटादिनामैव नास्ति, अनुभूयमानस्य तस्यापलपितुमशक्यत्वात्, किन्त्वर्थप्रतिपादकतापन्नस्य शब्दस्य नामता भवति तन्मते च शब्दस्यार्थप्रतिपादकता नास्तीति विशेषणाभावाद्विशिष्टस्याप्यभाव इति, आकृतिस्तु क्रियया ऽवयवानां सन्निवेशविशेषसंयोगविशेषापरपर्यायस्तन्मते नास्त्येव, यतः क्रियैव नास्ति अविरलक्रमेण विभिन्नदेशसन्तानोत्पादस्य क्रियास्थाने तेनाभिषेकात्, संयोगोऽपि नास्ति तत्स्थाने नैरन्तर्यस्यैवाभिषिक्तत्वात्, एवमवयव्यपि नास्ति तत्स्थाने परमाणुपुञ्जस्यैवादृतत्वादतो वर्त्तमानक्षणवृत्तिभावमात्रं तन्मते परमार्थसदर्थक्रियाकारित्वलक्षणसत्त्वयोगादिति। तदयमत्र निष्कर्षः नाम घटादयः शब्दा अर्थविशेषप्रतिपादका अवश्यमभ्युपगन्तव्याः, कथमन्था "नामघटादिषु घटादिशब्दा निक्षिप्यन्त" इति वचनं प्राचां सुसङ्गतं स्यात्, न ह्यखण्डपदार्थप्रतिपादकत्वाभाववन्तं शशशृङ्गादिशब्दमुद्देशसमर्पकं कृत्वा शशशृङ्गादिषु किमपि पदं निक्षिप्यत इत्यतो यस्मिन् यस्मिन् प्रतिनियतेऽर्थेऽखण्डे नामघटादिशब्दा नियमितास्तस्मिँस्तस्मिन्नर्थे तेषां निक्षेपत्वमिति तन्निक्षेपत्वसामान्यस्य यल्लक्षणमभिमतं प्राक् तद्योगित्वे सति नामत्वं नामनिक्षेपत्वं, तद्योगित्वे सति स्थापनात्वं स्थापनानिक्षेपत्वं,

तद्योगित्वे सति द्रव्यत्वं द्रव्यनिक्षेपत्वं, तद्योगित्वे सति भावत्वं भावनिक्षेपत्वमित्येवं प्रत्येकं नामनिक्षेपादीनां लक्षणं सुखेनाव-धारयितुं शक्यते, यच्च शक्तिग्राहकाथशब्दरचनाविशेषो निक्षेप इति निक्षेपसामान्यलक्षणं यदाश्रयणेन नामस्थापनाद्रव्यभाव-घटेषु घटशब्दो निक्षिप्यते इत्येवं निक्षेपव्यवहारः, तत्र नामा-दिषु चतुर्षु पदानां शक्त्यवबोधकं वचनं निक्षेप इति निक्षेप-सामान्यलक्षणं तावन्न संभवति यतः सामान्यलक्षणं तदेव भवति यदशेषेषु विशेषेष्वनुयायि भवति, न चोक्तलक्षणं प्रत्येकं नामनिक्षेपादिषु समस्ति, नामघटो घटपदशक्य इति नामनिक्षेपे नामघटमात्रे घटपदशक्तिग्राहिणि, स्थापनाघटो घटपदशक्य इति स्थापनानिक्षेपे स्थापनाघटमात्रे घटपदशक्ति-ग्राहिणि, द्रव्यघटो घटपदशक्य इति द्रव्यनिक्षेपे द्रव्यघटमात्रे घटपदशक्तिग्राहिणि, भावघटो घटपदशक्य इति भावनिक्षेपे भावघटमात्रे घटपदशक्तिग्राहिणि, नामादिषु चतुर्षु शक्त्यवबो-धकवचनत्वाभावात्। नापि नामस्थापनाद्रव्यभावान्यतमेषु शक्तिप्रतिपादकवचनं निक्षेप इति निक्षेपसामान्यलक्षण सम्भ-वति, यद्यपीदं नामनिक्षेपादिषु प्रत्येकमपि वर्त्तते नामाद्यन्य-तमत्वस्य नामाद्येकैकमात्रेऽपि सत्त्वात् तथापि घटे घकारोत्तराका-रोत्तरटकारोत्तरात्वरूपानुपूर्वीसमाकलितं घटनाम स्ववाच्यत्वस-म्बन्धेन वर्त्तते, घटभावार्थवियुक्तं घटनाम्ना सङ्केतितं वस्त्वन्त-रलक्षणं च घटनाम नामघटइत्येवं व्यवह्रियमाणं स्वसङ्केतितनाम-

वाच्यत्वसम्बन्धेन वर्त्तते, घटाकृतिरपि तदवयवसन्निवेशविशेष-स्वरूपा स्वाश्रयाश्रितत्वसम्बन्धेन वर्त्तते, सद्भूतस्थापनात्मक-प्रतिकृतिलक्षणा च सा स्वसमानाकारसन्निवेशविशेषाश्रयवृत्ति-त्वसम्बन्धेन वर्त्तते, असद्भूतस्थापना लक्षणाऽपि सा स्वानु-योगिकसम्बन्धप्रतियोगित्वप्रकारकज्ञानविषयत्वादिलक्षणवैज्ञा-निकसम्बन्धेन वर्त्तते, ज्ञानञ्च तत्रास्येयं प्रतिकृतिरित्येवं रूपं, तत्रेदं पदार्थस्य प्रतिकृतिरिति पदार्थे स्थाप्यस्थापनभावसम्बन्धो भासते यथा, तथा प्रतिकृत्यनुयोगिकोक्तसम्बन्धप्रतियोगित्व-मपि समानसंवित्संवेद्यतया भासत इति, द्रव्यञ्च साक्षात्परम्प-रासाधारणपरिणामिपरिणामभावसम्बन्धेन तत्र वर्त्तते, उक्तस-म्बन्धश्चोत्तरकालभाविनि भावे पूर्वकालवर्त्तिनो द्रव्यस्य परि-णामत्वमुपादाय वर्त्तते, पूर्वकालभाविनि भावे उत्तरकालभाविनो द्रव्यस्य परिणामित्वमुपादाय वर्त्तते, अनुपयोगो द्रव्यमित्यनु-पयोगलक्षणद्रव्यं प्रमातृस्वरूपञ्च स्वाश्रितवर्त्तमानकालीनाभाव-प्रतियोग्युपयोगविषयत्वसम्बन्धेन स्वाश्रितवर्त्तमानोपयोग-विषयत्वाभावसम्बन्धेन वा वर्त्तते, भावश्च तत्र तादात्म्येन वर्त्तते, उपयोगस्य भावरूपतायाञ्च तत्रोपयुक्तात्मस्वरूपो भावस्स्वा-श्रितोपयोगविषयत्वसम्बन्धेन वर्त्तते, इत्थं सत्येव भावे विभि-न्नसम्बन्धेन वर्त्तमानानां नामादीनां विभिन्ननिक्षेपप्रयोजकत्वं तथा च भावे विभिन्नसम्बन्धेन वर्त्तमानं नामादिचतुष्टयमुपा-दाय यथा निक्षेपप्रवृत्तिस्तथा भावेऽनन्ता एव धर्माः प्रतिनि-यतस्वस्वसम्बन्धविशेषेण वर्त्तन्त इति तादृशधर्मानुपादायाऽपि

निक्षेपप्रवृत्तिस्स्यादेवेति नामाद्यन्यतमत्वेन तेषामपि ग्रहणं न्याय्यं, न च तत्तद्भेदकूटावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदलक्षणमन्यतमत्वं प्रत्येकं तेषामग्रहणे गृहीतुं शक्यं, न चास्मदादीनामसर्वज्ञानां तेषां ग्रहणं सम्भवतीत्यन्यतमत्वघटितलक्षणस्य दुर्ज्ञेयत्वादेवानुपादेयत्वम् , तथापि नामघटादिषु चतुर्षु घटत्वं नामघटादयो वा यावन्तः सम्भवन्ति तेषु वा घटत्वमेकं परसामान्यं तदवच्छिन्ने घटशक्तिप्रतिपादकं वचनं निक्षेप इति निक्षेपसामान्यलक्षणम्, यद्यपीदमपि घटादिपदभेदेन भिन्नमेवेति न निक्षेपसामान्यलक्षणं तथापि पदविशेषोपादानेन तत्तत्पदविशेषनिक्षेपसामान्यलक्षणं तद्भवत्येव, यदि च घटत्वं नामघटादिसाधारणमुपादाय घटपदं घटत्वावच्छिन्ने शक्तमिति वचनं नामघटो घटपदशक्य इत्यादिवचनविशेषात्मकं न भवति तदा घटत्वव्याप्यसामान्यावच्छिन्ने घटपदशक्तिप्रतिपादकवचनं घटपदनिक्षेपः,तत्र व्याप्यत्वं तदभावदवृत्तित्वरूपमेव स्वसाधारणं निविष्ट तेन घटत्व-तदवान्तरनामघटत्वादीनां घटत्वव्याप्यत्वेन सङ्ग्रहान्नाननुगमः, तदादिपदशक्यतावच्छेदकानां घटत्वादीनां यथोपलक्षणविधयैव बुद्धिस्थत्वमनुगमकमिति तस्य तदादिपदजन्यशाब्दबोधे भानं, तथवोक्तव्याप्यत्वमुपलक्षणविधयैवानुगमकमिति न तस्य घटपदजन्यशाब्दबोधे भानम् यथा च बुद्धिस्थत्वेन घटत्वादीनां सर्वेषां तत्पदप्रवृत्तिनिमित्तानामनुगमान्न तदादिपदस्य नानार्थत्वम्, तथा घटपदस्यापि न नाना-

र्थत्वम् .

नामघटत्वादिकं प्रत्येकं घटत्वावान्तरसामान्यमुपादाय च यद्घटपदशक्तिप्रतिपादकवचनं तद्घटपदस्य निक्षेपविशेषः, एवं पटादिपदानामपि, सामान्यनिक्षेपलक्षणन्तु स्वप्रवृत्तिनिमित्तावच्छेदेन स्वशक्तिप्रतिपादकवचनं निक्षेप इति, यथा च नामघटादि सकलघटपदशक्यसाधारणमेकं नामघटत्वादिव्यापकं घटत्वं समस्ति यदवच्छिन्नशक्तिकत्वेनैकार्थत्वं घटपदस्य, एवं पटादिपदस्यापि, तथा विष्णुसिंहेन्द्रसूर्यादिसकलहरिपदवाच्यसाधारणं तद्यतिरिक्तावृत्ति नैकं हरिपदप्रवृत्तिनिमित्तमस्तीत्यतो हर्यादिपदानां नानार्थत्वमेव ।

केचित्तु नामघटादिषु भावघटस्यैव मुख्यघटपदवाच्यत्वाद्भावघटत्वस्य सकलभावघटसाधारणघटत्वावान्तरजातेरेकत्वात्तच्छक्तिकत्वेन घटपदस्यैकार्थत्वं तथा पटादिपदस्यापि, हरिपदवाच्यस्तु भावहरिर्विष्णुः सिंहः सूर्यादिश्च विभिन्नजातीय एव, न तत्रैकं भावहरित्वमिति हरिपदस्य नानार्थत्वमिति ।

नैगमादय ऋजुसूत्रान्ताश्चत्वारोऽर्थनयास्सर्वानपि निक्षेपानभ्युपगच्छन्ति, शब्दनयस्तु भावनिक्षेपमेवाभ्युपगच्छतीति सैद्धान्तिकाः, ऋजुसूत्रो द्रव्यनिक्षेपं नाभ्युपगच्छतीति वादिसिद्धसेनदीवाकरमतानुसारिण इत्याद्यास्तु निक्षेपविषयका विचारा ग्रन्थान्तरतोऽवसेया इति दिक् ॥

॥ अथ प्रशस्तिः ॥

चन्द्रज्योत्स्नाविशदविमले, श्रीतपागच्छसंज्ञे,
गच्छे धुर्या विमलचरिताः, सर्वतन्त्रस्वतन्त्राः ॥
वन्द्या विश्वे नरपपतिमुखैः, प्रौढसाम्राज्यभाजो,
जीयासुस्ते विजयपदयुग्-नेमिसूरीशवर्याः ॥ १ ॥
तेषां विजयिनि पट्टे, सिद्धान्ते गीष्पतिप्रभा विदिताः
न्यायविशारदबिरुदा, विजयोदयसूरिपा भान्ति ॥ २ ।
तेषां पट्टे, पूज्याः, कविरत्नानैकगुणभृतो विबुधाः ॥
विजयन्ते परवादिषु, गजेषु पञ्चानना नूनम् ॥ ३ ॥
न्याये वाचस्पतय-स्सूरीशा विजयनन्दनाः सुभगाः
सिद्धान्ते मार्तण्डाः, शास्त्रेषु विशारदा नित्यम् ॥ ३ ॥
तेषां सविजयनन्दन-सूरीणां पूज्यचरणपद्मानाम् ॥
शिष्याणुकशिवानन्द-गणिना स्वभ्यासिना सम्यक् ॥४
मुदा निक्षेपाणां नयगुणयुता तत्त्वसुभगा,
कृता मीमांसेयं परममुनिवाक्यैकशरणा ॥
सदा मोदं धत्तां विबुधगणवंशेषु नितरां,
क्षमन्तां सन्तो यज्जिनमतविचाराद्विरहितम् ॥ ५ ॥
द्वीपाब्धिवेदनेत्राब्दे, श्रीवीरजिननिर्वृत्तेः ॥
वीरतृतीयकल्याण-तीथौ पूर्णास्तु सिद्धिदाः ॥६ ॥

॥इति मुनिश्रीशिवानन्दविजयगणिविरचितेयंश्रीजैनागमप्रति
दितनिक्षेपाणां नयविचाररूपंश्रीनिक्षेपमीमांसाप्रकरणम् ।